५२२/३४

186

॥ ॐ ॥

श्रीविष्णुस्वामी ग्रन्थावली का प्रथम पुष्प

नमो भगवते श्रीमते श्रीविष्णुस्वामिने

श्रीविष्णुस्वामी-जीवनदर्पण

ले. पं. श्रीरामबालकाचार्यजी, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न

सा० संग्रहकर्ता पं. श्रीजयरामदासजी, वैद्यभूषण

प्रकाशक

निखिलमहिमण्डलाचार्यचक्रचूडामणि, यतिपतिदिनेश, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, शुद्धाद्वैतप्रवर्तक, अनन्तश्री-विभूषित, जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुयायी, श्री-महान्त, स्वामी श्रीनारायण-दासजी महाराज वैष्णवभूषण

श्रीरणछोडजी का मन्दिर

वडकी पोल के सामने,

रायपुर, अहमदाबाद,

नमो भगवते श्रीमते श्रीविष्णुस्वामिने

श्रीविष्णुस्वामी-जीवनदर्पण

६२२
३४

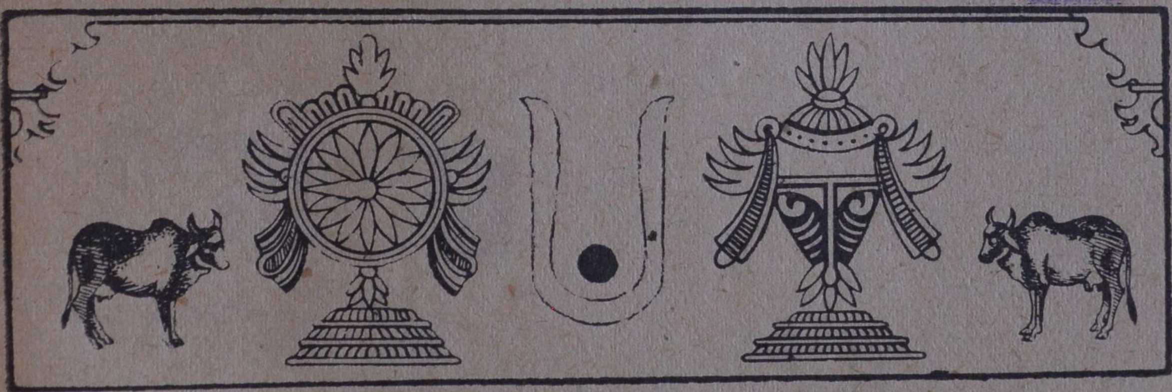

ले. पं. श्रीरामबालकाचार्यजी, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न

मूल्य दो रुपये

प्रकाशक—

महान्त श्रीनारायणदासजी महाराज

श्रीरणछोडजी का मन्दिर

रायपुर, वडकी पोल, अहमदाबाद

प्रकाशन समय, भाद्रपद कृष्णा सप्तमी १९५९ ई.

प्रथमावृत्ति

मूल्य सम्प्रदाय–सेवा

मूल्य दो रुपये

मुद्रक—

वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री

श्रीरामानन्द प्रिन्टिङ्गप्रेस

कांकरियारोड़, अदमदाबाद

८२२
३५

❀ कार्यारम्भ और लेखन प्रवृत्ति ❀

वन्दौ भक्ति भक्त भगवंता श्रीगुरु चरण अरु सब संता.

आज से कई वर्ष पूर्व जब श्री विष्णु-स्वामी सम्प्रदाय के कर्णधार तथा चार सम्प्रदाय खालसा के श्रीमहान्त स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज गिरनारवालों का स्वर्ग वास हो गया, तब महन्ताई के सिल-सिले में श्रीमहान्त पूरनदासजी महाराज गिरनार वाले तथा अजमेर नागफनी स्थान के श्रीमहान्त वैष्णवरत्न स्वामी श्रीअनन्तदासजी महाराज अजमेर से गिरनार के लिये कई बखत गये थे और आये थे एवं बड़की पोल अहमदाबाद में अपनो विश्राम स्थल रखा करते थे। उस समय अहमदाबाद बड़की पोल में गोलोक निवासी महान्त स्वामी श्रीप्रह्लाददासजी महाराज भी रहते थे। कुम्भ पर्व के ऊपर स्वसम्प्रदाय के आचार्य चरण की शोभायात्रा निकालनी चाहिये इस विषय में उक्त माननीय महान्तों का परामर्श बडकी पोल में हुआ था। उस समय सिंहस्थ में अन्यान्य सम्प्रदाय वाले अपने अपने आचार्यों की शोभायात्रा का प्रारंभ कर दिये थे, जो अद्यापि चल रहा है। आचार्य जगद्गुरु भगवान श्रीविष्णुस्वामी महाराज के चित्रपट के सम्बन्ध में बातें हुईं थीं; मैं वहाँ उपस्थित था। मुझे पुछा गया कि इस विषय में क्या करना चाहिये।

मैंने कहा कि इस विषय में अन्वेषण करना चाहिये। सम्भवतः मिल जायें। महान्त महानुभावों ने मुझे कहा कि इस कार्य का सम्पूर्ण भार आपके ऊपर छोड़ दिया

जाता है। 'होइ है सोई रामरची राखा' के अनुसार सन् १९४३ में विजयनगर राजमन्दिर के महान्त श्रीलक्ष्मीदासजी महाराज के बुलाने से विजयनगर मुझे जाना पड़ा।

विजयनगर में जाकर स्थानीय काम करते हुये भी आद्याचार्य श्रीविष्णुस्वामी महाराज के इतिहास तथा चित्र पट के सम्बन्ध में मेरा अन्वेषण चालू रहा। श्रीविष्णु स्वामी सम्प्रदाय के अनेक-मठों-मन्दिरों में मैंने पत्र व्यव हार किया। बाद में सन्तोष न होने के कारण बहुत से स्थानों में मुझे जाना पड़ा। उसी यात्रा में छोहरा की पोल के मन्दिर में, वैष्णव सम्प्रदाय के चारों आचार्यों के साथ आद्याचार्य श्रीविष्णुस्वामी महाराज का हस्तलिखित चित्र पट मिल गया। विशेष परीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि सम्भवतः ८०० से १००० वर्षों का यह चित्रपट हो सकता है। उसी यात्रा में मेरा जो कुछ व्यय हुआ था तथा जो मुझे परिश्रम पड़ा था, उनके बदले चित्रपट मिलजाने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

पश्चात् मैं विजयनगर गया। विजयनगर के श्री महान्तजी ने स्थान के सम्पूर्ण कार्य की व्यवस्था के लिये मुझे नियुक्त किया। लोकोक्ति है कि सौ घरवारी, एक मठधारी समान है। इसके अनुसार स्थानीय काम में दत्त चित्त होने के कारण इस काम में कुछ शिथिलता अवश्य आगई।

सन् १९५१ में श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय के महान् विभूति अहमदाबाद श्रीरणछोड़जी के मन्दिर के मेरे दादागुरु महान्त स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज ने अपने

पट्टशिष्य मेरे पूज्य गुरु श्रीप्रह्लाददासजी महाराज को महन्ताई दी। उस समारोह में मैं भी उपस्थित था। कार्य-समाप्ति के बाद महान्त स्वामी श्रीप्रह्लाददासजी ने उपर्युक्त कार्य के लिये मुझे बहुत ही उलाहना दी कि वर्षों से लिये हुए एक काम तुम से अब तक पूरा नहीं हो पाया। यह बात मुझे बहुत जोर से खटकी, और मैं विजयनगर में जाकर पुनः द्रुतगति से श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय के साहित्य के अन्वेषण में लग गया और चित्र को बनवा कर श्रीमहान्तजी को दे दिया।

यह बात स्वाभाविक है कि मनुष्य मात्र में किसी बात की जिज्ञासा उत्पन्न होने के उपरान्त किंचित् अपि-सफलता प्राप्त होने पर वह अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयास करता है। श्रीमहान्तजी को अपने सम्प्रदाय के उत्थान के लिये लालसा जागी। उन्होंने पत्र द्वारा मुझे सूचित किया कि आचार्य जयन्ती का निर्णय और उनसे सम्बन्धित साहित्य उपलब्ध करके शीघ्रतापूर्वक मेरे पास आ जाओ, किन्तु विजयनगर जांगल्य प्रदेश होने के कारण इस सम्बन्ध में मैं कुछ भी अध्ययन नहीं कर सकता था। होनाहार बल-वान है, कविचक्र चूडामणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महा-राज के कथनानुसार—

जो इच्छा करीहो मन माहीं, हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं

यह कार्य तो स्वयं प्रभु का था, "उरप्रेरक रघुवंश विभूषण" आचार्य चरण गोस्वामीजी के वाक्य के अनुसार यह सब कार्य परमाचार्य भगवान श्रीविष्णुस्वामीजी करा रहे थे, उस कार्य में सफल होना स्वाभाविक था। उसी

अरसे में अहमदाबाद में ही स्व. इच्छाराम सूर्यराम देसाई संस्थापित "गुजराती प्रेस" बम्बई से प्रकाशित "गुजराती पञ्चांग के कर्त्ता शास्त्री नटवरलाल तथा शास्त्री छगनलाल के भाद्रपद कृष्णा सप्तमी तिथि के रिमार्क (उत्सव सूचना) में (श्रीविष्णुस्वामीजी का जन्म दिवस) मैंने पढ़ा जैसे एक अकिंचन को रत्नों का खजाना मिल जाने से वह परमानन्द को प्राप्त करता है, उसी तरह मैंने हर्ष और रोमांच के साथ वह तिथि महान्तजी को बताई। बाद में उन्होंने आचार्य जयन्ती मनाना आरम्भ किया। मैंने गुजराती प्रेस बम्बई से पत्र व्यवहार करना आरम्भ किया। पं. छगनलाल शास्त्रीजी ने अपने पत्र में एतत् सम्बन्धी विशेषज्ञान प्राप्त करने के लिये गुजरात विद्यासभा के प्रधान सञ्चालक पं. केशवराम शास्त्री (बाह्मणीया) जी से मिलने की सूचना दी, किन्तु उस समय मैं बाहर था, बाद में अहमदाबाद आकर महान्तजी तथा उनके पूज्य गुरुदेव मेरे दादागुरु श्रीमान स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज से मैंने जिक्र किया, पश्चात् शास्त्रीजी से मिला। शास्त्रीजी ने एतत् सम्बन्धी अधिक से अधिक ज्ञान एवम् साहित्य का निर्देश किया और स्वयं भी सहायता की। उन्होंने कांकरोली से प्रकाशित "सम्प्रदाय प्रदीप" तथा उनके द्वारा लिखा हुआ; महाप्रभु वल्लभाचार्यजी नामक ग्रन्थ का भी निर्देश किया जो प्रायः आचार्य चरण श्रीविष्णुस्वामी सम्बन्धित अन्यान्य सभी ग्रन्थों से विशिष्ट है।

उधर सन् १९५२ में सतुबाबा का स्थान वाराणसी के शिष्य और विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के एक मात्र विद्वान आयुर्वेदाचार्य शास्त्री स्वामी श्रीउद्धवदासजी महाराज

अहमदावाद एलिसब्रिज जागनाथ महादेव में पधारे थे। उनको लेने के लिये मैं अहमदाबाद आया। विजयनगर के महान्तजी से उनका विशेष सम्बन्ध था। अहमदाबाद बड़की पोल में भी उनको ले गया था, वहाँभी उनका स्वागत हुआ, महान्त स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज के साथ सम्प्रदाय सम्बन्धी बातें हुयीं, बाद में स्व. डॉ. श्रीभगवानदासजी गौड़ तथा वाराणसी विश्वविद्यालय के के आचार्य श्रीबलदेव उपाध्यायजी के कथनानुसार आचार्य चरण श्रीविष्णुस्वामीजी महाराज का इतिहास अन्धकारमय है, अतः शास्त्रीजी ने भविष्य में मेरा ध्यान इस तरफ आकर्षित कराने की चेष्टा की। बाद में हम अहमदाबाद से विजयनगर गये, वहाँ पर भी हम दोनों में परामर्श होता रहा. किन्तु उस समय विजयनगर के महान्त लक्ष्मीदासजी के साथ कुछ अन्तराय हो जाने के कारण मेरा वहाँ रहना अनिश्चित था। बात भी यही हुई। स्वामी उद्धवदासजी शास्त्री के वाराणसी पहुँचने के कुछ समय के बाद ही सन् १९५२ में मैंने विजयनगर छोड़ दिया। यह बात अहमदाबाद में मालूम होते ही मेरे पूज्य दादागुरु, चोटासण में आकर मुझे अपने साथ अहमदाबाद ले आये।

अहमदाबाद में आने के पश्चात् एतत् सम्बन्धी साहित्य अन्वेषण में मुझे विशेष सुविधा मिल गई। यथा शक्ति मैंने भी साहित्य अन्वेषण का कार्य विशेष रूप में अपने हाथ में ले लिया। बाद में मुझे खूब ही सलफता प्राप्त हुई। मेरे आने के बाद शास्त्रीजी का एतत् सम्बन्धी दो एक पत्र विजयनगर गया किन्तु मुझे प्राप्त नहीं हो सका। तब से अबतक मेरे और उनमें कोई भी पत्र व्यवहार न हो सका।

इधर अहमदाबाद से मुझे जयपुर आयुर्वेद अध्ययन करने के लिये जाना था किन्तु वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवन-दासजी शास्त्रीजी की प्रेरणा से अहमदाबाद में ही अध्ययन करना पड़ा। शास्त्रीजी से चरक, सुश्रुत आदि पढ़कर श्रीमारुति आयुर्वेद औषधालये में करीब पांच वर्ष पर्यन्त औषध-निर्माण तथा वितरण का अभ्यास मैंने किया। बाद में गोलोक-निवासी मेरे पूज्य गुरुदेव महान्त स्वामी श्रीप्रहलाददासजी महाराज के सहयोग से आचार्यपाद विष्णुस्वामीजी महाराज सम्बन्धितसाहित्यसंग्रह विशेषरूप से किया। सन् १९५३ में अनेकानेक शास्त्र निष्णात तर्क वागीश वेदान्त तीर्थ स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी महाराज शास्त्री के सभापतित्व में सर्व-प्रथम बड़की पोल में विष्णुस्वामी जयन्ती मनायी गयी, उस समय तक सम्पूर्ण विश्व के विष्णुस्वामी सम्प्रदायानु-यायियों में से किसी भी महानुभावों को पता भी न था कि हमारे आचार्य चरण का प्राकट्य तिथि कब है। तब से अब तक प्रति वर्ष उसी तरह समारोह के साथ महान्त स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज के स्थान में जयन्ती मनाई जाती है और यहाँ की प्रेरणा से अब श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय की बून्दी बैठक में भी जयन्ती मनाना आरम्भ हुआ है। सौभाग्य की बात है कि अन्यान्य सन्त महान्त भी इसका अनुकरण करने लग गये हैं। जिन महानुभावों को अभितक इस जयन्ती की तिथि नहीं मालूम हो, उनसे प्रार्थना है कि वे महानुभाव भाद्रपदा कृष्णा सप्तमी को अपने अपने स्थान में आचार्य जन्मोत्सव मनावें।

गोलोकनिवासी महान्त स्वामी श्रीप्रहलाददासजी महा-राज की इच्छा थी कि हमारे सम्प्रदायाचार्य का एक जीवन

चरित्र प्रकाशित हो। उस कार्य के लिये महाराजजी बार बार मुझे प्रेरित किया करते थे, किन्तु इतिहास से मुक्त एक महापुरुष के जीवन चरित्र को लिखने में मैं अपने को असमर्थ समझता था। यद्यपि उस समय तक मेरे पास बहुत कुछ प्रमाण उपलब्ध हो चुके थे तथापि संयोग वशात् सन् १९५३ में पंडित स्वामी श्रीरामबालकाचार्य वेदान्ती जी से घनीष्ट सम्बन्ध हो जाने के कारण स्वामी प्रहलाद-दासजो की इच्छा और मेरी असमर्थता की बातें हुई तो वेदान्तीजी ने पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया और इस कार्य के लिये भूमिका बनाना प्रारम्भ किया, किन्तु "ईश्वरेच्छा बलीयसी" के अनुसार सभी बातें मनुष्य की इच्छा से नहीं होती है. कुछ दैवी इच्छा भी कार्य करती रहती है। सन् १९५४ में महान्त स्वामी प्रहलाददासजी महाराज का गोलोकवास हो गया। इस दुःखद प्रसंग से यह कार्य आगे नहीं बढ़ सका। कुछ समय के पश्चात् महान्तजी का अधूरा कार्य पूर्ण करने की मेरे मन में प्रेरणा हुई। फल स्वरूप महाराजजी से परा-मर्श करने के पश्चात् इस कार्य को पुनः हस्त-गत करने का निश्चय किया, बाद में आचार्य चरण का चित्रपट एवम् स्वामीजी के विषय में सूत्र रूप से जोवन चरित, श्रीरामा-नन्द पत्रिका वर्ष १ अङ्क १ में प्रकाशित किया गया। इसके उपरान्त बून्दी, अजमेर, वाराणसी और कलाधारी की बगीची वृन्दावन आदि पत्र द्वारा एतत् सम्बन्धी बातें पूछी गईं, परन्तु बून्दी से नकारात्मक जवाब मिला, अजमेर और वृन्दावन से पत्र का उत्तर न आने पर पुनः पत्र लिखा गया, किन्तु उसका भी उत्तर नहीं आया। मेरा परिचय जहाँ तक था वहाँतक सम्प्रदाय में सर्वत्र पत्र लिखकर पूछा

कि आचार्यजी के जीवन के विषय में आप लोग यदि कुछ जानते हैं तो शीघ्र सूचना देने की कृपा करें, क्योंकि जीवनचरित छपने की तैयारी में है। परन्तु कहीं से भी कुछ उत्तर नहीं आया।

सन् १९५६ में नासिक कुम्भ पर्वपर महान्त स्वामी श्रीकमलदासजी महाराज नासिक वालों से भी परामर्श हुआ, किन्तु वहाँ से भी निराशा होना पडा। सन् १९५७ के उज्जैन कुम्भ पर्व पर अहमदाबाद से आचार्य चरण का संक्षिप्त जीवन चरित्र प्रकाशित करके लेजाने का निश्चय हुआ था किन्तु श्रेयांसि बहुविघ्नानि के अनुसार कुछ कारण वशात् यह कार्य स्थगित रहा। उस कारण को मैं लिखना नहीं चाहता हूँ। यदि उस कारण को कोई भी व्यक्ति प्रकाशित करेगा तो उसका समुचित कारण मैं अवश्य बताऊङ्गा। ऊपर मैं कह चुका हूँ कि सन् १९५३ में पण्डित स्वामी रामबालकाचार्यजी का सम्पर्क हो जाने के कारण आचार्य चरण के जीवन के विषय में बहुत कुछ खोज होने लगा और साथ साथ संक्षिप्त जीवन चरित्र के उपरान्त एक वृहद् जीवन चरित्र भी लिखा जाने लगा, जो आज आप पूज्य महानुभावों के कर कमलों में "श्रीविष्णुस्वामी जीवन दर्पण" के नाम से उपस्थित है। मेरे गुरुदेव गोलोकनिवासी महान्त प्रहलाद-दासजी महाराज का अधूरा कार्य मुझे पूर्ण करना था। वह साहित्य एकत्रित करने में हमें और भी श्रीविष्णु-स्वामी सम्प्रदाय सम्बन्धी साहित्य प्राप्त हुये, जो सम्प्रदाय के भिन्न भिन्न पूर्वाचार्यों द्वारा लिखे हुये हैं।

आप लोगों के करकमलों में 'श्रीविष्णुस्वामी जीवन

दर्पण नाम का जो यह महान ग्रन्थ दिया गया है; उसके लेखन-कार्य में मुझे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ा है, किन्तु मान्यवर पण्डित रामबालकाचार्य वेदान्ताचार्य, साहित्य रत्नजी का परिश्रम को देखने से मैं अपने परिश्रम को भूल जाता हूँ, क्योंकि श्रीमान वेदान्तीजी ने अहर्निश परि-श्रम करके और जहाँ तक हुआ है वहाँ तक इसको बहुत ही सुन्दर शैली से पार उतार ने की कोशीश की है। वास्तव में वेदान्तीजी का प्रथम कीर्ति-पुष्प है तथापि विद्वत् गण इस ग्रन्थ को एक बार सांगोपांग चक्षु से अवलोकन कर बाद में ही अपना निर्णय स्वयं कर लेंगे "खल अध अगुन साधु गुन गाहा" के अनुसार मेरी तो आशा है कि विचारणीय विद्वत् गण इस कीर्ति को जरूर अपनायेंगे किन्तु ... ...

हँसी हहीं क्रुर कुटील कुविचारी,
जे पर दूषण भूषण धारी।
हँसहिं बक दादुर चातक ही,
हँसहिं मलिन खल बिमल बतक हिं॥
हँसहिं सठ दुर्जन अविवेकी
पामर खल नीच मलिन हृदय की।
परहित हानि लाभ जीन्ह केरें,
उजरें हरष विषाद बसेरें।
हरि हर जस्र राकेस राहुसे,
पर अकाज भट सहस्रबाहु से।
जे पर दोष लखहीं सहसाखी,

पर हित घृत जिन्हे के मन माखी।
तेज कृषानु रोष महीषेसा,
अध अवगुन धन धानी धनेसा।
उदय केतु सम हित सबहीके।
पर अकाजु लगि तनु परिहर ही,
जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।
बचन वज्र जेहि सदा पियारा,
सहस नयन पर दोष निहारा।
उदासीन अरि मीत हित,
सुनत जरहिं खल रीति।
बायस पालअहिं अति अनुरागा,
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।

मानीय कवि सम्राट सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही तो कहा है कि—

बंदउँ सन्त असज्जन चरना,
दुःख प्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं,
मिलत एक दारुण दुःख देहीं।
खल परिहास होइ हित मोरा,
काक कहहिं कलकंठ कठोरा।

पुस्तक को बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से सजाकर निकालने का विचार था किन्तु कागजादि की महंगी और अन्य भी अनेकों कारण वश वह इच्छा अधूरी ही रह गई। यह ग्रन्थ प्रथम संस्करण होने के कारण त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक ही है, अतः माननीय विद्वत् गण सुधारा पूर्वक पढ़ने की कृपा करें। यदि विशेष कुछ त्रुटी रह गई हो तो उसके लिये सूचित करने की अनुकम्पा करेंगे जिससे दूसरे संस्करण में उसका सुधार हो सके। आचार्य चरण जी के जीवन के कई प्रसंग लिखे हुए और रह गये हैं, जिसको द्वितीय संस्करण में दिया जायेगा। इस कार्य के लिये महान्त स्वामी श्रीअनन्तदासजी महाराज नागफणी अजमेर, श्री १०८ श्री महान्त स्वामी प्रहलाददासजी महाराज, महान्त स्वामी पुरनदासजी महाराज गिरनार, तथा शास्त्री उद्धवदासजी महाराज आयुर्वेदाचार्य वाराणसी आदि महानुभावों की तरफ से सर्वप्रथम प्रेरणा मिली थी।

सम्प्रदाय के सभी महानुभावों से मेरी नम्रविनति है कि इस ग्रन्थ को आदर पूर्वक स्वीकार करेंगे क्योंकि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बहुत समय तथा बहुत ही द्रव्य व्यय हुए हैं, इसके अध्ययन से इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त तथा आचार्यजी का वृत्तान्त सहज ही ज्ञात हो जावेगा और सम्प्रदाय के अनुयायियों का कल्याण भी होगा। आचार्य नामस्मरण ही कल्याण का प्रथम स्वपान है।

आभार और धन्यवाद

पाठक बन्धुओ,

यह श्री विष्णुस्वामी जीवन दर्पण नामक जो ग्रन्थ आपके कर-कमलों में समर्पित है, इस ग्रन्थ के लेखन में जीन-जीन महानुभावों की प्रेरणा एवं सहयोग मिला है, उन सबों को मैं नहीं भूल सकूँगा। अतः मैं उन लोगों को अवश्य याद कर लेना चाहता हूँ। कार्यारम्भ और लेखन प्रवृत्ति में मैं बता चुका हूँ कि, इस कार्य के सर्व प्रथम प्रेरक गोलोक निवासी मेरे गुरुदेव महान्त स्वामी श्री प्रहलाददासजी महाराज अहमदाबाद, तथा श्री महान्त अनन्तदासजी महाराज अजमेर हैं, अतः कृतज्ञतापूर्वक मैं आभार मानता हूँ। तदुपरांत स्व. श्रीमहान्त स्वामी श्री पुरनदासजी महाराज गिरनार चार सम्प्रदाय खालसा और आनंदकंद, परमानंद, नंदनंदन यशोदाहृदयचन्दन परात्पर सर्वेश्वर श्री व्रजेन्द्रचरणचंचरीक निखिलमही-मण्डलाचार्य-चक्रचूडामणि राजराजेश्वर जगद्गुरुगुरु अनन्त श्रीविभूषित श्री विष्णुस्वामी भगवत्पाद सिद्धान्तानुगामी मेरे दादागुरु श्रीमान श्री मान्यवर श्रीमहंत स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज से भी अधिक से अधिक प्रेरणा एवम् आशीर्वाद प्राप्त करके उपकार मानता हूँ।

परमादरणीय श्री १०८ बाबाश्री श्यामलदासजी महाराज सोनद, श्री १०८ बाबाश्री महान्त स्वामी गोवर्धनदासजी महाराज बून्दी, परमादरणीय बाबा पुष्करदासजी महाराज बून्दी, वयोवृद्ध माननीय महान्त श्यामसुन्दरदासजी कामवन

तथा माननीय महंत जगन्नाथदासजी महाराज कामवान, माननीय महंत गोपीदासजी महाराज पुष्कर, परमादरणीय अतीतबाबा महंत मदनमोहनदासजी महाराज तुमौरा, श्रीमान महंत लोचनदासजी महाराज बोरीआई आदि विष्णुस्वामी सम्प्रदायानुयायी महन्त-महात्माओं की प्रेरणा एवं सहयोग मुझे मिला है। अतः इनका भी आभार मानता हूँ।

इस कार्य में गुजरातो प्रेस बम्बई का पंचांग कर्ता शास्त्री छगनलालने केशवराम काशीराम शास्त्री प्राध्यापक रामानन्द महाविद्यालय तथा भूतपूर्व प्रधान संचालक गुजरात विद्यासभा, से मिलने का आदेश दिया, और लिखा कि शास्त्रीजी एक उत्तम इतिहास वेत्ता तथा विशेषज्ञ हैं। इसलिये मैं उनका आभारी हूँ। के. का. शास्त्रीजीने अनेक प्रकार से सहयोग एवं मार्गदर्शन दिया उसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। पं. कण्ठमणि शास्त्री संचालक विद्याविभाग कांकरोली ने अनेकों पत्रोंद्वारा मार्गदर्शन कराया है। इसलिये मैं उनका अनन्य आभारी हूँ। गोविंदवल्लभ शास्त्री पं. वेदव्रतआर्य सदस्य आर्य औषधालय काशगंज तुलसी स्मारक शूकर क्षेत्र (सोरों) ने विष्णुस्वामी चरितामृत नामक हस्त लिखित संस्कृत ग्रन्थ दे कर जो अनुग्रह किया है उस कार्य के लिये आभारी हूँ। पं. बजरंगदासजी नारायणदासजी त्रिकमजी का मन्दिर अहमदाबाद जो पुरातत्वज्ञान संग्रह का एक अपूर्वशौखिन हैं, जिनके पास अनेकों पुस्तकों का संग्रह है, उनसे ऐतिहासिक प्रमाणपत्र मुझे प्राप्त हुआ है, इसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। मान्यवर वैद्यराज स्वामी त्रिभुवनदासजी शास्त्री, माननीय स्वामी वैष्णवाचार्यजी महाराज वेदांततीर्थ, तर्कवागोश, पं. रामेश्वराचार्यजी ज्यो.

वि-हि. सा. वि, पं. रामकिशोराचार्यजी खाखी, तार बाबू रामचन्द्रजी पुरोहित, सैलानावाले, जिन्होंने कई एक इंग्लोश ग्रन्थों का अनुवाद करके और मद्रास, बेंगलोर गंजाम में पत्र व्यवहार द्वारा सहायता की है, इसलिये मैं उनका अनन्य आभारी हूँ।

मान्यवर पं. रामबालकाचार्यजी शास्त्री वेदांताचार्यजी ने जो सहायता की है वह तो आप लोगों के समक्ष है, इस ग्रंथको लिखने में उन्होंने अहर्निश परिश्रम करके जो मेरे ऊपर उपकार किया है, वह चिर स्मरणीय है। गोलोकवासी महंत स्वामी प्रह्लाददासजी महाराज से वचन बद्ध होने पर भी यह कार्य मेरे लिए तो आकाश कुसुमवत् था, किंतु वेदांतीजी ने अगाध जल-राशि में डूबते हुए को नाविक बनकर सहायता की है। स्वामी श्रीवेदांतीजी से यों तो समस्त विष्णुस्वामी सम्प्रदाय ही आभारी है, किंतु मेरे लिए वे विशेष माननीय हैं, अतः मैं तो उनका विशेष आभार मानूंङ्गा।

इस ग्रन्थ के छपने के समय अनेक आवश्यक कार्य होते हुए भी वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्रीजी ने स्वयं बहुत ही परिश्रम के साथ प्रफ शोध कर मुद्रण किया है इस कार्य के लिए मैं उनका अनन्य आभारी हूँ।

आचार्यचक्रचूडामणि, यतिपतिदिनेश, जगद्गुरु, भगवान् श्रीविष्णुस्वामीजी महाराज का जीवन चरित एवं चित्रपट आदि प्रकाशन तथा अन्वेषण कार्य में खर्च का विवरण।

(१) श्रीआचार्य तल चित्र प्रथम निर्माण में खर्च (रु. ५२)
(२) वृन्दावन में अखिलभारत श्रीविष्णुस्वामी महासभा स्थापित करने में तथा साहित्य अन्वेषण में यात्रा खर्च (रु. ११८)

(३) उज्जैन कुम्भ पर्व पर कलाधारी बगीचा वृन्दावन के महान्त श्रीदयालदासजी को अ. भा. श्री. वि. महासभा के प्रथम अधिवेशन में रु. ५१)
(४) आचार्य चरण के त्रिरङ्गा ब्लॉक में रु. १२०)
(५) ,, ,, ,, चित्र में रु. ६०)
(६) मेरा द्वितिय अन्वेषण में वृन्दावन विष्णु-स्वामी सम्प्रदाय के सन्त-महात्माओं के बुलाने पर ... ... रु. ७५)
(७) सन् १९५२ से ५९ ई० तक के पत्र व्यवहार और गमनागमन कार्य में रु. ४८)
(८) आचार्य चरण के छोटे त्रिरंगे ब्लॉक में रु. ५७)
(९) ,, ,, ,, चित्र में रु. ३८)
(१०) श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय के महान्त-सन्तों के ब्लॉक बनाने में— रु. १००)
(११) "श्रीविष्णुस्वामी जीवन दर्पण" प्रकाशन में, रु. ८७६)
(१२) साहित्यसंग्रह पुस्तकों में रु. ११६)

कुल — रु. १७११)

उपर्युक्त खर्च सन् १९५२ से लेकर इस ग्रन्थ के छपने तक का है, जो मेरे द्वारा हुआ है। वैष्णवरत्न मेरे दादा-गुरु महान्तजी महाराज तथा उनके शिष्य गोलोकनिवासी महान्त श्रीप्रह्लाददासजी महाराज ने सम्प्रदाय की सेवा के लिये समय समय पर आवश्यकता के अनुसार द्रव्य प्रदान किया है। इसके लिये मैं स्वर्गीय महान्त प्रह्लाददासजी महाराज तथा महामुनिन्द्र वैष्णवरत्न महान्त स्वामी श्री-नारायणदासजी महाराज की कृतज्ञता को आनन्द पूर्वक स्वीकार करता हूँ। ऐसे उदारचेता महान्तजी का उदार

सराहनीय सेवाकार्य का अनुकरण, आचार्य विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के माननीय विज्ञ कर्णधार सादर पूर्वक करेंगे। पतत सम्प्रदाय सम्बन्धी अन्य इतिहास प्रकाशन योग्य मेरे पास हैं, जो आचार्य विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के और अन्य आचार्य महानुभावों के द्वारा रचित हैं। वे साहित्य मुझे आचार्य चरण श्रीविष्णुस्वामी भगवत् पाद की कृपा से उपलब्ध हुए हैं। यदि किसी भी पूज्य महान्त-सन्तों को इन ग्रन्थों में से एक भी ग्रन्थ को प्रकाशन करने की इच्छा हो तो अहमदाबाद के पते से मेरे साथ पत्र व्यवहार करें। यह सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार, पवित्रतम पूण्य कार्य है जो महानुभाव इस कार्य को पूरा करेंगे उनकी उज्ज्वल कीर्ति सदा-सर्वदा अखण्डित रहेगी, आप पूजनीय महान्त सन्त अपनी लक्ष्मी को इस सम्प्रदाय के कार्य में लगा कर अचल सुयश के भागीदार बनें।

इत्यलम्

गुरुपूर्णिमा सं. २०१५
रणछोड़जी का मन्दिर
बड़की पोल, रायपुर
अहमदावाद-१

पूजनीय सन्त चरणरेणु
जयरामदास वैद्य

लेखक का उद्‌गार

भगवदीय प्रेरणा से ही काल के तीन विभाग किये गये हैं। भूत-वर्तमान तथा भविष्य, ये ही उनके तीन नाम हैं। इन्हीं तीनों कालों में विभक्त हो कर जगत् अपनी गति को निर्धारित करता है। इन तीनों में से एक कोई भी अपने अस्तित्व को छोड़ नहीं सकता है। यदि कोई अपने अस्तित्व को त्याग कर दे तो जगत् के संचालन में कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायेंगी। इन तीनों का परस्पर कार्यकारण भाव भी है। तीनों एक दूसरे के कार्य तथा कारण भी पड़ते। इस लिये भूत को छोड़ कर न वर्तमान की रचना हो सकती है और न भविष की। भविष्य तथा वर्तमान को छोड़ कर भूत का भी ज्ञान नहीं हो सकता है। अब यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि यदि मानव को अपने भविष्य तथा वर्तमान को निजानुकूल बनाना हो तो यथा सम्भव भूत को खोजना चाहिये। भूत ही वर्तमान की भूमिका तथा भविष्य वर्तमान का चरम विकास है। भूत ही वर्तमान की आधार शिला है। उसी के आड़ से सुदृढ़ वर्तमान तथा भविष्य को उज्ज्वल बनाया जा सकता है।

उपर्युक्त नियम के अनुसार विचारमयी दृष्टि से जब हम विश्व को देखते हैं, तब ज्ञात होता है कि आज वह अनेक विभागों में विभक्त है। आज का मानव समाज भी अनेक भागों में बटा है। सभी भागों के एक-एक अधिष्ठाता तथा आचार्य हैं। किसी विभाग का स्वरूप राजनैतिक, किसी का आर्थिक, सामाजिक तथा किसी का आध्यात्मिक। सभी लोग अपने भूत को लेकर अपने वर्तमान को सजाते हैं। अपने भविष्य को सर्वोत्तम भूमिका तैयार करते हैं। हमारे भूत कैसा है

उसी को सब संसार के सामने रखते हैं। अपने पूर्वाचार्यों की हर विशेषता का विचार, प्रचार तथा प्रसार किया करते हैं। वही नि विश्व के सभी समाजों में देखा जाता है।

हमारे श्रीवैष्णव समाज में भी चार सम्प्रदाय हैं। चारों स दायों के चार पूज्य आचार्य हैं। प्रायः सभी की विस्तृत जीवनियाँ सभी के अनुयायी लोग उन जीवनियों के आधार से ही अपने वर्त की व्याख्या करते हैं। उन्हीं चारों सम्प्रदायों में से एक आ श्रीविष्णु स्वामी का सम्प्रदाय है, जिसको रौद्र सम्प्रदाय भी कहते अभी तक जब कि सभी आचार्य पूर्ण प्रकाश में विराजते हैं आ जीवन वृत्त अन्धकारमय है। सम्प्रदाय निष्ठ महात्माओं के अ करण उसको खोज रहा है। इतिहास की दृष्टि से आचार्य विष्णु स्वामी प्रथम आचार्य माने जाते हैं। अनेक विचारकों ने इ तथ्य रूप से स्वीकार किया है। आप श्रीमच्छंकराचार्यजी से भी पूर्व आपने ब्रह्मसूत्रों पर सर्वज्ञ सूक्त, नामक भाष्य भी किया है। आ किसी शिष्य ने न्याय वार्तिक पर भी कुछ लिखा है। परन्तु दु की बात है कि आज कुछ भी नहीं मिलता। फलतः सब कुछ हुए भी आज कुछ भी नहीं। इसका कारण, यदि आपको जानन तो जान लीजिये। इसका कारण है समय और परिस्थिति। स की बात है। आचार्य श्रीविष्णु स्वामी के बाद हजारों वर्षों अविच्छिन्न रूप से सम्प्रदाय चलता आ रहा। समय की गति के क इसकी धारा टूट गयी। लगभग ८०० वर्षों तक कोई सुदृढ़ न मिला अतएव सम्प्रदाय विच्छिन्न जैसा हो गया। उसके

आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी का अवतार हुआ। हजारों वर्षों तक जीवित रहने वाले आचार्य विल्वमंगलाचार्यजी ने श्रीमद्वल्लभाचार्यजी को स्वप्न में इस शुद्धाद्वैत मार्ग का उपदेश दिया, जो आचार्य श्रीविष्णुस्वामी का सिद्धान्त था। आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी ने एक विलुप्त प्रायः विशुद्ध भक्ति मार्ग का पुनःसञ्जीवन किया। एक समय पुनः आचार्य श्रीविष्णुस्वामी का सिद्धान्त मानव जगत् के सामने आया।

आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी महान् थे। उन्होंने महत्व कार्य किया। उसके बाद कुछ लोगों को यह धून चढ़ी कि हम आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी को स्वतन्त्र आचार्य के रूप में माने और यही बात पीछे के लोगों में प्रचरित हो गयी। यही कारण है कि आज पर-आचार्य श्रीविष्णुस्वामी के विषय में कुछ भी साहित्य नहीं मिलता है। आज के कुछ साम्प्रदायिक विचारकों ने तो यहाँ तक निश्चय कर लिया है कि श्रीवल्लभदिग्विजय, सम्प्रदाय प्रदीप आदि अनेक ग्रन्थों में आचार्य श्रीविष्णुस्वामी का जो नाम आया है, उस दिग्विजयस्थ नाम को कपोल कल्पना कह कर अप्रमाणित मान लेना चाहिये। अब बताइये के इस परिस्थिति में किस तरह कोई साहित्य सुरक्षित रह सकता है। अस्तु मैं कुछ और लिखना चाहता था, प्रस्तुत प्रसंग पर आ जायें।

१९५२ अथवा ५३ का समय था। अध्ययन के विशेष तु-विशेष सुविधा के लिये मैं अहमदाबाद आया था। रायपुरमें आचार्य श्रीविष्णुस्वामी के सम्प्रदाय का मन्दिर है। जहाँ भगवन्निष्ठ गीताध्यायी वयोवृद्ध महाराज श्रीनारायणदासजी बाबा निवास करते हैं। आप

इस स्थान में सम्भवतः ५० वर्षों से निवास करते हैं। इस सम
आपकी अवस्था भी सम्भवतः ८० वर्ष की हो गई है। जब मैं यहाँ स
प्रथम आया था तब आपके कृपापात्र बाबा श्रीप्रह्लाददासजी महारा
महान्त पद पर थे। जो आज नहीं हैं। स्व. महान्त श्रीप्रह्लाददास
महाराज के साधक शिष्य पं. श्रीजयरामदासजी वैद्य भूषण जी
यहीं निवास करते थे और अभी भी हैं। मैं आया और यहीं
कर परीक्षा का अभ्यास करने लगा। कभी कभी साम्प्रदायिक आचा
की भी बातें हो जाया करती थीं। भाई श्रीजयरामदासजी जो हम
अनन्य मित्र भी हैं, आचार्य श्रीविष्णुस्वामी के चित्र पट तथा साहि
के अन्वेषण में लगे थे। धीरे-धीरे मैं भी भाग लेने लगा। पं. श्रीजयराम
दासजी निरन्तर अथक परिश्रम कर प्राचीन इतिहासों को खोज
थे। मैंने भी कहा कि मुझसे भी जो आचार्य श्री की सेवा हो सकेग
करूँगा। उसके बाद पं. श्रीजयरामदासजी ने तन तोड़ परिश्र
किया। इस अन्वेषण में समय तथा धन दोनों का व्यय हुआ। अने
कठिनाइयाँ भी आयीं। अनेक बन्धु ऐसे थे जिनसे पर्याप्त सहायता
आशा थी, उनके सामने प्रश्न भी रखा गया, परन्तु इस कार्य
उनका नेतृत्व खतम हो जाता था। परिणामतः वे विरोधी बने। सम्भ
वतः अभी भी विरोध करेंगे। कारण कि वे लोग आचार्यश्री की सेवा
अपेक्षा अपने नेतृत्व का अधिक महत्व रखते हैं। मैं तो यही कहूंग
कि आचार्य चरण उनको सद्बुद्धि दें जिसे वे लोग आचार्यश्री
सेवा का महत्व समझें।

अनेक कठिनाइयों के बाद लगभग पूर्ण सामग्री तैयार भी ह

गयी। अब मेरी सेवा की बात आयी, मैं भी सेवा में संलग्न हुआ। इस में भी अनेक कठिनाइयाँ थीं। आचार्यश्री के माता पिता का नाम उनके जगह अनेक प्रकार से थे। यहाँ से मैं सौरों (सूकरक्षेत्र) गया-वहाँ अन्य ही प्रकार की कथा मिली। श्रीविष्णु स्वामी चरितामृत नामक ग्रन्थ, श्रीतुलसी स्मारक समिति में पं. श्रीवेदव्रत, जी आर्य के पास था। उसमें अनेक प्रकार की इतिहास विरुद्ध बातें हैं। उसी ग्रन्थ में आचार्य को वही वंशोत्पन्न बताया गया है। अनेक बातों के साथ आचार्यश्री के विवाह की भी बात आयी है। अधिक से अधिक प्रामाणिक ग्रन्थों में यह बात नहीं आयी है। अनेक बातें आयीं जो नितान्त असंगत हैं। समस्त जीवन जो इस पुस्तक में संग्रहित है, वह अनेक स्थानों से लिया गया है। अनेक कथानकों को अनेक स्थानों से लेकर मैंने एक जगह पर जमा किया है, ये ही, मेरी कृति है। लेख संग्रहीत है और भी, उनके अतिरिक्त भी अनेक कथानक ऐसे मिले हैं जिनका इस पुस्तक में होना अत्यावश्यक था, किन्तु अनेक कारण वश वे नहीं दिये जा सके हैं। सम्भवतः दूसरी आवृत्ति में दिये जायेंगे। आचार्य श्रीविष्णुस्वामी तथा श्रीवल्लभाचार्य के सम्बन्ध में अनेक बातें उठ खड़ी हो गयी हैं, अनेक लोग दोनों का किसी भी प्रकार सम्बन्ध मानते ही नहीं हैं। कुछ लोगों का कथन है कि आचार्य श्रीविष्णुस्वामी का कुछ और सिद्धान्त था श्रीवल्लभा-चार्यजी का और कुछ, इन तमाम बातों के समाधान के लिये मैं एक दूसरी पुस्तक लिख रहा हूँ, जिसका नाम है आचार्य श्रीविष्णु-स्वामी तथा श्रीमद्वल्लभाचार्य। इस पुस्तक में इस बात का खास

विचार किया जायेगा कि उपर्युक्त आचार्यों में किस प्रकार का सन्बन्ध था।

आचार्य श्रीविष्णुस्वामी की जीवनी लिखने में कठिनता एक यह रही कि कथानकों की विषमता, पहले तो उनके पिताश्री के नाम में ही अनेक स्वरूप प्राप्त हैं। कहीं पर गोपाल भट्ट है। नारायण भट्ट, कहीं पर श्रीदेवस्वामी है, कहीं पर देवेश्वर भट्ट है और भी अनेक नाम मिले हैं। यही बात माताश्री का भी है। निवास स्थान में एक सिद्धान्त नहीं है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये बहुमत को ध्यान में रखकर ही अर्थात् अधिक से अधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक पुस्तकों और लेखों में जो नाम मिले हैं उन्हीं को रखा गया है। जन्म-भूमि के अनेक नाम हैं। जैसे कि, मधुरा–मदुरा–दाक्षिणात्य मथुरा इत्यादि। यत्र-तत्र मथुरा, मधुरा एवं मदुरा भी रखा गया है। श्री-पाण्ड्यनरेश राजा के विषय बहुमत सिद्धान्त का ध्यान रखा गया है। आचार्यश्री के सिद्धान्त के विषय को ध्यान में रखा गया। ऐसे दार्शनिक विवेचन सरल नहीं है। फिर भी यत्र-तत्र उसका भी समा-वेश किया है। जैसे कि 'अविकृत परिणाम वाद', इत्यादि इन सब विषयों को खाश ध्यान इस लिये दिया गया है, जिससे साम्प्रदायिक महात्माओं को अपने प्रमाण तथा प्रमेय का भी ध्यान रहे। आज कल प्रायः महात्माओं में इन चीजों का अभाव जैसा दिखता है। इस लिये मैं आशा करता हूँ कि महात्मा लोग खाश कर जो लोग दो पन्ने की पुस्तक लिखकर समाज का नेता बन जाना चाहते हैं, वे लोग अवश्य ध्यान देगें। अब मैं बन्धु श्रीजयरामदासजी को धन्यवाद देता

हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक की सामग्रियों को खोजने में तन तोड़ परिश्रम किया है। यदि इसी तरह के २-४ भी आचार्य प्रेमी, सम्प्रदाय सेवक, उत्साही एवं उद्योगी सन्त, समाज में हो जाय तो अवश्य समाज का उत्कर्ष हो जाय। सहस्रों धन्यवाद तो परम आदरणीय प्रातःस्मरणीय बाबा महान्त श्रीनारायणदासजी महाराज के लिये है, जिनकी छत्र-छाया में यह ग्रन्थ लिखा गया तथा जिनकी कृपा तथा जिनके द्रव्य से यह ग्रन्थ प्रकाश में आया है, और समस्त सम्प्रदायनिष्ठ महात्माओं को धन्यवाद है, जो लोग प्रेम पूर्वक, गलतियों तथा त्रुटियों पर ध्यान न देकर आचार्यश्री के जीवन दर्पण को अवलोकन करेंगे।

रामबालकाचार्य, वेदान्ताचार्य
श्रीसरयू तीर्थ प्रेमदरवाजा
अहमदाबाद

प्रकाशकीय निवेदन

कृष्णचन्द्रसमारम्भां श्रीविष्णुस्वामिमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

सम्माननीय आचार्यनिष्ठ महात्माओ तथा भगवदीय सज्जनो! आप सब जानते हैं कि, एक सम्प्रदाय को उन्नत बनाने के लिये जिन अनेक चीजों की आवश्यकता पड़ती है, उनमें अपने सम्प्र-दायाचार्य का जीवन चरित्र अत्यावश्यक माना जाता है। हमारे सम्प्रदाय में इस चीजकी कमी के कारण जब तब मुझे अत्यधिक दुःख हुआ करता था। मदतिरिक्त तीनों सम्प्रदायों के उत्साह तथा आचार्य

प्रम को देखकर विचार करता था कि यह हमारे सम्प्रदाय में क्यों नहीं। बहुत दिनों से मेरी अभिलाषा थी कि आचार्य श्रीविष्णुस्वामी का जीवन चरित लिखा जाय। इस बात की चर्चा मैं अपने शिष्य श्रीप्रह्लाददासजी से बार-बार करता था। मैंने नागफनी वाले महान्त और गिरनारवाले महान्तसे भी बात की। मेरा प्रशिष्य जयरामदासजी से बातें हुईं। जयराम के अदम्य उत्साह से आचार्यश्री का चित्र-पट मिला और साहित्य का संग्रह भी हुआ। श्रीरामबालकाचार्य वेदान्ती ने उसका उचित उपयोग करके आचार्य श्रीविष्णुस्वामी का जीवनदर्पण लिखकर आप लोगों को दिया है। यदि इस पुस्तक से स्वसम्प्रदाय का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपने को धन्य समझूंगा। सम्प्रदाय के समस्त सन्त-महान्त महानुभावों का कर्तव्य है कि वे आचार्य तथा सम्प्रदाय की तनमन तथा धन से सेवा करें। मैं भी आचार्य श्रीविष्णुस्वामी के पवित्र सम्प्रदाय का एक नगण्य सेवक हूँ। यथाशक्ति मैंने आचार्य तथा सम्प्रदाय की इस सेवा को अपना कर्तव्य मात्र का ही निर्वाह किया है। यदि आचार्यश्री तथा सम्प्रदायनिष्ठ सन्त-महात्माओं की कृपा होगी और हमारी सेवा की आवश्यकता समाज को मालूम हुई तो भविष्य में भी करता रहूंगा। समाज से प्रार्थना भी करता हूँ कि सन्त महात्मा इस सेवा को स्वीकार करके मुझे आशीर्वाद दें, जिससे श्रीआचार्यचरण में हमारा प्रेम बना रहे।

सम्प्रदाय सेवक

— महान्त श्रीनारायणदासजी —

संशोधकीय वक्तव्य

पाठक महानुभाव !

मुखमस्ति किमपि वक्तव्यम्। हस्तोऽस्ति किमपि लेखनीयम्। के अनुसार कुछ बोलना, लिखना, संग्रहकरना, संशोधनादि करना कुछ और बात है, परन्तु एक महान आचार्य का जीवनवृत्त लिखना, उसका संग्रह करना एवं उसका संशोधन करना और बात है। धर्माचार्यों के जीवनवृत्त, विशेष रूप से अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। राजाओं के जीवनवृत्त, विशेष रूप से राजनीति का प्रतिपादन करते हैं। जिस जीवनवृत्त में इस नियम का पालन नहीं है, वह जीवनवृत्त सर्वाङ्ग सम्पन्न नहीं है।

धर्माचार्यों के जीवनवृत्त लिखने वाला, संग्रह करने वाला और संशोधन करने वाला, संस्कृत-साहित्य का विद्वान होना चाहिये, क्योंकि इस जीवनवृत्त में सिद्धान्त ही मुख्य विषय है। यदि संस्कृत अनभिज्ञ व्यक्ति इस विषय में साहस करेगा तो अवश्य उसकी हँसी होगी। इस ग्रन्थ के कार्यकर्ता संस्कृतभाषा के प्रकाण्ड पण्डित हैं, अतः यह ग्रन्थ अवश्य ही सर्वाङ्ग सम्पन्न है।

लेखक तथा संग्रहकर्ता का यह ग्रन्थ, प्रथम पुष्प होने से प्रूफ-संशोधन में मुझे जो परिश्रम करना पड़ा है, उसको मैं ही जानता हूँ। अमूल्य समय को व्यय करके, अहमदाबाद की गर्मी को सहन कर इस ग्रन्थ का प्रूफ-संशोधन, जो मैंने किया है, उसका मूल्य कारण

प्रकाशक महानुभाव का प्रेम ही है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन कर्ता महान्त बाबा श्रीनारायणदासजी महाराज हैं। जो-जो गुण, एक साधु में होने चाहियें, वे सभी गुण आप में परिपूर्ण हैं। आप दूसरों की उन्नति को देख कर प्रसन्न हो जाते हैं और दूसरों के दुःख को देख कर दुःखी भी हो जाते हैं। आपमें जो-जो गुण हैं वे सभी अनुकरणीय हैं। जब कि इस समय का महान्त समाज मृत्युपर्यन्त महन्थाई को नहीं छोड़ता है तब आपने सशक्त होने पर भी अपने शिष्य को अपनी महन्ताई दे दी है। यह कार्य महान्त-समाज के लिये अनुकरणीय है। प्रातः काल से लेकर सांयकाल तक गीता का पाठ आप के मुख से सुनने में आता है।

किं बहुना सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः।

आदरणीय पाठक महानुभाव !——

आप महानुभावों से नम्र निवेदन है कि यह ग्रन्थ प्रथम संस्करण होने से यदि मानवीय स्वभाव के कारण संशोधन कार्य में कुछ अशुद्धियां रह गई हों तो अशुद्धि की तरफ ध्यान न देकर सन्त-स्वभाव होने के कारण इस आचार्यजीवनवृत्त को मनन करके मेरे परिश्रम को सफल बनावें।

संशोधक—

वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री

महान्त श्रीनारायणदासजी महाराज का

परिचय

श्रीमान् महान्त स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज का जन्म वि. सं. १९३६, सन् १८८० में व्रजमण्डल के डीड (डीग) ग्राम में हुआ था। आपका जन्म, आदिगौड़ भारद्वाज-गोत्र और माध्यान्दिनी शाखा के पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। आप बाल्या-वस्था से ही माता-पिता से हीन होने के कारण समीप के किसी सम्बन्धी के वहाँ रहते थे। श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय के महान यशस्वी श्रीमहान्त सरयूदासजी महाराज, जो उस वक्त जमात घुमाते थे, आप उनके शिष्य हुए। आप १८-२० वर्ष तक गुरुदेव की सेवा में रहकर विरक्तोचित भगवत् भागवत सेवा तथा सैद्धान्तिक कर्म-काण्ड में निपुण हुए। शिष्य होने के बाद आपकी जमात बून्दी (राजस्थान) में आगई जो विष्णुस्वामी जमात अद्यापि बून्दी में ही है। आपने बून्दी से निकलकर तीर्थयात्रा करते हुये अहमदाबाद के रायपुर दरवाजा तारकस वाडी में आकर निवास किया वहाँ के महान्त श्रीरतनदासजी महाराज ने आपके शील स्वभाव पर मुग्ध होकर अपना वारिसदार आपको बनाया। तदुपरांत अहमदाबाद बड़की पोल की जनता ने आपको रायपुर बड़की पोल रणछोडजी का मन्दिर सौंप दिया। करीब ४०-४५ वर्षों से आप वहाँ की महन्ताई कर रहे हैं, आप श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय के एक महान विभूति हैं। अहर्निश भगवत् सेवा में संलग्न रहते हैं। गीता, विष्णु-सहस्र नाम, गोपाल सहस्रनामादि पवित्र स्तोत्रों का अनेकों बार अनुष्ठान किया करते हैं, और उन्हीं का सर्वदा मनन किया करते हैं। आपकी अवस्था करीब ८० वर्ष की हो

चुकी है, किन्तु सदाचार और भजन-अर्चन के प्रभाव से बारीक से बारीक अक्षर बिना चश्मा से पढ़ लेते हैं, और दाँत भी आपके अभी कुन्दकली के समान उज्ज्वल और दृढ हैं अर्थात् अस्सी वर्ष की उमर होने पर भी दन्तावली सुरक्षित है। आप एक महान तपस्वी होते हुये भी एक अलौकिक त्यागी भी हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैं देख चुका हूँ कि सन् १९५१ में आप अपने शिष्य प्रह्लाददासजी महाराज को महन्ताई देकर स्थान का संपूर्ण व्यवहार, सौंप कर भगवत् स्मरण और भगवत् प्रसाद के सिवाय स्थानीय संपूर्ण व्यवहार से मुक्त हो गये हैं।

शिष्य के प्रति सद्भावना

इडरराज्य मउग्राम के महान्त श्रीकल्याणदासजी महाराज. जो आपके साधक शिष्य थे, वे आपसे पुष्कल द्रव्य आवश्यक कार्य के लिये ले गये थे, परन्तु अन्त समय तक आपको वापिस नहीं दे सके। अन्त समय में कल्याणदासजी महाराज करुणादृष्टि से आपकी तरफ पलक बिना मारे देख रहे थे। आँशु की धारा बह रही थी, मानो आपको कुछ कहना चाहते थे। इस दृश्य को देखकर आपका साधुहृदय द्रवित हो गया। आपने उस समय कहा कि कुछ शोच मत करो तुम मेरे ऋण से मुक्त हो। मैं तुम्हारा कल्याण चाहता हूँ। ऐसा सुनकर वे सन्त उसी समय दिव्य धाम को चले गये। यह आपकी सद्भावना है शिष्य के प्रति।

भगवन्निष्ठा

आपकी भगवन्निष्ठा अत्युत्तम है। यदि किसी समय भगवान के प्रसाद में रसोइया रामरसादि भूल जावे तो

आप उसी तरह से उसको सेवन करते हैं। पश्चात् रामरसादि नहीं लेते। आपका सिद्धान्त है कि जो भगवान को भोग लग चुका है, उसमें परिवर्तन करके भोजन करना साधु का धर्म नहीं है। यह निष्ठा साधुसमाज के लिये अनुकरणीय है।

लब्ध प्रतिष्ठित, सिद्ध पुरुष हैं,
नर—नारायण; ज्योति स्वरूप।
स्वास-स्वास में गीता की ध्वनि,
कल्मष-हारिणी गूञती अनूप॥
सन्तगणों में आप पूज्य हैं,
शान्त प्रकृति, सद्गुण स्वरूप।
दर्श मात्र से रोग क्लेष सब,
मिटजाते फल भजन स्वरूप॥
भव्य वदन, भाल अति विशाल,
है शुभ प्रसन्न आकृति लाल।
वस्त्र शुक्ल गले तुलसी माल,
शोभित पवित्रतम तिलक भाल॥
नव नित्य नियम श्रीकृष्ण प्रेम,
मन-वचन-कर्म अनुराग खेम।
दिन-रात भजन तप-जाप नेह,
माला कर में प्रभु चरण स्नेह॥
तारण-तरण जन सन्त पाल,
श्रीविष्णुस्वामी के सुहृद् लाल।
नाम नारायण सफल किये,
वल्लभ कृतार्थ सर्वदा हुये॥

सन्तकवि श्रीरामवल्लभ

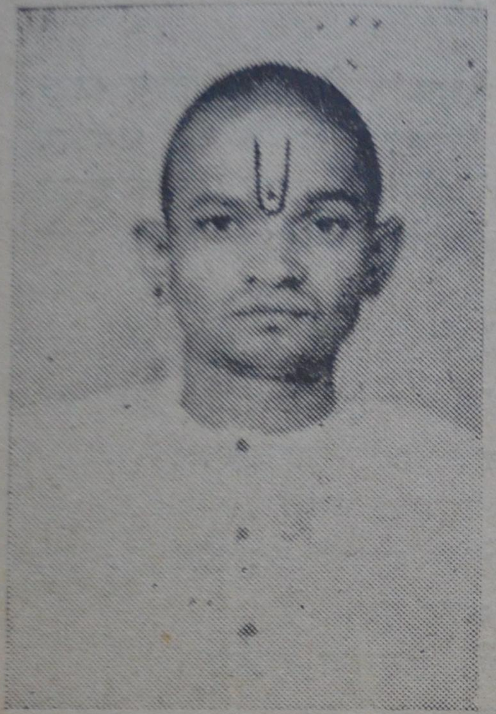

गोलोकनिवासी महान्त श्रीप्रहलाददासजी महाराज

समर्पण

जिनकी ही प्रेरणा से इस ग्रन्थरत्न का निर्माण हुआ है, उन श्रीविष्णुस्वामी संप्रदाय के महान विभूति गोलोकनिवासी मेरे गुरुदेव स्वामी श्रीप्रहलाददासजी महाराज की पुनीत सेवा में, इस पवित्र ग्रन्थरत्न को आचार्य श्रीविष्णुस्वामी जयन्ती के उपलक्ष में समर्पण करता हूँ।

जयरामदास

नि. म. मण्डलाचार्यचक्रचूडामणि अनन्तश्रीविभूषित
जगद्गुरु भगवान

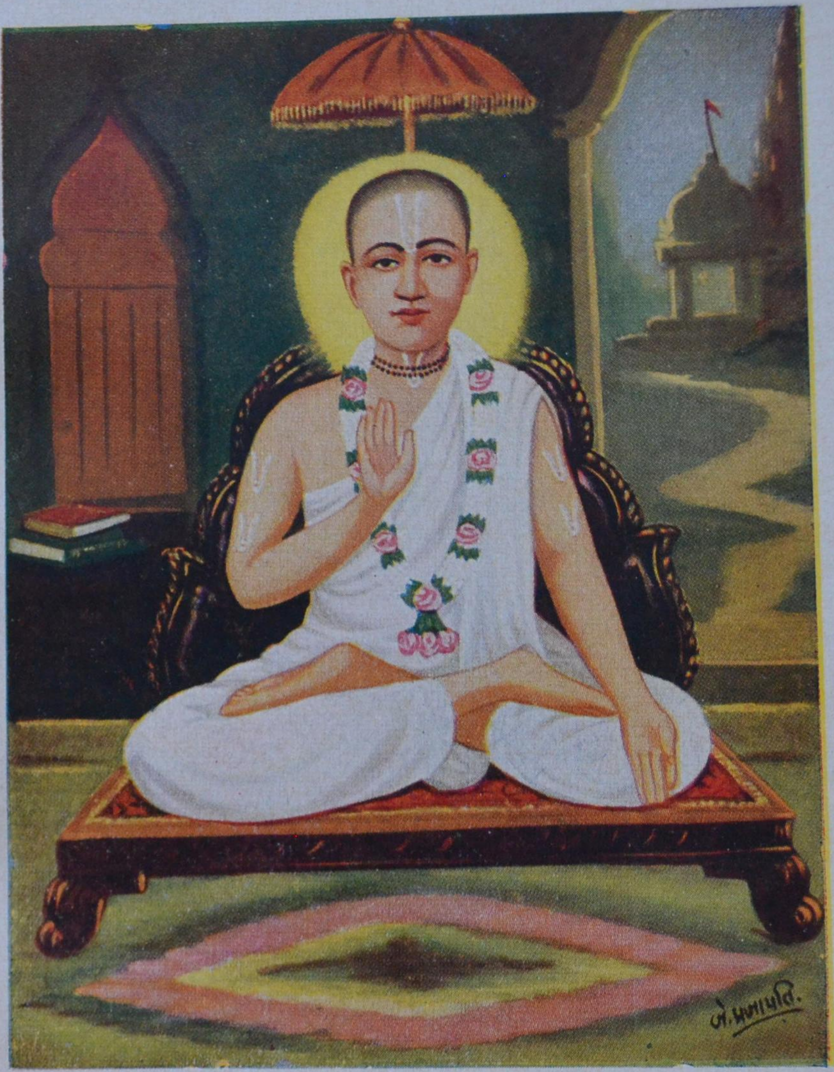

श्री १००८ श्रीविष्णुस्वामीजी महाराज

श्रीविष्णुस्वामिसम्प्रदाय के समस्त सन्तों-महान्तों के द्वारा सम्मानित, प्रमाणित, प्रचारित तथा प्रसारित यह चित्रपट है।

॥ श्रीः ॥

नमो भगवते श्रीविष्णुस्वामिने

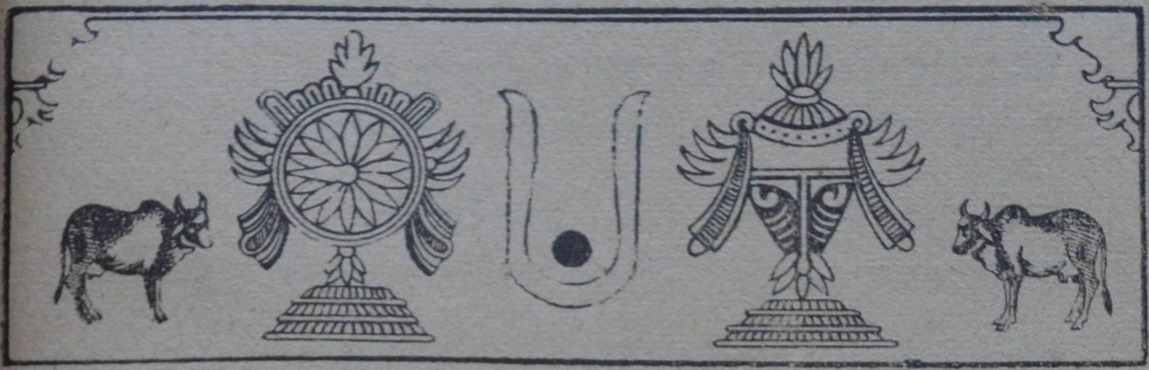

श्रीविष्णुस्वामी जीवन दर्पण

परम्परा वन्दन

जगद्रूपं यस्य प्रचुरगिरिपाथोधिसहितम्,
सदा शुद्धो यः श्रीनरतनुमधाद् गोपनिचये ।
प्रियाणां गोपीनां मनसि निजवासं च कुरुते,
नमामस्तं कृष्णं मनसिजतनुं कान्तवपुषम् ॥ १ ॥

शिवं शिवेशं गिरिराजवासं,
भक्तप्रियं नाथमनाथजन्तोः ।
रुद्रात्मना यो हि ददाति भक्तिम्,
तं नौमि देवं धृतगोपीरूपम् ॥ २ ॥

ब्रह्मण आदिपुत्राय तपोधनाय श्रेयसे ।
नमोऽस्तु बालखिल्याय तरुणारुणरूपिणे ॥ ३ ॥

वीणावादनतत्परं मुनिवरं भक्तिप्रियं ब्रह्मजम् ,
गायन्तं हरिनाम गानरसिकं देवं सदा गामिनम् ।
जीवानां कृतिवोधकं सुखकरं भक्तिस्वरूपं सदा,
बन्देऽहं व्रजराजरूपमधुपं ध्यानस्थितं नारदम् ॥ ४॥

ब्रह्मशास्त्रप्रणेतारं ब्रह्ममार्गप्रदर्शकम् ।
तं देवं सर्वदा वन्दे व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥ ५॥

शुकं व्याससुतं वन्दे निर्मलज्ञानदीपकम् ।
भगवच्छास्त्रवक्तारं ब्रह्मज्ञं बालयोगिनम् ॥ ६॥

ज्ञानप्रकाशेन विरोचयन्तं,
चराचरं यत्किञ्चिज्जगत्याम् ।
शुद्धं विशुद्धं त्रिपुरारिरूपं,
नमाम्यहं तं त्रिपुरारिदेवम् ॥ ७॥

श्रीविष्णुस्वामिनं वन्दे देवेश्वरसुतं विभुम् ।
कृष्णमन्त्रप्रदातारं कीर्तिमत्याः श्रेयस्करम् ॥ ८॥

विषयावतरण—१

जगत्प्रेरक परमात्मा की इच्छा से समय की गति निरन्तर चलती रहती है । कालचक्र निरन्तर निरवच्छिन्न दुरवदम्य रूप से चलता ही रहता है । उसकी गति में कब कैसा परिवर्तन होता है इसको परमात्मा के विना कोई भी नहीं जानसकता है । परात्पर प्रभु अपनी इच्छा से कालचक्र को निजानुकूल तथा प्रतिकूल बनाया करते हैं । जब जगन्नियन्ता को जगन्नियमन के लिये धराधाम पर पधारना होता है, तब तदनुकूल समय का निर्माण कर लेते हैं । अयोध्यापति के रूप में आना था तब आपने रावण को पहले ही भेज दिया। जब गोकुलेश के रूप में आना था तब कंसादिकों का निर्माण किया । यही तो प्रभु की लीला है । जो केवल भक्तों को आनन्द देने के लिये ही की जाती है । अन्यथा आप्तकाम परमात्मा के लिये लीला की आवश्यकता ही क्या है ? आनन्द-कन्द-नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गीता में अपने जन्म और कर्म को दिव्य कह कर यह भाव प्रगट किया है कि मेरे अवतार का समय तथा स्थान दोनों ही अनिश्चित है । करुणावरुणालय प्रभु कब और किस स्थान पर पधारेंगे यह उनके विना और किसी के भी ज्ञान का विषय नहीं होता । प्रिय भक्तों की भावना के अनुसार उन पतितपावन को लौहस्तम्भ-तथा सारमेय में से भी प्रकट होता देखा गया है। यही कारण है कि विश्व के कण-कण में उन प्रभु की सत्ता स्वीकार की गयी है । भारतीय संस्कृति के मूलभूत वेद-वेदाङ्ग पुराण तथा धर्मशास्त्रों में जगन्नायक के अनेक

स्वजन—हित अवतारों का सविस्तार वर्णन है। उन्हीं अवता
में से एक अनन्तशायी दयामय भगवान श्रीविष्णु के अवतार भू
विष्णुस्वामी सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्य श्रीविष्णुस्वामी का संक्षिप्त चरि
अधः लिखित है।

वह भी एक समय था जब लीला विहारी आनन्दकन्द नन्
नन्दन सर्वेश्वर भगवान गोकुलेश, निजी जगत्पावनी विश्वविमोह
लीला से व्रज वधूटियों को परमानन्द—मकरन्द का पान करा रहे थे
सारा संसार रासविहारी के सरस रास रस सागर में सराबोर था। म
मधुमय व्रजेश, कंसादि राक्षसों को निजधाम में भेजकर द्वारिकेश बन
जगत का संचालन करते थे, तब उनकी प्रेरणा से अदम्य कालच
चला जा रहा था। महाभारतोपरान्त अजातशत्रु पाण्डुतनय का शास
काल आया और चला गया। अभिमन्युसुत परीक्षित के शास
काल में ही सर्व प्रथम उन्हीं के स्वर्णीय मुकुट में अपनी कला
छलकर कलिकाल ने प्रवेश किया। फिर क्या था कलि की क
प्रचारित हुयी। निजकार्यजन्य मुनिशाप से महाराज श्रीपरीक्षित भी का
कवलित हुए। किसी का भी प्राथमिक शासन अत्यन्त कठोर हो
है। कलिका एकछत्र शासन प्राणीमात्र के लिये असह्य होने लगा
गो ब्राह्मण एवं विरक्त महात्माओं को कठोर यातनाओं का साम
करना पड़ रहा था। समस्त भारत हिंसा का सिकार वनता जा र
था। परमपिता परमेश्वर के पुत्र अल्पज्ञ जीव त्राहि—त्राहि कर रहे थे
भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्वारा प्रचारित गीता के भक्तितत्त्व का लोप होता स
देखने में आता था। ऐसे अवसर पर जगच्छरण्य अकारण कारुणि

प्रभु, भला अपनी प्रतिज्ञा को कैसे भूल सकते हैं? अतएव नित्य वैकुण्ठविहारी ने आने का समय निश्चित कर लिया।

भारतीय संस्कृति और विश्व की आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त भारत पवित्र तीर्थस्थल माना गया है। भारत में भी अयोध्या मथुरा आदि अनेकस्थल ऐसे हैं जिनमें यथा समय पधारकर नित्य साकेत-विहारी ने अनन्यभक्तों को आनन्द देने के लिये अपनी जगत्पावनी लीला का विस्तार किया है। सब कुछ होते हुए भी भगवत्प्रिया श्रीभक्तिदेवी का जन्म स्थान दक्षिण भारत स्वीकार किया गया है। उसी भगवती प्रमलक्षणाभक्ति की जन्मभूमि में एक विशाल राज्य था जिसकी राजधानी थी मदुरा। (दाक्षिणात्य मथुरा) ऐतिहासिक दृष्टि से महाराज श्रीपरीक्षित की सातवीं शताब्दि चल रही थी समस्त भारत में कलि का साम्राज्य था। उस साधुजनभयावह काल में भी ठीक वैसी ही जैसे रावणकाल में श्रीअवध, कंस काल में नन्दगाम, स्वसत्ताक देश में सतयुग का अनुभव करते थे मदुरा की भी वही दशा थी। वहाँ के राजा श्रीपांडय विजय श्रीचन्द्रध्वजजी चन्द्रवंशी थे उनके सुदृढ़-स्नायुओं में अजातशत्रु महाराज श्रीयुधिष्ठिर का खून प्रवाहित था। उनके ऊपर श्रीगोलोकविहारी की अलक्ष्य किन्तु पूर्ण कृपाथी, अतएव उनकी राज्य सीमा में कलिकाल का सहसा पूर्ण प्रवेश असम्भव था। यही कारण था कि जिससे महाराज श्रीपाण्ड्यविजयजी पूर्ण धार्मिक थे और स्वयं धर्म के अवतार माने जाते थे। महाराज की त्रिकाल सन्ध्या पूर्ण विधि से नित्य संपादित होती थी। आप प्रातः सन्ध्या के बाद हजारों दीनदुखियों को अनेक मनोनुकूल दान देकर स्वयं जल आदान करते

थे। सायं प्रातः दोनों समय आपके मूख्यद्वार पर हजारों सन्तु
ब्राह्मणों का मङ्गलमय आशिर्वाद सुनने में आता था। आपके रा
में यथा राजा तथा प्रजा की कहावत पूर्ण चरितार्थ थी। समस्त प्रजा
में धार्मिक उत्साह था। प्रत्येक गांम में एक एक मुख्य मन्दिर देख
में आते थे। जिनमें सामूहिक अर्चा होती और उत्सव मनाया जाता था
प्रत्येक घरमें निजी ठाकुर सेवा थी नित्य घड़ी-घण्ट एवंशङ्ख निनाद के सा
अर्चा एवं आरति होती थी। एक साथ समस्त राज्य मधुर स्तु
कलरव से मुखरित हो उठता था। प्राणीमात्र का जीवन नियमि
वैदिक कर्म पर था। यथा समय सभी ऋतुओं के प्रभाव पूर्ण थे
विश्वम्भरा भगवती वसुन्धरा धन–धान्यों से परिपूर्णा थी। दिशायें अ
धूमधूमित रहती थीं। अम्बरतल स्वच्छ तथा सर्व सुखावह रहता था
अर्थात् महाराज श्रीपाण्ड्यविजय के राज्य में प्राणी मात्र सुखी थे
कोई दीन दुखी न था, और न था निर्धन रोग ग्रस्त। चारों ईति
प्रभाव सून्या थीं। जहाँ पर परम पिता परमेश्वर की कृपा से स
कुछ होता था वहाँ सुख और शान्ति के विषय में कहना ही क्या

इन सभी सुख और शान्ति के निचयों के मुख्य कारण थे राज्य
प्रधान मन्त्रीजी, जिनका नाम था देवेश्वर भट्ट। आप उसी मदु
नगरी के सम्पन्न नागरिक, राज्यगुरु, और राज्य संचालक भी थे
आप प्रतिभा सम्पन्न ख्यात नामा विद्वान थे। साक्षात् धर्म की प्रतिम
थे। आपकी राज्य संचालन–शक्ति अपूर्व एवं अलौकिक थी। सम्पू
राज्य आपकी ही प्रेरणा से संचालित होता था। समस्त प्रजा आपक
देवता की तरह मानती थी। समस्त कार्यों में आपका अनुगम

करती थी। आप परमात्मा के पूर्ण कृपापात्र थे। अतएव सर्वत्र शान्ति का अनुभव करते थे।

वे जगन्नियन्ता प्रभु कब और किस भूमिका के साथ क्या करना चाहते हैं, यह ब्रह्मादि देव भी नहीं जानते हैं। जिस जीव पर पूर्ण कृपा करना चाहते हैं उसको किसी न किसी अङ्ग से अपूर्ण ही रखते हैं। कारण कि सर्वाङ्ग पूर्ण जीव परमात्मा को अतिशीघ्र भूल जाता है। अतएव अनन्तशक्ति निकेतन वे परम दयालु जीवों पर कृपा करने के लिये ही उसके तमाम सुखों के एक अङ्ग को यथा समय देने के लिये अपने पास ही रखते हैं। यही कारण था कि दयामय प्रभु के अनन्य भक्त होने पर देवेश्वर भट्ट भी सन्ताना-भाव से आज दुःखी हैं।

देवस्तुति और प्रभु दर्शन–२

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ।

कालचक्र तो निरन्तर चलता ही रहता है। उसी के प्रभाव से निखिल भारत भूभागपर कलि का शासन अपने पूर्ण प्रभाव से जाग-रूक हुआ। मानव दानव में बदलने लगे। सभी के नैमित्य कर्मों में शिथिलता आने लगी। गो ब्राह्मण एवं भगवान के प्रिय भक्तो पर प्राणान्तक विपत्ति के बादल मंडराने लगे। यत्र तत्र पापाचार बढ़ने लगा। कलि के प्रभाव से सज्जन सदाचारियों के अन्तः

करण भी कालुष्यपूर्ण देखने में आने लगे। देवस्थानों में विशुद्ध से की जगह विडम्बना होने लगी। प्राणीमात्र में हाहाकार मच गया विष्णुक्रान्ता वसुन्धरा भाराक्रान्त होने से डगमगाने लगी, भगवान् श्री शे के अनन्त फण भी काँपने लगे। अन्ततः गो—रूप—धारि धरा पितामह श्रीब्रह्माजी के शरण में गयी। साश्रुवदना पितामह शरण में जाकर उसने निजकष्ट को निवेदित किया। भगवा विरञ्चि दयार्द्र हो भगवान् श्रीशङ्कर आदि समस्त देवताओं को सा लेकर त्रिलोकनाथ भगवान् श्रीविष्णु के पास वैकुण्ठधाम में गये सभी देव मिलकर पुरुष सूक्त आदि वैदिक स्तोत्रों से परात्पर प्र की प्रार्थना करने लगे। करुणासिन्धु प्रभु तो अपना एक कान औ एक आंख सर्वदा निज अनन्य भक्तों के पास ही रखते। भक्त के बुलाने की देर रहती है, भगवान् तो आने के लिये सर्वदा तैया बैठे रहते हैं। आतुर गजराज की करुण पुकार को सुनकर मनोजव वैन तेय को भूल गये थे। अतः देवताओं ने आकाश में देखा, गरुडास पर विराजे निजजनानन्ददायी सुमधुरहास्य से जगत को प्रकाशि करते हुए विराजमान हैं। पहले तो अनन्तसूर्य प्रभापुञ्ज को देखक देवताओं की आँखें चका चौंध में पड़ गयीं। पुनः प्रभु की कृप प्राप्त होने पर उस नीलनीरदश्याम मधुर मनोहर मंगलमयी मूर्ति क साष्टाङ्ग प्रणिपातकर अपने दुःख को सुनाने लगे। पृथ्वी ने कहा- प्रभो जब जब मेरे ऊपर भार की वृद्धि हुई है तभी तभी आप विविध अवतारों को लेकर उनको कम किया है। आपने रामावतार रावण को मार कर मुझे स्वास्थ्यप्रदान किया। कंसकौरवादि अना-

चारियों को मारकर कृष्णावतार में आपने जिस प्रेम लक्षणा सेवा भक्ति का उपदेश रणाङ्गण में नित्य सखा पाण्डुतनय अर्जुन को दिया था, आज उसका भी लोप होता जा रहा है। अब मैं पुनः पापाचार के भार से अति पीड़ित हूँ। दयामय! मेरा उद्धार करें? ब्रह्मादि देवताओं ने धरादेवी का समर्थन किया। फिर क्या था, करुणावरुणालय का वरुणालाय सीमाअतिक्रमगामी हो गया। प्रभु अपने दोनों कर-कमलों को धरा के शिर स्थान पर स्थापित कर सुधारस वर्षिणी वाणी से कहने लगे। देवो? आप सब किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें। धराधाम पर आने के लिये मैंने पहले ही निश्चित कर लिया है। दक्षिणभारत में मदुरानामिका एक नगरी है। उस में एक देवेश्वर भट्ट नामक मेरा अनन्य भक्त निवास करता है। वह पुत्राभाव के कारण चिन्तित है अतः उसी के घरमें अवतार धारण करूँगा। जगत के कण कण में व्यापक होने के कारण लोक मुझे विष्णु कहता है। मैं उसी रूप से अवतरित हो ऊँगा, अतः मेरा नाम विष्णु स्वामी होगा। पराभक्ति का प्रचार करूँगा इस लिये जनसमूह मुझे आचार्य श्रीविष्णुस्वामी के नाम से पहचानेगा। इतना कह प्रभु अपने धाम में पधार गये। देवता लोग भी निज लोक में चले गये।

३—**क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते** महाराज श्रीदेवेश्वर भट्ट पुत्राभाव के कारण सदा चिन्तित रहा करते थे। उनकी धर्म पत्नी जिनका नाम श्रीयशोमती देवी था, वे अनुशूया की तरह पतिपरायणा और पतिव्रता थी। साक्षात् भगवती लक्ष्मी की तरह सर्वाङ्ग-सौन्दर्य पूर्ण तथा पतिसहचरी थी। अब उनका पवित्र यौवन ढ़ल

चला था। वे भी सुताभाव के कारण कुछ खोई सी रहने लगी थी
यद्यपि समस्त नागरिक लोग श्रीदेवेश्वर भट्ट को देव तथा यशोम
देवी को-देवी समझते थे। इन सबों के प्रति किसी की भी कुछ है
एवं हलकी दृष्टि न थी। फिर भी उनके मनमें एक ऐसी भावना
करती थी कि कभी कोई अपुत्रा, बन्ध्या कह कर तिरस्कार न करे
दोनों ही दम्पती अपने अपने अन्तः करण में इस असह्य विचार
का अनुभव करते थे। दोनों ही अत्यधिक दुःखी थे। किन्तु पर
प्रेमाधिक्य के कारण, एक दूसरे से एक किसी को आन्तरिक
न प्राप्त हो इस लिये अपने विचारों को कभी कोई परस्पर प्रकट
करता था। निर्धूम अग्नि की ज्वाला अन्तः करण में सदा
करती थी। सर्वसम्पत्ति के होते हुए भी—'अपुत्रस्य गृहं शून्यम्'—के
सार सब तरह सम्पन्न घर भी श्मशानवत नीरव, शून्य सा प्र
होता था। वैदिक मर्यादा के अनुसार दिवंगत पितृयों को संतु
तथा सुखी करने के लिये भी एक पुत्र का होना नितान्त आवश्
था। अतएव दोनों दम्पती पितृ ऋण के भार से अपने को
मानते थे। इसी प्रकार चिन्ता में ही अनेक वर्ष व्यतीत हो गये।

मानव प्राणी की भावनाऐं सदा निर्बल तथा क्षणिक होती हैं
धीरे धीरे अधिकांश प्रजा के अन्तः करण में इन दम्पती के प्रति सह
नुभूति—तथा कुछ क्षुद्र जीवों के मन में दुःख और तिरस्कार की भाव
भी जागृत होने लगी। एक दिन कोई एक सम्भ्रान्त नागरिक प्रा
काल में ही कहीं ग्रामान्तर को जा रहा था। मार्ग में ही श्रीदेवे
भट्टजी का घर पड़ता था। माता श्री यशोमतीजी, प्रातः समस्त

को साफ कर कचड़ा फेंकने के लिये बाहर दरवाजे आयी थी। उस आदमी की नजर श्रीमाताजी पर पड़ी और वह पीछे लौट गया। घर जाकर अपनी मानसिक दुर्वलता पर पश्चात्ताप करता हुआ कुछ देर मौन बैठा रहा, पुनः थोड़ी देर में अतिनम्र होकर श्रीमाताजी के पास आकर स विनय नमस्कार करके प्रार्थना करने लगा। हे देवी ? आज आपके प्रति मेरे मन में अमंगल की भावना अंकुरित हुई थी। इस मानसिक अपराध के लिये क्षमायाचक होकर आपके शरण में आया हूँ क्षमा करें ? कारण कि आप साक्षात् जगन्माता के अवतार हैं। आपके पवित्र दर्शन से समस्त अमंगल अपने आप नष्ट हो जाते हैं। इतना कह वह माताजी के चरण पकड़ रोने लगा। माताजी ने शान्ति पूर्वक समझा बुझाकर वापस भेजा और निज कार्य करने लगी।

जगत्पिता को पुत्र के रूप में प्राप्त करना सर्वसुलभ नहीं है। इस निमित्त अनन्य प्रेम, हार्दिक श्रद्धा एवं आन्तरिक अटल विश्वास की आवश्यकता पड़ती है। प्रभु निजभक्तों की पूर्ण परीक्षा लेते हैं। भक्त जब निरभिमान होकर निज को निजी परीक्षा में निष्फल समझ कर अधीर हो उठता है तब परम पिता दर्शन देकर उसको कृतार्थ करते हैं। आज इस अप्रत्यासित घटना से माताजी को असह्य दुःख हुआ। निरन्तर शान्त और संतुष्ट रहने वाला हृदय भी आज चंचल होने लगा। चिरसञ्चित आन्तरिक अग्निज्वाला सहसा भभक उठी। माताजी निज मन्दिर में जाकर भगवान् श्री महाप्रभु की करुणामयी मूर्ति के सामने रोने और प्रार्थना करने लगी। उस समय श्रीदेवेश्वरभट्ट कहीं गये हुए थे। आने पर उन्होंने घर की स्थिति

देखी, पूछने पर सभी घटनायें ज्ञात हुयीं । वे भी साश्रु–मुख हो
परमात्मा की निर्मल स्वर्ण प्रतिमा के सामने सोष्टाङ्ग प्रणाम
श्रीमाताजी को समझाने लगे । उन दोनों ने मिलकर काफी वि
किया, फिर देवेश्वरभटजी ने कहा कि (ज्ञात—**सारोऽपि खल्वे**
संदिग्धे कार्यवस्तुनि । अतएव नगर के मूख्य विद्वानों को बु
कर कुछ उपाय सोचना चाहिये । नियत तिथि पर सभी विद्वान ए
हुये । सबका यथोचित आतिथ्य हुआ । जब सभी शान्ति से
गये तब श्रीदेवेश्वरभट्ट ने सब को बुलाने का कारण बताया । स
को बड़ी चिन्ता हुयी, और सभीने एकस्वर से एक वार्षिक सत्रा
अनुष्ठान का निर्णय किया । देवेश्वरभट ने महाराज श्रीपाण्डचक्रि
से मिलकर सभी समाचर कहे । राजा को बड़ी खुशी हुयी । सम
योग दान का बचन देकर राज्यकार्य में संलग्न हो गये । आज से
श्रीदेवेश्वरभट्ट सभार्य नगर से दूर एकपर्ण कुटीर में निवास करने लं
वानप्रस्थस्वीकार कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए परमपिता प
श्वर की आराधना करने लगे ।

भक्त तो सदा निष्पृह रहते हैं । उनके मन में कभी इच्छा
अंकुर ही नहीं होता–वे भगवान् से भी कुछ मांगना पसन्द नहीं कर
यदि ऐसे आप्त काम भक्त के हृदय में मनोरथ अंकुरित हुआ
जानना चाहिये कि प्रभु उसके द्वारा जगत का कल्याण करा
चाहते हैं, कारण कि उन्हीं की प्रेरणा से भक्तान्तःकरण में काम
उत्पन्न होती है । व्रजराज को स्वयं भक्त का पुत्र बनना था अत
उनकी प्रेरणा से दानों दम्पती तपस्या में लीन हो गये । **समय** जा

नहि लागहिं वारा,, एक वर्ष का समय चला गया । आज भादों
कृष्णाष्टमी तिथि को पूर्णाहुती थी । समस्त राज्य में श्रीकृष्णजन्मोत्सव
मनाया जा रहा था । आबालवृद्ध सभी निर्जल व्रत का पालन कर रहे थे ।
सभी नगरभर में धार्मिक उल्लास था । प्रतिगृह में भगवन्नाम कीर्तन हो
रहा था । इधर पूर्ण वार्षिक व्रत करने के बाद भी कुछ सन्तोष
जनक परिणाम न देखने के कारण दम्पती उदास थे । दिन वीत
गया मध्यरात्री का समय आया–नन्दलाल की आरती हुई । तदनन्तर
दोनों प्राणी प्रभु की प्रतिमा के सामने बैठकर उच्च स्वर से कीर्तन
करने लगे–प्रेममें इतने मस्त हो गये कि बाह्य जगत का कुछ भी
ज्ञान न रहा । अचानक दोनों ने देखा कि एक परम मनोहर बालक
कर में वंशी धारण कर–सुमधुर स्वर से बजाता हुआ चलते कीर्तन
के ताल से दोनों के बीच में नाचने लगा । प्रातः काल तक किसी को
कुछ पूछने का ज्ञान न रहा प्रातः ४ बजे नियमित स्नान का समय
आ गया । कीर्तन बन्द हुआ–तब दोना देखते हैं कि वह बालक धीरे
से सिंहासन पर चढ़कर प्रतिमा में बिलीन हो गया । दोनों प्रभु के
सामने बैठ गये । दोनों की आँखों में आँसु थे, अन्तः करण में
महती उत्कण्ठा थी, दोनोंने एक साथ कहा । देव ? अपनी लीला का
रहस्य हमें भी समझाइये । तुरन्त भगवान श्रीविष्णुजी अपने दिव्य
आयुधों के साथ प्रकट हो गये । कोटि काम विमोहन सुन्दर पीताम्बर
धारी, नील कमलवत कोमल श्रीवत्सलांछनलांछित-हृदय, मधुर मनोहर
मङ्गलमय मूर्ति का दर्शन कर साष्टाङ्ग प्रणिपात करके अतिविनम्र
और गद्‌गद् वाणी से दोनों ने एक साथ कहा–प्रभो ? आप को कष्ट

हुआ क्षमा करें कृपया यह बतावें कि यह परम कमनीय बा
कौन था, जो आपके श्रीविग्रह में विलीन हो गया। प्रभु ने स्मितहास्य
कर कहा—वत्स ? आज तुम्हारी तपस्या पूर्ण हुई । तुमने जो पुत्र
कामना से एक वर्ष से मेरी आराधना की है—उससे प्रसन्न होकर
बालक बन गया था । अपने घर जाओ मैं तुम्हारा पुत्र बन कर तुम्
घर आऊँगा । अब तुम घर जाओ ? ऐसा कह कर प्रभु ने निज
कमलों से सपराग कमल को माताश्री यशोमतीजी को दिया ।
अन्तरध्यान होगये । वह कमल माताजी के हाथ में आते ही अ
हो गया। तथा श्रीमाताजी के मुखमण्डल पर एक अपूर्व एवं अलौकि
आभा चमकने लगी । दोनों दम्पती पूर्ण मनोरथ, आनन्द विभोर
कर उस पर्णकुटीरसे निजघर में पधार आये ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।

जिस पर परमपिता की कृपा हो जाती है उसके आनन्द
शीमा को किस वाणी से वर्णन किया जाय । दोनों दम्पती
आकर राजा से मिले और सभी कार्य पूर्ववत चलने लगा। यह अ
क्कि घटना सारे नगर—तथा समस्त राज्य में अति शीघ्र फैल गयी
इस परमहर्ष—समाचार से राज्य भर में आनन्दोल्लास उमड़ पड़
जहाँ पर ज्ञानघन परमानन्दैकमूर्ति चिदानन्दसन्दोह स्वयं पधार रहे
वहाँ के विषय में कुछ लिखना लेखनी को लज्जित करना है
सायं प्रातः देवेश्वरभट्ट के घर पर नर नारियों का पूरा जमघट लग जा
था। बाहर बैठक में श्रीदेवेश्वरभट्ट विराजते थे—वहाँ नगर संभ्रान्त त

मूख्य नागरिक उपस्थित होते थे, ढोल, झाँझ मृदङ्ग सितार आदि कर्ण सुखावह वाद्यों के साथ पवित्र श्रीभगवन्नाम कीर्तन होता था । कुछ लोग पक्के राग रागिनियों में सुमनोहर भगवत् भजन गाते थे । नित्य नये श्रृङ्गार के साथ श्रीविष्णु की दिव्य प्रतीमा की अर्चना होती थी । आरती के बाद आबाल वृद्ध-नर—नारियों को प्रसाद दिया जाता था । वैदिक सूक्तों तथा स्तोत्रों से प्रभु की स्तुति की जाती थी । सभी का जीवन प्रमोदमय था । ब्रह्मसूत्र उपनिषद्-गीता रामायण तथा अनेक पुराणों पर प्रवचन होता था । प्राणीमात्र सन्तुष्ट एवं शान्त थे । अन्दर श्रीमाता यशोमतीजी भी समागत नारियों को सत्कार पूर्वक आशन पर बैठाकर, गीता—श्रीमद्भागवत् आदि ग्रन्थों की कथा सुनाकर सबको आनिन्दत करती थी । समागत साधु-सन्त महात्मा तथा अतिथियों की नित्य यथोचित सेवा होती थी । इसी तरह नित्य सत्संगति तथा सन्त गो—ब्राह्मण सेवा में सभी के जीवन बीतने लगे । श्रीयशोमतीजी का जीवन प्रभुमय हो गया था । उन्हीं की लीला का स्मरण-उनकी प्रतिमा का सेवा पूजा तथा दर्शन से उनके शरीर में एक अलौकिक प्रकाश प्रतिदिन पढ़ने लगा ।

कालचक्र की प्रभु प्रेरित गति कभी विश्रमित नहीं होती। पुनः एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया । भाद्रपद जन्माष्टमी तिथि आगई । सभी नागरिक, श्रीगोकुलचन्द्र व्रजविहारी का जयन्तीमहोत्सव मनाने लगे । श्रीदेवेश्वरभट्ट आनन्द विभोर हो भगवान् की सेवा में संलग्न थे । माताजी की अवस्था कुछ विचित्र थी । शरीर में पुत्र प्राप्ति के कुछ भी लौकिक लक्षण दिखता न था । फिर भी उनको

प्रतिक्षण ऐसा ज्ञात होता था कि उनके सामने कोई सुमनोहर बाल खेल रहा है । मध्यरात्रि का समय प्रभुके अवतार का था । दिश शान्त तथा गम्भीर थीं । गगनतल में त्रिविध पवन का संचार हो र था। आकाश पूर्ण निर्मल न था फिर भी धून्ध या झंझाबात न था। ब्रह्म इन्द्रादिक देवगण दिव्याङ्गनाओं के साथ अपने अपने विमानों बैठकर अधोमुख होकर धरातल पर मानो कुछ खोज रहे हों। सभी हाथों में देवोद्यानजन्य दिव्य पूष्पों की मालाऐं निज दिव्य सौरभ दिशाओंको सौरभान्वित बना रही थीं। सूर्यादिक ग्रह भी उच्चस्था पर जा चुके थे । अचानक माताजी ने सुना, उनके निजी प्रकोष्ठ कोई बालक रो रहा है । उन्होंने जाकर देखा वहाँ कुछ भी न था माताजी को कुछ ग्लानि हुयी। उन्होंने शोचा कि मेरे हृदय की भावनाऐं बाहर स्वाप्निक, प्रतिभासिक सृष्टि की रचना कर रही है आँगण में बैठकर कुछ बिचार करने लगी। उनको आभास हु कि आकाश से एक प्रकाश पुञ्ज अवतरित हो रहा है। उस ज्यो निचय को देखकर चकांचौध से आँखें मुन्द गईं, जब खुलीं देखा कि सामने अलौकिक मकरन्दमय एक कमल का फूल प है। देव प्रेरणा से उसको बड़े प्रेम से उठाकर माताजी ने अपने ह से लगा लिया । मातु अंक का स्पर्श होते ही वह फूल एक बाल के रूप में परिणत हो गया । बालक बड़ा सुन्दर था । उसके शा में से शीतल प्राकश परिस्फुटित हो रहा था नील कमल के सम मधुर और कोमल उसके अंग थें। आँखे कमल की पांखड़ी के जै दीर्घ, आकर्षक और शान्त थीं । शिर पर लटकदार कुञ्चित केश थे

समस्त मुखमण्डल, शारदचन्द्र की तरह देदीप्यमान, आल्हादकर था। इस अतिमाननीय शिशु को देखकर माताजी कुछ स्तम्भित सी हो गयी—उनके समझ में न आया कि यह स्वप्न है अथवा प्रत्यक्ष, घबड़ाकर उन्हों ने श्रीदेवेश्वर भट्ट को बुलाया—देवेश्वर भट्ट जो अर्चाविग्रह के सामने बैठकर इन्द्रियातीत प्रभु से कुछ बातें कर रहे थे । उन्हों ने माताजी की आवाज सुनी और अन्दर चले गये । वहाँ पर जब श्रीदेवेश्वर भट्ट पहुँचे तब वह बालक चतुर्भुजधारी श्रीविष्णु के रूप में बदल गया था। दोनों ने एकसाथ श्रीबैकुण्ठ विहारीजी के दर्शन किये । प्रार्थना करने लगे । स्तुति के अन्त में परात्पर प्रभु देव-शिरोमणि ने हँस कर कहा कि हे ब्राह्मणदेव ! तुम दोनों ने एक वर्ष पूर्व पुत्र प्राप्ति की कामना से मेरी आराधना की है । मैंने पूर्ण होने का आशीर्वाद दिया था । आज वह पूर्ण हुआ मैं तुम्हारा पुत्र बन कर रहूँगा। इतना कह कर भगवान् अदृश्य हो गये । और उन दोनों के सामने पुनः वही सुमधुर बालक खेलने लगा । दोनों की आत्माएँ आनन्दातिरेक में भर गयीं ।

५—देवताओं द्वारा बालस्तुतिः दर्शन

श्रीदेवेश्वर भट्ट इन लीलाओं को देखकर आश्चर्य चकित खड़े थे। कभी नवकञ्जलोचन बालक की ओर देखते थे और कभी अतीन्द्रिय परमात्मा की मूर्ति का ध्यानकर समाधिस्थ हो जाते थे । थोड़ी देर में देखते हैं कि प्रातः काल होता सा दिख रहा है। बाहर कुछ जनसमुदाय सा प्रतीत हो रहा है । बाहर आकर उन्होने देखा

कि एक वृद्ध अपरिचित ब्राह्मण जिनकी लम्बी सफेद दाढ़ी है, शि
के समस्तकच सफेद हो चुके थे शुक्ल परिधान धारण किये हैं जिन
काम्पते हाथों में एक दिव्यमाला और अर्चा सामग्री थीं। उनके पी
एक जटाधारी नवयुवक महात्मा थे जिनके हाथों में डमरू तथा ग
में नागराज वासुकी की माला थी। समस्त शरीर में स्वच्छ विभू
लगी थी। लम्बी जटाएँ आद्र सी प्रतीत होती थीं। शिर से शीत
प्रकाश निकल रहा था। मन के अन्दर ही अस्पष्ट शब्दों में कु
बोलते चले जा रहे थे। उनके पीछे एक दिव्यालंकारधारी, जिन
मस्तक पर दिव्य मणिमय मुकुट था। गले में आजानुकाञ्चि
माला जगमगा रही थी। हाथों में दिव्य फूलों की माला थी। उन
समस्त शरीर में दिव्य, अलौकिकैश्चर्य प्रतिभासित हो रहा था
और भी अनेक लोग इन्हीं के जैसे प्रकाशमय आभूषगों को धारण
अपने-अपने हाथों में एक-एक माला लिये खड़े थे। ये ती
श्रीदेव की परवाह किये विना महल के अन्दर चले गये। उन्हीं
पीछे सभीने प्रवेश किया। जहाँ पर श्रीयशोमती देवी निजक्रोड
बालक को लेकर कुछ सोच रही थी। सहसा एक साथ बहु
से दिव्य पुरुषों को निज प्रकोष्ट में प्रविष्ट देख कर कुछ सहम
गयी। पवित्र मुखमण्डल पर नारी उचित लज्जा की एक रेखा
खिच गयी। बालक को लेकर कहीं छिप जाना चाहती थी। कि
जो बालक अभी ही फूल की तरह अंक में उछल रहा था व
अब सप्रयत्न उठाने पर भी उठता ही नहीं। माताजी कुछ भय भी
सी हो गयी, पुनः महाविष्णु की वाणी स्मृतिपथ पर आगयी औ

वे बालक को वहीं रखकर नीची आँखें कर बैठ गयी। उनके अन्तः करण में अनेक प्रकार की विचार धाराएँ प्रवाहित होने लगी। कभी उस नवावतरित शिशु को देखती और कभी अभ्यागत वृद्ध ब्रह्मण को अपाङ्ग वीक्षण से देख लेती थी। उस समय उनकी मनः स्थिति नितान्त अवाच्य थी।

उधर श्रीदेवेश्वरभटजी की भी विचित्र दशा हो रही थी। उनके मनमें भी अनेकभाव आ और जा रहे थे। वे कुछ भी निश्चित नहीं करपाते थे कि यह क्या नाटक हो रहा है। इस परिस्थिति में क्या करूँ या, क्या न करूँ आदि से सभी घटनाओं पर विचार करने लगे कुछ भी समझ में न आता था। पहले उन्होंने समागत सज्जनों को पहचानने की कोशिश की। निष्फलल प्रयत्न होने पर विचार करने लगे कि चाहें ये जो हों आज हमारे यहाँ आये हैं अतः उनका आतिथ्य सत्कार तो होना ही चाहिये। ऐसी भावना आते ही उनके मनमें बड़ी ग्लानि होने लगी। वे विचार करने लगे, आज मेरी आतिथेयी मति कहाँ चली गयी। मैंने निजभवन में पधारे अतिथियों को बैठने के लिये भी नहीं कहा। चलो बैठने के लिये आसन दूँ—अर्घ्यपाद-आचमनीय के बाद पूछना होगा कि आप कौन हैं। ऐसा विचार कर अन्दर महल में आये। अन्दर आकर देखते हैं यशोमती देवी एक तरफ बैठी है। वह काम विमोहन शिशु एक दिव्य सिहांसन पर विराज रहा है—और वृद्ध विप्र उनकी षोडषोपचार पूजा कर रहा है। उनकी पूजा समाप्त हुयी तब जटाधारी महात्मा ने पूजा की तदनन्तर मुकुटधारी नवयुवक ने पूजा की उसके बाद

सभी समागत दिव्य पुरुषों ने अपनी सामग्रियों से अलग-अलग पू
की। जब सभी की अर्चा समाप्त हो गयी तब सम्मिलित आरती
योजना होने लगी। वृद्धतापस ने काञ्चनमय थाल में घृतयुत बत्ति
को सजाया जो उनकी झोली में एकस्वर्ण डब्बे में रखी थीं। वे ताप
देव आरती उतारने लगे। जटाधारी बाबाजी ने अपने कक्ष में
नरसिंहा निकाला—किसी ने शङ्ख लिया, किसी ने झाल लिया। स
बाजे एक साथ बजने लगे। काफी देर तक आरती होती
उन तापस के बाद सभी ने एक साथ आरती के थाल में हाथ लगा
सामूहिक आरती हुयी। दोनों हाथों को जोड़ सभी स्तुति करने ल
वृद्ध तापस ने बड़े विनम्रस्वर में कहा हे प्रभो ! आपने बड़ी कृ
की, कि भारत में लोप होते भक्ति तत्त्व के पुनरुत्थान के निमि
अलख अजन्मा होने पर भी मानवीय अवतारधारण किया है।
दयामय आपकी इस दया से हम समस्त देव आपके ऋणि हैं।
करुणामूर्ति ? यदि आपने कृपा न की होती तो कलिकाल के अ
प्रभाव से वृद्धिगत पापाचारों के कारण यह धरा रसातल को च
जाती। आपकी कृपा का फल है कि संसार मुझे अपना पितामह
आदिदेव आदि कह कर मेरी प्रतिष्ठा करता है। सत्यतः आप
कृपा के बिना मैं कुछ भी नहीं हूँ यदि हूँ तो वही शक्ति मेरे भी है
जो अचर प्राणी अलक्ष्य लाखो जीव, पिपीलिका, सूकर कूकरादि
में है। अल्पज्ञ सांसारी जीव कहा करते हैं कि मैं विधि हूँ, जगत्
निर्माता हूँ, विधायक हूँ, परन्तु हे करुणा निधे ? मैं जानता हूँ
मैं कौन हूँ। समस्त दृश्य प्रपंच निर्माण में आपकी कृपा या ज

मोहिनी अनादि अपराजिता माया नामिका शक्ति ही कार्य करती है। मैं तो निमित्तमात्र हूँ। अतः हे भगवन् ! अब मेरी अभिलाषा और पूर्ण कीजिये। ऐसे तो आपने मेरी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण की है अनेक समय आपने मेरी प्रार्थना को स्वीकारे कर अनेकों अवतार धारण कर असह्य कष्टों को सहन किया है। आपकी ही दया से मेरे में अमोघ वरदान देने की शक्ति है। इस निमित्त भी आपको अनेकों बार अनेकों महोन्मत्त दैत्यों से भयंकर संग्राम करना पड़ा है, इतना होने पर भी आपने क्षणमात्र के लिये भी मेरे ऊपर क्रोध न किया आपकी ही दया से सृष्टि का सर्जनपालन और संहार होता है अन्यथा किसमें ऐसी शक्ति है जो ऐसा कर शके। प्रभो ! मैंने इन्हीं आँखों से आपके अनेकों स्वरूपों का दिव्य दर्शन किया आपका चरणस्पर्श प्राप्त किया है। फिर भी आज का यह नवजात शिशुस्वरूप मुझे अति ही कमनीय मालूम पड़ रहा है। अतः अन्तिम प्रार्थना यह है कि आप अपने इन करकञ्जों को मेरे शिर पर रखिये जिससे मेरी आत्मा को अपार सन्तोष मिले। इतना कह स्थविरने निज मस्तिष्क को अलौकि अर्भक के अरुणिम चरणों में रख दिया, वह शिशु जो मानो अभी तक कुछ सूनता ही न था। अपनी ही बाललीला में मस्त हँस रहा था। अपने दोनों निजजनाभयदायी हाथों को बढ़ाकर महर्षि के शिरः स्थान पर रख दिया। उस शरच्चन्द्रमरीचिवत स्वेत-कचपास पर नीलकरकञ्ज ऐसा लगता था मानो स्वच्छ गांगेय जलराशिपर दो नीलकलम उदित हुए हों ? ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु उमड़ आये। शरीररोमाञ्चित हो गया,

वाक्शक्ति के जड़ हो जाने के कारण मौन हो गये। जटाधा बाबाजी की दशा ही अलौकिक थी। किसी का कुछ सुनते ही न थे अन्य मनस्क की तरह डमरू बजा कर वैदिक स्तोत्रों का पाठ करते हुं नाचते जा रहे थे। बराबर बालक को देखते और आनन्द विभे हो नाचते ही जा रहे थे। दिव्य किरीट धारी ने अपने मणिमण्डि मुकुट को नवावतरित किशोर के सामने रख–कह रहा था कि प्रभो आप कृपया इस मुकुट पर अपने अरुणाभ चरणों के रज को गि दें जिससे पवित्र हो जाय। इसी तरह सभी समागत पुरुषों व अवस्था एक जैसी थी। कोई नाचता था कोई गाता था। कोई बैठ मौन प्रार्थना करता था। कोई बारम्बार प्रभु के चरण स्पर्श क अपने मस्तक पर लगाता था। श्रीदेवेश्वर भट तथा श्रीमती यशोमत देवी आश्चर्यमय इन लीलाओं को देखकर, वे कुछ देर पहले अचेतनावस्था को प्राप्त हो गयी, तभी सभी देवताओं को सम्बोधि कर श्रीपितामहजी ने कहा कि देवों? यह समय प्रभु की लीला है अधिक समय लेना उचित नहीं है–अतः हम सब निज लोक चलें। जाते समय श्रीब्रह्माजी ने दोनों दम्पती को अचेतन देखक दोनों के मस्तिष्क पर एक एक हाथ रखकर सचेतन बनाया, सचेत हो, देवेश्वर भट ने देखा कि सभी जानेको उद्यत हैं, हाथ जोड़ बोल लगे–हे ऋषिराज आप आये और मेरी यह अवस्था हो गयी इससे अपने को अभागा समझता हूँ। आप सबों का आतिथ्य सत्कार भी किया। अपने घर आये अतिथियों का परिचय भी न प्राप्त कर सक इस बात से मुझे अत्यन्त दुःख है। अब आप अपना परिचय बताइये

और आतिथ्य स्वीकार कीजिये। यह सुनकर वृद्ध तापस ने हँसकर कहना प्रारम्भ किया, हे वत्स! मैं जगत्पितामह ब्रह्मा हूँ, ये जटाधारी–भगवान् रुद्र हैं और सभी देवताओं के साथ ये देवराज इन्द्र हैं, तुम्हारे महलमें जो यह बालक खेल रहा है वे साक्षात् अनन्तशायी भगवान् विष्णु का अवतार हैं अतएव हम सब इनका दर्शन करने आये थे। अब जाते हैं। तुम उठो निजकुलमर्यादा तथा लोकाचार के अनुसार पुत्रोत्सव मनाओ। तुम इनको अपना पुत्र समझना ये इस घोर कलिकाल में मानव प्राणी मात्र के उद्धार के लिये निजी अनपायिनी भक्ति का प्रचार कर महान् आचार्य बनेंगे। इस बात को सुनकर दोनों प्राणी पुनः आनन्दातिरेक से बेसुध हो गये, जब चेतना आयी तब दोनों ने देखा कि वहाँ पर कोई भी नहीं केवल एक नव जात शिशु माताजी के गोद में बैठकर स्तनपान कर रहा है। सभी बातें स्वप्न की तरह प्रतीत होने लगीं।

बाललीला दर्शन

भगवती रजनी का श्रृङ्गार बिखर चुका था। तारकाएँ विलीन प्रायः हो चुकी थीं। निशाकर निस्तेज था, नायिका प्राची के ललाम ललाट पर भगवान् भास्कर सिन्दूर बिन्दु लगा रहे थे। विभात वायु नायक की तरह करस्पर्शकर कमल कलियों को जगा रहा था। पक्षिनिचियों के कलरवों से दिगन्त पूरित था। निज निज भवनों में विप्रवटु वेद गान में प्रवृत्त हो गये थे। धीरे-धीरे विवस्वान के किरण जाल से धरा प्रकाशित होती जा रही थी। इधर देवताओं के चले जाने के

बाद श्रीदेवेश्वर भट ने देखा कि प्रभात काल होगया। अतः आज की अलौकि घटना से अति प्रसन्न होकर प्रातः कालीन क्रिया करने में प्रवृत्त हो गये। आज वे आत्माराम थे, सभी क्रियाएँ अपने आप होती चली जा रही थीं। स्नानादि के बाद सन्ध्या तदनन्तर पूजा करने के लिये मन्दिर में गये नित्य की भांति पूजा की—आरती की तयारी करने लगे।

जिनके गोद में नित्यज्ञानैकमूर्ति आनन्दकन्द खेल रहे हैं उन यशोमतीजी देवीजी का तो कहना ही क्या। उन्होंने अतिकमनीय सुर किशोर को स्नान कराया, सुन्दर दिव्य अलंकार धारण कराया, आज जन्माष्टमी व्रत का पारणा है अतः ब्रह्मण भी निमन्त्रित थे। सुस्वाद पकवान बनाये। इतने में कर्णाकर्णिकया समस्त नगर में यह बात फैल गयी कि श्रीदेवेश्वरभट के घर बालक प्रकट हुआ है। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ कारण कि आज से पूर्व श्रीयशोमतीजी के शरीर में कुछ भी लौकिक चिन्ह न देखे थे। बालक के गर्भस्थ होने पर, सीमन्त पुंसवनादि जो क्रियाएँ होती हैं. वे कुछ भी न हुयी थीं, अचानक बालक का प्रकट होना सभी को आश्चर्य में डाल दिया। नगर के सम्भ्रान्त लोग श्रीदेवेश्वर भट्ट के भवन पर आये सभी का भट्टजी ने स्वागत किया। पूछने पर श्रीभट्टजी ने एक वार्षिक इतिहास सभी को बताया। सभी आत्माएँ आनन्दविभोर हो नाच उठीं सभी ने बालक का दर्शन किया, दर्शन के बाद अपने आप को कृत्य कृत्य माना। सूतक आदि की बात तो रही ही नहीं। मन्दिर में आरती हुयी सभी ने चरणामृत, प्रसाद लिया जब सब चलने लगे

तब श्रीभट्टजी ने सनम्रवाणी में कहा कि भाइयो! आज हमारे घर में आनन्द का दिन है। आप सर्व का आकर ऐसे ही चले जाना अच्छा नहीं है। अतः आप सब आज यहीं भोजन भी करें। भोजन का सामान तैयार था। जहाँ पर संसारपालक आगयें हैं वहाँ पर कम होने का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है। आनन्द के साथ बैठकर सभी ने भोजन किया। भोजन में क्या आनन्द आया। आज से पूर्व मानो किसी ने ऐसा सुस्वाद पकान्न भी न खाया हो? सभी ने तृप्त होकर भोजन किया। तदुपरान्त यथा योग्य दान दक्षिणा प्राप्त कर सभी अपने-अपने घर पधारे।

इस बात को सुनकर महाराज श्रीपाण्ड्य नरेश आनन्द सागर में निमग्न हो गये। उन्होंने देवजी को उनके घर आने की सूचना भेजी।

श्रीदेवेश्वरभट्ट को मालूम पडी वे भी राजा के स्वागत की तैयारी करने लगे, नियत समय पर राजा का आगमन हुआ उनका यथा विधि स्वागत किया गया। राजा ने बालक का दर्शन किया उनकी आत्मा प्रसन्न हो गयी। सहसा शिशुकुमार के दर्शन करते ही राजा के मन में इस विप्रकुमार के प्रति पूज्य भावना जागृत हो गयी। राजा ने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। चरणामृत लिया। उनके साथ समस्त राज्यपरिवार था सभी ने ऐसा किया और अत्यानन्दित हो राजमहल में चले गये।

इस बातको नगर के सभी आबालवृद्ध जान गये। समस्त नगर में उत्सव मनाया गया। जगह-जगह मिठाइयाँ बटने लगीं। आज

पाँचवे दिन राज्य की तरफ से नागरिकोत्सव मनाने की घोषणा की गयी। समस्त नगर तोरण पताकाओं से खूब सजाया गया। प्रत्येक नागरिकोंने निजभवन के प्रांगण को पवित्र गौ के गोबर से लिप कर उसमें अबीर गुलाल आदि से नाना प्रकार की चित्रकारियाँ बनायीं। मुख्यद्वार को फूल तथा तोरणों से खूब सजाया, भित्ति पर अनेक चित्र, विचित्र मंगलमय पक्षियों का चित्र बनाया। तत्काल निर्मित वेदी पर पूर्ण स्वर्ण कलश रख गोघृत के दीपक जलाये। रंग विरङ्ग के चौक पूरे गये। उसी जगह हवन हुआ। धूप और अगरवत्ती के पवित्र धूम से समस्त नगर धूपित हो गया। राज्य का एक सुन्दर, गजराज सजाया गया। जिस पर श्रीदेवेश्वरभट्ट उस बालक को लेकर बैठे, उनकी माताजी पालकी पर थी और राज्यपरिवार के साथ समस्त नागरिक पैदल चल रहे थे, इस तरह एक शोभा यात्रा निकली। स्थान-स्थान पर सुरपूजित किशोर की पूजा आरती होती रही। आबालवृद्ध दर्शन कर अपने को कृत्यकृत्य मानते थे। समस्त नगर में घूमकर जुलूस राज्य महल में गया। वहाँ विधिवत अर्चना हुयी। उसके बाद श्रीदेवेश्वरभट्ट के महल में जुलूस की विश्रान्ति हुयी। अब यथा विधि सब लौकिक कर्म होने लगे।

इस लीला भूमि पर आकर प्रभु को पूर्ण मानव बन जाना पड़ता है। अन्यथा लीला विहारी की लीला अधूरी रह जाय, आपको अपनी अलौकिक शक्ति में अपने आप छिप जाना पड़ता है। निजी योग माया से आवृत होकर नटराज क्रीड़ा करता है। कारण कि प्रभु के अवतार का मुख्य हेतु है भक्त कामना की पूर्ति, दैत्यसंहार आदि कार्य तो साकेत से ही कर सकते हैं। सर्वशक्तिमान को इन तुच्छ कार्यों

के लिये धरापर आने की आवश्यकता क्या? भक्त की इच्छा के अनुसार ही प्रभु अवतार लेते हैं। उसके अनुसार ही लीला करते हैं। अतएव उनका नाम है भक्तवत्सल उनका नियम ही है, "अहंभक्त पराधीनः"—श्रीदेवेश्वरभट्ट तथा यशोमती देवी की इच्छा थी प्रभु मेरा पुत्र बने, अतएव पुत्र बन कर ही लीला करेंगे—प्रभु ने विचार किया कि यदि इस तरह सब कार्य होता रहेगा तो भक्त की अभिलाषा अधूरी रह जायगी। इस लिये कुछ करना चाहिये। प्रभु ने माया को आज्ञा दी सभी की भावनाएँ बदल गयी। श्रीदेवेश्वरभट्ट तथा यशोमती को ऐसा ज्ञान हो गया कि मानो कुछ हुआ ही नहीं है। उनको ठीक वैसा भान होने लगा जैसे हमारे वास्तविक पुत्र की ही उत्पति हुयी है। अब वे लोकाचार में प्रवृत होगये थे। समस्त नगर की यही दशा थी। क्रमशः चूड़ाकर्म, कर्णवेध आदि क्रियाएँ यथा समय होने लगीं। कालचक्र भी चलता ही रहा—नाम करण का समय आ गया। भारत प्रसिद्ध जोतिषी बुलाये गये—उनका आदर सत्कार किया, अर्ध्य पाद्य आचमनीय से अर्चा की गयी, तत्पश्चात् बालक उनके सामने लाया गया। उस देववन्दित कुमार को देखकर एक क्षण तो श्रीज्योतिषी चकित रह गये। पुनः लक्षणों को देख यथामति कुछ बताने लगे। पहले तो देखते ही कहे कि हे देवेश्वरभट्टजी आपका अहोभाग्य है कि ऐसा अर्भक आप के घर आया है। पचासों वर्षों से मैंने ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया है अनेकों बालकों मैंने देखे हैं किन्तु ऐसा सर्वलक्षण सम्पन्न बालक एक भी मेरे देखने में न आया था। आगे लक्षण देखकर उन्होंने बड़े आश्चर्य में पड़

कर कहा कि यह तो साक्षात् पुराण पुरुष का अवतार मालूम पड़ता है। कारण कि ये दिव्य लक्षण परमपुरुष श्रीविष्णु को छोड़ कर अन्य में देखे नहीं जाते। आज मेरा भी धन्यभाग्य है कि मैं पुरुषोत्तम श्रीविष्णुभगवान् को बालक के रूप में दर्शन किया। ऐसा कह कर उस अतिमनोरम शिशु के चरणों में साष्टङ्ग प्रणाम किया। सब कुछ समझ कर लोकाचार के अनुसार नाम करण करने लगे। हे देवेश्वरभट्टजी! आप का पुत्र होने से इसका नाम देवतनु रखता हूँ। परन्तु परात्पर प्रभु श्रीविष्णु का अवतार होने से जगत् में वह विष्णु के ही नाम प्रख्यात होगा। इसी तरह बालकोचित सभी क्रियाएँ यथा समय सम्पादित होने लगीं। एक दिवस बड़े महोत्सव के साथ अन्न प्रासन्न मनाया गया, प्रतिदिन कुछ न कुछ होता ही रहता था। अनेक नरनारी, श्रीदेवेश्वर भट्ट के घर पर आते जाते थे। नित्य एक मेला सा लगा रहता था। उस राज्य की समस्त प्रजा, महामन्त्री के पुत्राभाव के कारण अति खिन्न रहती थी। अब इस समाचार से सभी को अत्यानन्द मिला। यथा समय निज-निज कार्यों से अवकाश लेकर सभी, बालक का दर्शन करने आते थे। यथा भक्ति भेंट–दक्षिणा भी सप्रेम समर्पित करते थे। जगत्पिता स्मितहास्य से सब का स्वागत करते थे। सभी के द्वारा आनीत वस्तुओं को करस्पर्श कर स्वीकार भी करते थे। नागरिक प्रजा द्वारा लायी वस्तुओं से श्रीदेवेश्वर भट्ट का घर भरता जा रहा था। और घर की अटूट सम्पत्ति दान में जा रही थी। नित्य ही हजारों का आय व्यय होता था। इस तरह नित्य नये उत्सव के साथ कालचक्र

चलता रहा। बालक चार सम्बतसरों को समाप्त कर पांचवे में प्रवेश कर रहा था। सभी वर्षों की तरह चौथी वर्षगांठ मनायी गयी। श्रीदेवेश्वर भट्ट तथा यशोमती को आनन्द का पार न रहा। समागत नर नारियों का स्वागत हो रहा था। आमोदमय मङ्गल गीत गाते थे। बालक को आशीर्वाद देते थे। प्रभु हँस कर सभी का स्वागत करते थे। सब का जीवन प्रमोदमय था।

एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा

प्रभु की लीला अपरम्पार है। बड़े बड़े ऋषि-महर्षि उसका अन्त नहीं पासकते हैं। उस लीला नायक की लीला सदा देव मनुष्य दोनोंको सुखदायी होती है। अनन्य प्रिय भक्तों को आनन्द देना और सद्धर्म स्थापन कर देवताओं का कार्य करना प्रभु का उद्देश्य होता है।

एक दिन पालने पर सुलाकर माताजी कहीं चली गयी थीं। दयालु प्रभु सोने का वहाना बना कर आसन पर शयन किये हुये पड़े थे। विश्वात्मा का सोना और जागना दोनों लीला मात्र है। प्रभु के कमलवत् लोचन बन्द थे। तभी एक सुर किशोरी ने प्रवेश किया, जिसके समस्त अङ्ग में दिव्य अङ्ग राग लगे थे। शिर पर काली मेघ माला की तरह सान्द्र कुन्तल पास थे, ललाम ललाट पर दिव्य चन्दन तथा दिव्य प्रकाशमय आभूषण था। आँखें कमल की पांख की तरह आकर्ण विशाल तथा आकर्षक थीं। शुक चोंचकी जैसी मनोमोहक नासिका थी। अधर की लालिमा तथा द्विजपंक्ति की शुक्लिमा—इन दोनों ने मिलकर एक अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि कर दिया था। सम्पूर्ण मुख-

मण्डल पूर्ण राकेश की तरह शान्तिदाता तथा जगदाह्लादकर था। कर चरण गुलाब पुष्प की तरह कोमल तथा लाल थे। समस्त शरीर से दिव्य सुगन्ध प्रसरित हो रहा था। उसके एक हाथ में बीणा थी और दूसरे में कमल। धीरे-धीरे गजराज गति से देवकुमारी बालक के पास जाकर बैठ गयी। अर्ध सुप्तबालक की आँखें खुल गयीं। वह हँस रहा था। सुरकिशोरी ने चरण में मस्तक को रख दिया। बालक ने उसके शिर पर अपने दोनों हाथों को रख कर आश्वासन दिया। वह देवी शिशु का चरण पकड़ रोने लगी। आश्वासन देने के बाद कमल को समर्पित् कर वाष्प—गद्‌गद् स्वर से कहने लगी। हे प्रभो ! मैं सरस्वती हूँ। आपकी पवित्र दया की भिखारिणी होकर आयी हूँ। आज संसार में जो मेरी दुर्दशा हो रही है उसको देख कर मैं निश्चय करने आयी हूँ कि अब थोडे दिनों में संसार से मेरा अस्तित्व उठ जायेगा। मैं सदा विद्वानब्राह्मणों के कण्ठ में रहा करती थी। अब ब्राह्मण लोग ऐसे आलसी हो गये हैं कि शास्त्रविद्या तो दूर रही लेकिन किसी को स्वयं हस्ताक्षर के अक्षर भी नहीं आते सभी लोग अंगूठे के निशान से ही कार्य चला लेते हैं पढ़ने की आवश्यकता को जानते ही नहीं हैं न कहीं वर्ण व्यवस्था ही न रही, न कहीं कुलाचार ही रहा है। कलि के प्रभाव से, उच्च और नीच को पहचानना भी कठिन हो गया है। आश्रम व्यवस्था नाम के लिये भी कहीं नहीं दिखती। आश्रम तथा वर्णव्यवस्था के दुर्व्यवस्थित हो जाने से अध्यापन कार्य का सर्वथा अभाव हो गया। आपकी विशुद्धभक्ति तो स्वाप्निक जगत में चली गयी है। शास्त्रीय सङ्गीत का नाम निशान

मिट गया है। इस भ्रष्टाचारमय जगत में मैं सर्वथा आश्रय विहीन होगयी हूँ। अतः हे प्रभो ! कोई उपाय बताइये जिसमें मेरा कल्याण हो और जगत में मुझे उचित स्थान मिले।

इस तरह प्रार्थना सुनकर प्रभु हँसने लगे। हँस कर उन्हों ने कहा कि—पुत्रि ! दुःखी न होओ, तुम सबों के लिये मैं धरातल पर आया हूँ। सबों का उद्धार ही मेरी लीला है। अभी पांचवावर्ष चल रहा है। यज्ञोपवीतोपरान्त तुम को मैं ही सर्वाङ्ग से धारण करूँगा पुनः तुम्हारा पुष्कल प्रचार करूँगा। अब तुम थोड़े ही दिनोंमें मानव मात्र के कण्ठ में स्थान प्राप्त करेगी।

निश्चित आश्वासन प्राप्त कर जगन्माता श्रीसरस्वती देवी चली गयीं। बालक पालने पर पड़ा रो रहा था। माताजी आयीं बालक के ललाट पर प्रस्वेद कण झलक रहे थे मानो नील कमल के पंखपर मोती के दाने बिखर गये हों। माताजी ने बालक को गोद में उठा चुम्बन लेने लगीं, वहाँ पर एक स्वेत कमल पड़ा देख बड़े आश्चर्य में पड़ गयी। ब्राह्मणों को बुला कर दान दक्षिणा दी कुछ हवन भी कराया, शेष दिन शान्ति से बितने लगा।

गतिशील समय के अनुसार ५ वां वर्ष व्यतीत होगया, एक दिन ज्योतिर्विदों के अनुसार निश्चित तिथिपर बड़े महोत्सव के साथ उपनीत संस्कार सम्पन्न हुआ। समस्त मथुरा नगरी उत्सवमय हो गयी। नागरिकों के भेंट न्योछावर तथा श्रीदेवेश्वरभट्ट के दान से आज मथुरा भोगवती के रूप में बदल गयी थी। अलका तथा अमराव-

ती फीकी पड़ गयी थी। आज मथुरा में दान लेने वालों के लाले पड़ गये। (अर्थात् सभी लोग देने वाले थे) राज्य की ओर से समागत प्रजा का भेद भाव रहित सभी के घर समान रूप से स्वागत हो रहा था। स्थान-स्थान पर अन्नक्षेत्र खुले थे, जिनमें बाहर से आनेवाले स्वरुचि के अनुसार भोजन तथा विश्राम करते थे। उत्सव समाप्ति के बाद सभी को यथा योग्य सम्मानित भेंट, वेतन तथा दान दिया गया। प्राणीमात्र की आत्मा संतुष्ट थी। सभी निज भवन को पधारे। बह बालक आज विशुद्ध ब्रह्मचारी बन गया था हाथ में ब्रह्मदण्ड, कटीमें मूँज मेखला तथा कन्धे में स्वर्ण खचित पीत उपवीत शोभ रहा था। उसका नाम ब्रह्मचारी श्रीदेवतनु रखा गया कुछ विद्वान लोग विद्यारम्भका मुहूर्त खोज रहे थे। पिता श्रीदेवेश्वरजी स्वयं राजकीय विश्वविद्यालय के सम्मानित महाकुलपति थे। जहाँ पर सम्पूर्ण राज्य से आकर हजारों नर बटुक विद्याध्ययन करते थे। जहाँ पर सभी अन्तेवासियों की भोजन वस्त्र तथा पुस्तकों की व्यवस्था मथुरा सरकार करती थी।

ब्रह्मचारी देवतनु को अक्षरारम्भ निज भवन पर ही करा दिया गया था विशेष अध्ययन के विषयमें माता-पिता किसी एकान्त में बैठ कर विचार कर रहे थे। मकान के अन्दर देवतनु सो रहे थे अचानकसे अलक्ष्य होकर महल में चार सुरबालाओंने प्रवेश किया। इन सुरकिशोरियों को देखकर श्रीदेवतनु हँस ने लगे उन्होंने परिचित की तरह समाचार पूछा चारोंने नमस्कार कर अपना-अपना समा-

चार कहा कि हे प्रभो ! अपनी नरलीला समाप्तकर जब से भगवान् श्रीकृष्ण गो लोक को पधार गये, तभी से हम चारो श्रुतियों की महत्ता कम हो गयी। हमको कोई सर्वाङ्ग से पढ़ता नहीं है। अब समय आ गया है अतः आप हम को धारण करें। देवतनु कुछ कहना ही चाहते थे कि छ दिव्य पुरुषों का प्रवेश हुआ। श्रुतियों ने कहा ये हमारे मुख्य शास्त्र रूपधारी छ अङ्ग भी आगये। सभी ने प्रभु की स्तुति की और प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर देवतनु के शरीर में प्रवेश किया। अब देवतनु का तेज और बढ़ गया और पिता की बातें समाप्त हो चुकी थीं। दोनों ने आकर देवतनु का दर्शन किया। दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। आज की अलौकिक आभा से दोनों की बालक में पूज्य भावना हठात जम गयी।

यथासमय ब्रह्मचारी श्रीदेवतनु ने पूर्णब्रह्मचर्य नियमों के साथ विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। आज विद्यालय में एक विशाल परिमाण में महोत्सव मनाया गया। श्रीदेवजी की तरफ से मिठाइयाँ बांटी गयीं। सामुहिक सरस्वती पूजन के बाद अन्तेबासियों को कौशेय परिधान दिया गया। अध्यापकोंको भी यथा योग्य पूर्ण सम्मानित किया गया। समस्त मङ्गल कार्यों के समाप्त हो जाने के बाद देवतनु ने विद्यारम्भ किया। श्रुतियाँ जिनका निःश्वास हैं। समस्त संसार जिसके शरीर में सावकाश समाजाता है। वह विद्यानायक आज ब्रह्मचारी अन्तेवासी बनकर विद्याभ्यास में प्रवृत्त होता है। यही उसकी लीला है

प्रथम दिन के अध्ययन में श्रीदेवतनु ने जो मनोयोग

दिया था उसको देखकर अध्यापक वर्ग उनपर बड़ा खुश हुआ था। देवतनु अपने निर्दिष्ट समय पर आते थे, और सतीर्थ अन्तेवासियों के साथ शान्त चित्त से निजाभ्यास में रत रहते थे आकृतिर्गुणान् कथयति के अनुसार इन की आकृति को देख कर ही, समस्तविद्वानों को यह विश्वास होता जाता था कि यह बालक असाधारण विद्वान बनेगा। बालक श्रीदेवतनुजी नित्य प्रातः उठ कर माता पिता के चरणों में नमस्कार करते थे। सन्ध्या वन्दन की शिक्षा उनको घर पर ही मिल गयी थी। विद्यालय (आश्रम) में आने के बाद भी अन्तेवासियों के जैसा जीवन विताते थे, प्रातः उठ कर स्नान संध्या आदि से निवृत्त हो अपने अध्ययन में लग जाते थे तमाम छात्रों में भी औरों की अपेक्षा आपका जीवन पथ सदा सादा रहता था। आपके दैनिक सुव्यवहार के कारण उच्च कक्षा के विद्यार्थी भी आपकी प्रतिष्ठा करते थे। सभी अध्यापकों का इनपर पूर्ण प्रेम था। इनके पवित्र आचरणों के कारण सभी की इन पर हार्दिक श्रद्धा थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण देवतनुजी थोड़े दिनों में सतीर्थों से आगे बढ़ गये। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह बालक कितना शीघ्र भाषा पर अधिकार कर रहा है। अनेक वर्षों के पाठ्य विषयों को कुछ दिनों में ही बालक ने कण्ठ कर लिया। संस्कृत व्याकरण नियमों का अध्ययन प्रारम्भ किया गया। देवतनु थोडे ही दिनों में महा वैयाकरण बन गये। फिर क्या था, वेदों का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। चारों वेद तो निजांगो के साथ पहले ही उनके अन्तस्थल में प्रवेश कर गये थे। यह भी एक लीला है, ये सभी

तो इनकी इच्छा के अनुगामी हैं। अब यह बालक समस्त शास्त्रों में पूर्ण प्रगति शील माना जाने लगा, कभी-कभी विद्यालयीय नियमों के अनुसार अवकाश के दिन विद्यार्थियों में शास्त्रार्थीय प्रतियोगिता होती थी, प्रतिभा संपन्न छात्र उसमें भाग लेते थे। सम्मानित महाकुलपति होने के कारण श्रीदेवजी का भी विद्यालय पर पूर्णनिरीक्षण रहता था। देवतनु के आने से वे भी प्रायः आया जाया करते थे। सुन और देख कर देवतनु की प्रतिभा पर चकित रह जाते थे। श्रीदेवजी के मन में सन्देह होता था कि अध्यापक लोग मेरे संकोच से ही कदाचित बालक की इतनी प्रसंसा करते हैं। अपनी आँखों से निजसुत की शास्त्रीय प्रतिभा को देखना चाहते थे। अत एव आज एक शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया था। जिसका मध्यस्थ स्वयं श्रीदेवजी बनाये गये थे। शास्त्रार्थ का विषय भी ईश्वर सिद्धि। जिसके विपक्ष में बोलने वाले चार्वाक और सांख्यमतानुयायी अतिप्रतिभा शाली विद्वान् छात्र थे। इस शास्त्रार्थका समाचार प्राप्त कर सभी को कुछ आश्चर्य जैसा हुआ, कारण कि जो विपक्षी थे वे पुराने लब्ध प्रतिष्ट विद्वान्, अनेकों जगह प्राप्तविजय थे। यद्यपि देवतनु भी पर्याप्त प्रख्यात हो गये थे फिर भी नवीन थे।

अस्तु शास्त्रार्थ की तिथि आ गयी। विद्यालय के निर्दिष्ट सभाभवन में सब लोग एकत्रित होने लगे। धीरे धीरे सब अन्तेवासी तथा सभी अध्यापक भी उपस्थित हो गये। यथा समय श्रीदेवजी भी आ गये—श्रीदेवेश्वर भट्ट के आने पर सभी ने उठ कर स्वागत किया।

देवतनुजी अध्यापक और, और छात्रों के साथ पहले ही आ गये थे। मङ्गलपाठ के बाद सभा का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

सबसे पूर्व देवेश्वर भट्ट ने आज का विषय समझाते हुए कहा–उपस्थित श्रद्धेय आध्यापक गण तथा प्रेमास्पद छात्रकदम्ब? आज कलिकाल के कटु प्रभाव से मानव मन ऐसी धारणाओं में बन्धता जा रहा है, जिससे प्रत्येक के मन में ईश्वर विषयिणी मति कुछ संदिग्ध होती जा रही है। यद्यपि हमारा विषय शास्त्रार्थ का नहीं है, तथापि हम तो इतना ही चाहते हैं कि हमारे इस विश्वविद्यालय के छात्र सर्वतो द्रष्टा सर्वज्ञानवान बनें। इसी लिये यथा समय अनेक विषयों का ज्ञान कराने के लिये अनेक विषयों पर शास्त्रार्थ होने की व्यवस्था विद्यालय में की है। आज का विषय भी महान् है। इसके विषय में अभी तक दोनों पक्षों से अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। दोनों विषय अति प्राचीन तथा विद्वद्विचारणीय हैं, इसी विषय को लेकर सृष्टि के आरम्भ से आज तक अनेकों शास्त्रार्थ भी हुए हैं। हमारे इस विद्यालय के समस्त छात्रों को इन विषयों का पूर्ण ज्ञान है। इसी निमित्त आज का विषय है, अनीश्वरवाद और ईश्वर सिद्धि। अब सभा का प्रारम्भ किया जाता है। दोनों वक्ताओं को चाहिये कि अपने अपने पक्ष का समर्थन करें। अनीश्वरवादी पं० श्रीरुद्रदत्त ने कहा। परम श्रद्धेय श्रीअध्यक्ष महोदय? सम्मानीय अध्यापक वर्ग एवं निरन्तर विद्यारमणीरमणशील छात्र समूह! परम महर्ष की बात है कि आज मुझे ऐसे विषय पर बोलने को कहा गया है जो संसार में नितान्त

सत्य है। आज की दुनिया में ईश्वर के नाम से एक भ्रामक प्रसार हो गया है। जो नितान्त असत्य है। ईश्वर को मानने की हमें आवश्यकता ही क्या है? जो कमाता है, शारीरिक परिश्रम करता है वह आनन्द सुख सम्पत्ति के साथ जीवन बिताता है। जो परिश्रम नहीं करते हैं उनको भोजन और वस्त्र के लिये लाले हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो बुद्धिमत्ता से दूसरों के परिश्रम का भी लाभ लेकर अपने जीवन को सुखमय बना लेते हैं। अतः संसार परिश्रम और बुद्धिमानों का है, न कि ईश्वर का है। कहते हैं कि ईश्वर के बिना जगत की सृष्टि नहीं हो सकती है। कितना भ्रामक प्रचार है। संसार में आँखों के सामने की बात को छोड़ अन्धेरे में भटकना। सभी लोग नित्य आँखों से देखते हैं कि स्वाभाविक संयोग से सृष्टि का विकाश होता है। फिर भी प्रत्यक्ष को छोड़, एक अदृश्य प्राणी की कल्पना कर उसको ईश्वर बना–उसको सृष्टि के साथ बाँधना यह पागलपन नहीं तो और क्या? इतना जरूर है–ईश्वर की कल्पना करने वाले नितान्त बुद्धिमान थे। जिन्होंने ईश्वर के नाम से अपने लिये यज्ञादिक करा कर मुफ्त में अपनी रोटी सीधी कराली। कुछ लोगों का कथन है कि ईश्वर न हो तो सृष्टि कैसे बनता, तो सुनिये! सृष्टि परमाणुओं से है इसमें छान्दोग्योपनिषद् प्रमाण है।

सदेव सौम्येदमग्रआसीदेक मेवाद्वितीयम्। अर्थ सद् त्रिकालाबाधित, त्रिकाल में भी विनाश रहित केवल परमाणु हैं। और वह कैसा है। **एकम्–त्रिसृणु आदिकों से रहित–अद्विती-**

यम्-पञ्चभौतिक विकाश रहितम्। यही श्रुतिका अर्थ है। जगत से पहले परमाणु मात्र था। उसके स्वाभाविक संयोग से द्वयणुक; त्रिसृणुक आदिका क्रमिक विकास होकर सृष्टि का स्वरूप बन गया। उसका कोई भी चेतन कर्ता नहीं है। यदि चेतन कर्ता होता तो जैसे घड़े का बनाने वाला कुम्भकार बनाता हुआ देखने में आता है वैसा देखने में आता। किन्तु आज तक किसी ने सृष्टि को बनाते ईश्वर को नहीं देखा। धन्यवाद-उनकी बुद्धि को जिन लोगों ने ईश्वर की कल्पना की और अपना विचार कायम रखने के लिये वेदों को लिखकर उसको अपौरुषेय मान लिया। सांख्य शास्त्र भी हमारा समर्थन करता है। उसमें भी कहीं ईश्वर का नाम निशान नहीं है। स्त्री और पुरुष नर और नारी को प्रकृति पुरुष के नाम से पुकारता है। इन्हीं दोनों की प्रेरणा से जीवों की सृष्टि मानता है और यही सत्य भी है। कारण कि यह प्रत्यक्ष भी है। सामने पर्याप्त प्रकाश में रखे घड़े को छोड़ अन्धेरे में भटकना अच्छा नहीं है। सांख्य में प्रत्यक्ष लिखा है **ईश्वरासिद्धे**-ईश्वर की सिद्धि किसी तरह हो ही नहीं सकती है। इस लिये न कोई ईश्वर है, न स्वर्ग है न परलोक है। न कोई शरीर व्यतिरिक्त आत्मा है। जो कुछ है यही संसार है। शरीर ही आत्मा है-मानसिक विकलता छोड़कर शारीरिक सुख का अनुभव करने का नाम मोक्ष है। कुछ लोगों का तर्क है मोक्ष तो नित्य सुख को कहते हैं संसार में दुःख है। यह बात मैं भी मानता हूँ कि संसार में दुःख है। और उसको नरक भी कहते हैं। इस लिये हमको सुख की प्राप्ति के लिये खूब परिश्रम

करना चाहिये। काँटो में से फूल निकालना, और मधुमाखियों के छत्ते में से मधु निकालना सरल नहीं होता तो भी अपने सुख के लिये बल पूर्वक काँटों को तोड़ना पड़ता है। बुद्धि से माखियोंको उड़ाना पड़ता है। उसी तरह-बल और बुद्धि से दुःखों को दूर करना चाहिये और सुख की प्राप्ति करनी चाहिये। जब तक यह शरीर है तब तक खूब आनन्द मौज से बिताना चाहिये। कारण कि मरने के बाद आत्मा की स्थिति कुछ है ही नहीं। व्यर्थ का कष्ट उठाना कहाँ की बुद्धिमानी है। जिस तरह लोह अचेतन होता है परन्तु अयस्कान्त (लोहचुम्बक) के संयोग से लोहे में गति, आ जाती है उसी तरह पाँचभूतों के सहंयोग से इस शरीर में भी चेतना आ जाती है। वास्तव में शरीर का संचालक शरीर व्यतिरिक्त जीवात्मा नहीं है। अब मैं अधिक कुछ भी नहीं कहना चाहता हूँ कारण कि हमारा पक्ष सत्य है। सत्य वस्तु के लिये आडम्बर अच्छा नहीं।

इस तरह पूर्वपक्ष का व्यख्यान समाप्त हुआ। पूर्वपक्ष के तर्क और बुद्धिमत्ता को सुनकर श्रीदेवेश्वरभट्टजी देवतनु के विषय में संदिग्ध हो गये। कारण कि अब उनका समय था। अध्यक्षजी ने विचारमय नेत्रों से देवतनु की ओर देखा। सभी सभा की दृष्टि देवतनु के ऊपर चली गयी।

श्रीदेवतनुजी ने थोड़ा सा हँसा दिया। तदुपरान्त शान्त चित्त से प्रभु का ध्यान करने लगे। पुनःस्वनिर्मित श्लोक से उन्होंने मङ्गला चरण किया।

स्वाद्गुत्थविपर्यासभवभेदजभीसुचः
यन्मायया जुषन्नास्ते तमिमं नृसिंहं नुमः

इसके बाद श्रीदेवतनुने स्मित हास्यकर बोलना प्रारम्भ किया। परमपूज्यचरण प्रातःस्मरणीय श्रीअध्यक्ष महोदय! परममाननीय विद्यावारिधि श्रीअध्यापक गण! सद्विद्याविलासविलसितमनस्क! श्रीछात्रवान्धव!—आज का विषय तो आप सवों को ज्ञात हो ही गया। विषय के अनुसार उचित यह था कि हमारे स्थान पर कोई योग्य विद्वान होता तथापि हमें जो यह स्थान मिला है उसको मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। भाई श्रीरुद्रदत्तजी ने अपने पक्ष को बड़ी विद्वत्ता के साथ सामने रक्खा है। किन्तु योग्यता तथा तर्क के बल से सत्य को छिपाया नहीं जा सकता है। आपने जगतकर्त्ता ईश्वर के विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया है कि वह घटकर्ता कुम्भकार की तरह दिखता नहीं है। अब हमारे प्रिय श्रीभाई साहब श्रीरुद्रदत्त को शान्ति पूर्वक विचार करना चाहिये। आपने यह माना है कि घट, सकर्तृक है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जो पदार्थ है वे सभी सकर्तृक है। कारण कि वे दृश्यमान पदार्थ कार्य मात्र है। जिस तरह बिना कुम्हकार के घट की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती है। ऐसा भी नहीं माना जा सकता है कि एक घट को बनाते देखा तो उसको कुम्भकार कर्तृक मान लें। दूसरे घट को मैंने बनते नहीं देखा तो स्वाभाविक मान लें। एक घट को बनते देखने से घट मात्र को सकर्तृक माना जाता है। अतः यह सिद्ध होगा कि घटमात्र कुम्भकार

निर्मित है। अब यह निश्चित है, घट रूपी कार्य कुम्भकार के बिना निष्पन्न नहीं होता। कारण कि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती है।

अब जरूर सोचिये, जिस तरह एक घट को देखने से तमाम घट का कर्ता कुम्भार को निश्चित करते हैं। उसी तरह नदी पर्वत समुद्रादिकों का भी कर्ता होगा, और वह कर्ता जीव हो नहीं सकता कारण कि उसमें इतनी शक्ति नहीं है और कर्ता के बिना कार्य असम्भव है। अतएव इन गिरि समुद्रादियों का जो कर्ता है वही ईश्वर है और भी विपक्षी ने अपने समर्थन में छान्दोग्योपनिषद् को भी कलङ्कित करने का प्रयास किया है। उसी के अर्थ पर विचार कर लेने से परमाणु वाद भी निरस्त हो जाता है। भाई श्रीरुद्रदत्त ने पूरा मन्त्र को पढ़ा ही नहीं, उसके सर्वाङ्ग अर्थ पर विचार नहीं किया, नहीं तो स्वयं उनको सन्तोष हो जाता। वहाँ पर इस प्रकार से मन्त्रों की संगति लगायी गयी है **सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् तदैक्षतवहुस्यां प्रजायेय इति तत्तेजोऽसृजत्।** इसी मन्त्र के एक अङ्ग को लेकर आपने अपना मत निश्चित किया है। मन्त्रार्थः—हे सौम्य अग्रे जब सृष्टि का नामनिशान न था उस समय एक सत् स्वरूप था स्वगत भेद सून्य था और उसके समान गुणैश्चर्यशाली कोई अन्य न था। उसने ईक्षण किया कि मैं एक हूँ बहुतों में होजाऊँ तब उसने तेज को प्रकट किया। अब देखिये यदि परमाणुओं के स्वाभाविक संयोग से

सृष्टि मानते हैं तब पञ्चभौतिक परमाणु तो अचेतन हैं। उनमें
ईक्षण असम्भव है। अचेतन प्रमाणुओंमें बिना प्रयोजक के क्रिया हो
नहीं सकती, उनका संयोग नितान्त असम्भव है। अतएव यह सिद्ध
है कि न्याय प्रमाणित उन पररमाणुओं का प्रेरक कोई चेतन अवश्य
है और वही ईश्वर है। आश्चर्य तो यह है कि हमारे भाई साहब, वेदों
को पौरुषेय कह कर अप्रमाणित भी करना चाहते हैं—उसी को प्रमाण
रूप भी मानते हैं। और भी आपने कहा है कि संसार में शारीरिक
परिश्रम सब कुछ है। अतिपरिश्रम से सुखोपार्जन करना चाहिये,
कारण कि वही स्वर्ग है। भ्रातृवर्य! यदि ऐसा होता तो चोरी
करने वाला चोर भी महान परिश्रम कर दिवाल काटता है। अतएव
वह भी राजा हो जाता परन्तु इसके विपरीत उसको जेल यातना भ
सहनी पड़ती है। क्या आप कह सकते हैं. कि चोरी करने में परिश्रम
नहीं होता? प्रत्येक जीव, जो कुछ करता है वह यही समझता है कि
मैं अपने लिये अच्छा और सुखदायी कार्य करता हूँ
लेकिन उसका परिणाम उसको, विपरीत भोगना पड़ता है। बन्ध्यत्व
मिटाने के लिये लाखों प्रयत्न किये जाते हैं, कितनों को कुल भी फल
नहीं मिलता—संसार में एक भी जीव ऐसा नहीं है जो निर्धन अथवा
रोगी रहना पसन्द करें। फिर भी जीव को उसको अपनी इच्छा
अनुसार फल नहीं मिलता, एक महान राजा कभी भी दुःखी होने
लिये प्रयत्न नहीं करता है, फिर भी उसको निर्धन होकर
भीख मांगते देखा जाता है। जिनको आप बुद्धिमान कहते
जो लोग अपनी बुद्धिमता (धूर्तता)से दूसरों के श्रम से लाभ लेते

अपनी सम्पत्ति बनाकर सुख भोगते हैं। उनको भी अवश्य उसका
कुफल भोगना पड़ता है। यह बात सर्वजन प्रत्यक्ष है। अतएव यह
मानना पड़ेगा कि प्राणी मात्र के शुभा शुभ कर्मों का नियन्ता तथा
तदनुकूल फलदाता, अवश्य कोई अदृश्य शक्ति है—और वही ईश्वर
है। आपका कथन है कि शरीर व्यतिरिक्त आत्मा नहीं है, कारण कि
वह देखने में नहीं आता है, अतएव शरीर ही आत्मा है। जरा
सोचिये? प्राणी के मर जाने पर उसका शरीर यहीं रह जाता है।
यदि शरीर ही आत्मा होता तो शरीर अर्थात् पाञ्चभौतिक संयोग
छिन्नभिन्न न हो जाता तब तक प्राणी मरता ही नहीं। जीवआत्मा के
न रहने पर शरीर में कोई भी क्रिया नहीं होती है। अतः अब आपको
विचार पूर्वक मान लेना चाहिये कि शरीर व्यतिरिक्त आत्मा है। यदि
नहीं मानते तो मैं यह पूछता हूँ कि आप सम्पूर्ण शरीर को आत्मा
मानते हैं अथवा शरीर के किसी अङ्ग को? दोनो असम्भव हैं।
यदि एक अङ्ग को मानते हैं तो किस अङ्ग को। यदि समस्त शरीर
को आत्मा मानें तो शरीर के किसी एक अङ्ग में जड़ता आ जाने
पर समस्त देह में जड़ता आ जानी चाहिये किन्तु वैसा नहीं होता
है। यदि एक जिस किसी अङ्ग को आत्मा माने तो हाथ पैर आँख,
नाक, कान आदि इनके कट जाने पर शरीर को मर जाना चाहिये,
चेतना हीन हो जाना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता है। अन्धे, लङ्गड़े,
लूले आदि का जीवन देखा जाता है, अतएव यह सिद्ध है कि शरीर
व्यतिरिक्त जीवात्मा है और वह शरीर का संचालन करता है। आपने
सांख्य का भी नाम लिया है। एक कापिलसूत्र भी उच्चारित

किया है । इससे यह भी अनुमान होता है कि आपने सांख्य
केवल एक ही सूत्र देखा है । अन्यथा यदि पूर्वापर का विचार
तो आपश्री को ऐसी भ्रान्ति न होती । मैं मानता हूँ कि सां
शास्त्र में अनेक सूत्र ऐसे हैं जिन को लेकर जगत में पर्याप्त भ्रा
प्रचार किया गया है । परन्तु जब आद्यन्त सांख्य सूत्रों को देखने
तो यह बात ज्ञात हो जाती है कि सांख्य भी ईश्वरानुयायी शास्त्र
कारण कि उसमें स्पष्ट लिखा है कि **सहि सर्ववित् सर्वकर्ता**
ईश्वरसिद्धिःसिद्धा । जिसका अर्थ है वह पुरुष है **सर्ववित् स**
ज्ञानवान् सर्वकर्ता है । समस्त ब्रह्माण्ड का बनाने वाला अत
वही ईश्वर है । इसी से आपको यह भी जान लेना चाहिये कि सां
में प्रकृति और पुरुष के नाम से प्राकृतिक नर और नारी को न
कर जगत कर्ता परमेश्वर और तदाल्हादिनी शक्ति को लिखा गया
जिसको माया कहते हैं । जिसको गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स
कहा है **मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयते-सचराचरम्** । अन्यथा सां
की प्रकृति तो जड़ है अतः उसमें क्रिया ही नहीं होसकती है
अयस्कान्त में स्वयं लौह के पास जाने की शक्ति नहीं होत
अयस्कान्त और लौह का संयोग कराने वाला कोई अन्य होता है
अतएव पाञ्चभौतिक परमाणु का संयोग कराने वाली कोई अन्य शक्ति
और वही ईश्वर है । वेदों को अपौरुषेय मानने में अनेकों हेतु
पर भी मूल्य और विचारणीय हेतु यह है कि ईश्वर के बिना
बड़ा त्यागी अन्य हो ही नहीं सकता है । इतनी बड़ी चीज का
यदि कोई मानव होता तो अवश्य वह अपना नाम वेद लेखक

जगह देता । सैकड़ों वर्षों के निरन्तर प्रयत्न करने पर भी निश्चित
रूप से किसी ने यह नहीं कहा कि अमुक प्राणी ने वेदों को लिखा
है । आप ही बताइये वेदों का लेखक यदि कोई मानव प्राणी है, तो
वह अपना नाम क्यों चुराता है ?

यह सुनकर पं. श्रीरुद्रदत्त थोड़े मौन रहे । इस समय तक आज
की सभा कासमय भी हो गया था । अतः सभा विसर्जित हो गयी ।

शास्त्रार्थ विजय दर्शन

भविष्यत् दिन पुनः सभा का समय निश्चित कर दिया गया ।
आज के शास्त्रार्थ से सभी का मन श्रीदेवतनु की ओर लगा था ।
उन्हीं की विजय की आशा सब के अन्तः करणमें प्रतिविम्बित थी ।
श्रीदेवेश्वर भट्ट स्वपुत्र की अलौकि प्रतिभा से बड़े प्रसन्न थे । उन्होंने भवन
आकर श्रीयशोमती से सब समाचार कहा, माताजी को अतिप्रसन्नता
हुयी । अपने पुत्र को प्रतिभा शाली विद्वान देखकर दोनों ने महान
उत्सव मनाया, राजा ने भी सुना, उसने भी राज महल में खुसियाँ
मनायीं । यह बात अतिशीघ्र सारे मथुरा नगर में फैल गई । आज
शास्त्रार्थ के स्थान में सभी आम जनता ने जाने का निश्चिय
किया । सभामण्डप में सभी को शान्ति पूर्वक बैठने की व्यवस्था की गयी ।
श्रीदेवतनु की माताजी भी आज शास्त्रार्थ में आनेवाली थी । उनके
साथ अनेक नारियों का समुदाय आने वाला था । इन सवों के
लिये जवनिका की व्यवस्था कर दी गयी ।

आज शास्त्रार्थ का दूसरा दिन था । सभी लोग बड़ी उत्सुकता के साथ श्रीदेवतनु को देख रहे थे। श्रीमाताजी तो अपनी प्रि आँखों से उनको पी जाना चाहती थीं । यथा समय अध्यक्ष महोदय ने सभा प्रारम्भ की सूचनादो । सूचना प्राप्त कर श्रीरुद्रदत्तजी ने मङ्गला चरण के बाद कहना प्रारम्भ किया । सम्माननीय श्री अध्यक्ष महो दय ! आदरणीय श्री उपाध्याय वर्ग ! प्रेमास्पद छात्र बन्धुओं, त उपस्थित समस्त नागरिक वर्ग !

कल्ह के शास्त्रार्थ में श्रीदेवतनु ने बड़ी योग्यता के साथ अ पक्ष का सम्पादन किया । आपकी युक्तियाँ वास्तव में अकाट्य थी आपने निज तर्कों द्वारा मुझे चुपकर देनेका निष्फल प्रयत्न किया पर जब ईश्वर है ही नहीं, तब उसकी सिद्धि तर्कों से करना आका कुसुम तोड़ने के बराबर है । अब मैं आप सबों के सामने प्र करता हूँ । आपने जो सांख्य शास्त्र में भी ईश्वर सिद्धि कर दिया थोड़ी देर के लिये मैं मान लूँ कि ईश्वर है । अब प्रश्न यह होता कि वह साकार है या निराकार ?

देवतनुः—साकर तथा निराकार भी है ।

रुद्रः—यह तो नितान्त असम्भव है । तमः प्रकाशवत् पर विरोधी तत्त्व एक जगह रह नहीं सकते ! एक स्थान पर तथा रात्रि को किसीने न देखा होगा और न सुना होगा ।

देवतनुः—(थोड़ा हँसकर) जी हाँ ? अन्धकार और प्रक दोनों एक जगह रहते हैं । आप थोड़ा विचार कीजिये ? जहाँ

अल्पप्रकाश दीप जलता है वहाँ आर यह नहीं कह सकते हैं कि प्रकाश नहीं है ?

रुद्रः—जी नहीं ? वहाँ प्रकाश अवश्य है ।

देवः—और वहाँ पर अन्धकार है कि नहीं ?

रुः—नहीं ?

देवः—अब वहीं पर अत्यधिक प्रकाश वाला दीपक जला दीजिये और फिर बातइये कि प्रकाश उतना ही है अथवा बढ़गया ?

रुः—बढ़ गया । अब पहले की अपेक्षा अधिक प्रकाश है ।

देवः—अब यहाँ पर इससे भी प्रकाश वाला दीपक जलाइये। फिर बताइये कि प्रकाश में वृद्धि हुई या नहीं ।

रुः—हाँ गई । अब उससे भी ज्यादा प्रकाश यहाँ दिखने में आता है । कारण कि पहले जो अति सूक्ष्म पदार्थ देखने में नहीं आते थे, वे पूर्ण प्रत्येक्ष देखने में आ रहे हैं ।

देवतनुः—अब बताइये ? दीपक के प्रकाश होने पर भी पहले सभी चीजें स्पष्ट क्यों नहीं दीखती थी ? कारण कि अल्पप्रकाश होने पर भी तो वह प्रकाश था ।

रुः—इससे यह ज्ञात हो गया कि पहले यहाँ पर अन्धकार भी था । ज्यों ज्यों प्रकाश बढ़ता गया त्यों त्यों अन्धकार नष्ट होता गया ।

किन्तु यह बात साकार और निराकार के विषय में सर्वथा नहीं घटती है ।

देवः—यह बात आपने यथार्थ कही लौकिक कोई भी उपमाएँ ईश्वर में पूर्णतया नहीं घटती है। कारण ये पाञ्चभौतिक पदार्थ अपूर्ण होते हैं और परमात्मा सर्वथा पूर्ण होता है। अतः एक सर्वाङ्ग पूर्ण के सामने अपूर्ण वस्तुओं की उपमाएँ सर्वदा अपूर्ण तथा एकाङ्गी ही रहेगी। यही उसकी अलौकिकता तथा विशेषता है कि वह दोनों है। साकार होते हुए भी निराकार है और निराकार होने पर भी साकार है।

रुद्रदत्तः—यदि मान लूँ कि ईश्वर साकार हैं तो उसका प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता है और निराकार है तो सृष्टि रचना कैसे करता है।

श्रीदेवः—मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आप का मुख जो निरन्तर आप के पास रहने वाला है, जिसको आप जानते हैं कि वह मेरे अतिसन्निकट में है, वह आप का मुख या नाक अभी आप को दिख रहा है।

रुद्रः—नहीं

देव—जरा ठहरिये? एक दर्पण मंगवाया गया श्रीरुद्रदत्त को नम्रता पूर्वक अपने हाथों से देकर पुनः श्रीदेवतनु ने कहा अब देखिये मुखदिखाता है या नहीं?

रुः—दिखता है—शीशा रख दिया गया।

देवः—पहले क्यों नहीं दिखता था?

रुः—साधनाभाव से।

देवः—बस तो यही बात ईश्वर में भी है। जब तक आप के पस साधनाभाव रहेगा तब तक परमात्मा का प्रत्यक्ष नहीं होगा।

रुद्रः—ईश्वर प्रत्यक्ष का साधन क्या है?

देवः—अनन्य, भक्ति आन्तरिक तथा निस्तर्क श्रद्धा एवं अभ्रान्त हार्दिक अटल विश्वास—इन सब गुणों से युक्त निष्काम सेवा, परमात्मा के लिये अन्तःकरण का दान। इतना सुनने के बाद समस्त श्रोतागण हर्षित हो गये। सभी ने प्रभु प्रेम में विभोर होकर जय-जय कार मनाया। सभी ने मान लिया कि, श्रीदेवतनु की विजय हुयी। पं. श्रीरुद्रदत्तजी परास्त हो गये लेकिन रुद्रदत्तजी अभी पराजय स्वीकार करने वाले न थे।

रुद्रः—अच्छा मान लीजिये कि ईश्वर है और प्रत्यक्ष भी होता है। परन्तु वह आप्तकाम भी है न?

देवः—जी हाँ, वह निरीह भी है और आप्त भी।

रुः—फिर संसाररचनामें कैसे प्रवृत्त होता है।

देवः—वह तो उसकी लीला है और लीला भक्तों के लिये है। निज अनन्य सेवकों को आनन्द देने के लिये सृष्टि को भी बनाता है और अवतार भी धारण करता है।

रुः—जब वह ईश्वर जगत्पिता है तब उसकी रचना में जीवों में विषमता क्यों? क्या वह जीवों में अपने प्रिय पुत्रों में राग या द्वेष भी रखता है?

देवः—जी नहीं वह परमपिता—परमेश्वर किसी के साथ भी

राग अथवा द्वेष नहीं रखता। जो आपको विषमता देखने में आती है वह निजकर्मकृत है। एक ही पिता के चारो पुत्रों में विषमता देखने में आती है। एक योग्य विद्वान बनकर उच्च सन्मान्य स्थान प्राप्त करता है और दूसरा चोर बन कर कारागार की यातना भोगता है। ब्रह्मा ने इन्द्र और विरोचन को शान्ति से एक ही उपदेश दिया था परन्तु अपने अपने स्वभाव के कारण दोनों ने दो चीजें समझी यह विषमता उनके स्वभाव के कारण हुयी। इसी तरह सृज्यमान प्राणी के कर्मों की प्रेरणा से तदनुकूल सृष्टि बनती है। भिन्न जीवों के भिन्न भिन्न स्वभाव होते हैं। उसी के अनुसार जीव कर्म करके फल सम्पादित करता है।

रुद्रः——समस्त प्राणियों के स्वभाव का निर्माता भी ईश्वर ही हैं? देवतनु—जी नहीं। स्वभावों की रचना तो प्राक्तन कर्मानुकूल होती है। ईश्वर तो निमित्त मात्र बनकर सभी के कर्मानुकूल भिन्न स्वभावों को वितरित कर देता है।

रुः——फिर भी हमे ईश्वर को मानने की आवश्यकता न होगी। हम कर्म को ही सुख–दुःख का नियन्ता मान लेगें और उसी के अनुसार सृष्टि का सृजन नियमन आदि कार्य हुआ करेगा।

श्रीदेवः——जी नहीं। कर्म जड़ है, उसमें नियमन करने की शक्ति नहीं होती है और जितने नामों और रूपों को आप देख रहे हैं वे सभी जड़ हैं। चैतन्य तो केवल जीव है और वह ईश्वराभिन्नांश।

श्रीरु——चेतन परमात्मा से अचेतन की रचना का सम्भव है!

जब जगत् का उपादान चेतन है–तो अवश्य जगत् भी चेतन होगा।

श्रीदेवः——जी नहीं, उपादान प्राकृतिक उपादेय भी हो ऐसा सर्वत्र नियम नहीं हैं। कारण कि आपके मतानुसार चेतन शरीर से अचेतन नख, और बाल आदि उत्पन्न होते हैं।

इसी तरह अनेकों प्रश्न श्रीरुद्रदत्तजी ने किये सभी के उचित तथा अकाट्य उत्तर श्रीदेवतनुजी देते रहे। अन्तमे श्रीरुद्रदत्तजी ने अपना पराजय स्वीकार किया और उन्होंने खडे होकर कहना प्रारम्भ किया। उपस्थित समस्त बन्धुओ!

आज तक मेरी भूल थी कि मैं परमात्मविरोधी शास्त्रों का अध्ययन करता रहा। उन्हीं का श्रवण मनन निदिध्यासन करता रहा। उन्हीं संस्कारों में आज विद्वान भी हो गया। अपनी विद्या और योग्यता पर मुझे पूर्ण विश्वास तथा अभिमान भी रहा है। किन्तु आज इस प्रसंग से मुझे ज्ञात हुआ कि अभी तक मैं भ्रान्ति में था। आज मेरी आँखें खुल गईं, आज आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से सही रास्ते पर चल कर परमात्मा का साक्षात्कार करने का सफल प्रयत्न करूँगा। आज प्रभु कृपा से मेरी मति प्रकृतिस्थ हुई एतदर्थ सभा आयोजक तथा पं. श्रीदेवतनु से लाखों धन्यबाद के साथ अपने कुतर्कों के लिये क्षमा मांगता हूँ।

सभी ने परमात्मा सद्बुद्धि दें ऐसा आशीर्वाद दिया। ब्रह्मचारी श्रीदेवतनु ने उठकर भाई की तरह गले से गला मिलाकर आलिंगन किया। सम्मान पूर्वक बैठाया। सभी की बाणी पर देवतनु के लिये

जय जय कार का शब्द नाच रहा था। माता और पिता तो आ-
नन्द विभोर थे। इस तरह सभा विसर्जित हुयी। श्रीदेवेश्वर भ-
अपने गोद में बैठाकर शिर सूंघा, माताजी ने प्रिय पुत्र का चुम्बन कि-
और सब निज भवन को चले गये।

प्रभु प्रत्यक्ष दर्शन

निज भवन में जाकर श्रीदेवेश्वर भट्ट तथा श्रीयशोमती देवी
विचार किया कि ज्योतिषियों से पूछ कर किसी अच्छे मुहूर्त में ब-
को घर लाना चाहिये। यह विचार दोनों के मस्तिष्क में चल ही
था। इधर श्री देवतनु ने बिचार किया कि मैंने बुद्धि वैदग्ध्य
परमेश्वर की सिद्धि की है। किन्तु जब तक हम को साक्षात्कार न
तब तक मैं स्वयं ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास कैसे करूँ। निगमागम
अनुसार यदि परमात्मा है तो प्रत्यक्ष दर्शन अवश्य होना चाहि-
बचपन में ही श्रीदेवेश्वर भट्ट से ही प्रभु की पवित्र अर्चना की शि-
मिली थी। अतः वे नित्य अपने कोठरी में प्रभु के अर्चा विग्रह की
मन से नित्य सेवा करते थे। एक दिन सेवा करते करते उन्होंने प्रति-
के सामने प्रतिज्ञा की, हे प्रभु! यथा शक्ति तनमन से मैंने आपकी
की है और करता हूँ। अभी तक आपने प्रत्यक्ष दर्शन क्यों नहीं दि-
इस लिये जब तक प्रत्यक्ष दर्शन न देंगें तब तक कुछ भी
जलादि ग्रहण नहीं करूँगा। यदि आप दर्शन न देंगें तो मैं जा-
कि वास्तव में वेद पुराण आदि गलत हैं। ईश्वर विषयक कि-
बातें हैं सब गलत हैं, किसी में किञ्चिन्मात्र सत्यांश नहीं है।

करने लगे, नित्य बड़े प्रेम से निज-
दृढ़ प्रतिज्ञ होकर सेवा पूजा करने लगे, नित्य बड़े प्रेम से निज-
हाथों से तुलसी पुष्प का चयन करते। अपने हाथों से पवित्र जल का
आहरण करते थे। प्रभु की सेवा के समस्त कार्य अपने ही हाथों से
करते थे। नित्य नये पक्वान बना कर भोग लगाते थे। आज से
उनका समस्त मनोवेग परमात्मा में लीन हो गया था। अब न अध्ययन
में रुचि थी और न शास्त्रार्थ में, न माता पिता की याद ही आती थी।
बाह्य जगत की कोई भी चीज उनके लिये आकर्षक न थी। प्रभु के
सिवा किसी से बात भी न करते थे। मौन रहते थे। आज चार
दिवस हो गया। न किसी छात्र से मिले और न किसी अध्यापक से।
आवश्यक शारीरिक कार्य के सिवा कभी अपने कमरे से बाहर न
निकलते थे। इस आकष्मिक घटना से सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ।
श्री देवतनु आज तक अपनी शास्त्रीय कुशाग्र प्रतिभा से सुन्दर मनो-
मोहक आकृति से, हृदय ग्राहिणी वाणी से, आदर्शमय पुनीत-
आचरण से सभी के लिये श्रद्धा का विषय बन गये थे। व्यवहार से
सब को प्रिय बन गये थे। प्रिय मित्र की तरह सर्वदा सब के साथ
रहा करते थे। अनेक दिव्य गुणों के कारण जिनकी मधुर प्रतिमा
अमिट संस्कार की तरह अन्तः पटल पर निगड़ित थी। उनको आज
इस तरह विरक्त हो जाने से सभी अध्यापक तथा छात्रगण तन्मनस्क
हो गये। २–४ छात्र उनके कमरे में गये। कमरे का दरवाजा
अन्दर से खुला था धक्का देने से खुल गया। सभी ने देखा—
सर्वालंकारालंकृत प्रभु की दिव्य प्रतिमा विराज मान है। उसके
सामने श्रीदेवतनु शान्तचित्त से कुछ मानसिक प्रार्थना कर रहे हैं।

सभी ने बोलने का, कुछ पूछने का प्रयत्न किया किन्तु वे मौन र
सभी का कुतूहल और विकलता और बढ़ने लगी। छात्रों को विक
देख कर श्रीदेवतनु ने एक कागज पर लिख कर दिया।

प्यारे छात्र बन्धुओ! आप सबों को ज्ञात हो कि अभी
शास्त्रार्थ में अपने बुद्धि वैदग्ध्य से ईश्वर सिद्धि की है। सभी समा
सज्जनों ने ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार किया है। परन्तु मुझे स्वयं
सन्तोष नहीं हो रहा है। अतएव मैंने प्रतिज्ञा की है कि जब त
परमपिता परमेश्वर का प्रत्यक्ष न होगा तब तक किसी से भी भाषण
करूँगा। अन्न जल भी ग्रहण न करने का निश्चय कर लिया है
अब आप सबों से करबद्ध प्रार्थना है कि आप सब कृपया मेरे नि
में बाधक न हो—शान्ति से कपाट लगा कर यहाँ से चले जायं।

छात्रों ने देखा कि कमरे में एक तरफ चार थालियों में प
वान पड़ा है। अर्थात् चार दिन से श्रीदेवतनु ने भोजन भी न
किया है। देवतनु का संकेत प्राप्त कर छात्रोंने चारों थालियों में
उत्तम भक्ष्यान्न को गाय को खिला दिया और सब के सब च
गये। उस कागज को अध्यापकों ने भी बाँचा सभी के अन्त
करण में देवतनु के प्रति आप्त श्रद्धा जमगयी। यह समाचार श्रीदेवे
भट्ट को भी मालूम पड़ा। श्रीयशोमती के साथ वे भी विद्यालय
आ गये। पुत्र प्रेम के कारण दोनों को अति दुःख हो रहा था
देवतनु का शरीर पर्याप्त कृश हो चला था। उनका आमरण अनश
सुनकर राजा को भी बड़ा दुःख हुआ। परन्तु किसी में भी देवत

की इच्छा के विरुद्ध कार्यकरने की शक्ति ही नहीं थी। किसी को भी कमरे के अन्दर आनेका आदेश न था। पिता श्रीदेवेश्वरजी बड़े चिन्तित थे। माता श्रीकी पवित्र आँखों से निरन्तर जलधारा प्रवाहित थी।

अनशन का सातवां दिन था। कमरे के अन्दर ही श्रीदेवतनु ने प्रतिज्ञा की कि यदि आज प्रभु का दर्शन न होगा तो मैं समाधी लगा कर योगाग्नि से प्राण को भष्म कर दूँगा। एक कागज पर लिखकर अपना निश्चय माता—पिता तथा समस्त नागरिकों को बता दिया। और यह भी कि आज ही सायं ५ बजे दिन को सूर्यास्त होने पर आप सब मेरे दरवाजे को तोड़कर अन्दर आना। कारण सूर्यास्त के पूर्व यदि परात्पर प्रभु का दर्शन न हुआ तो सूर्य की किरणों में ही मेरा प्राण भी मिल जावेगा। यदि प्रभु का जगत्तारण दिव्य दर्शन होगया तो मैं सूर्यास्त से पूर्व कमरे से बाहर निकल आऊँगा।

यह अन्तिम और अकाट्य निर्णय जानकर सभी की आत्माएँ काँप गयीं, सभी की आँखों में आँसु की धाराएँ बहने लगीं। माता और पिता उच्चस्वर से विलाप करने लगे। समस्त नगर में कुहराम मचगया। देवतनु का निश्चय अड़िग था। किसी की भी हिम्मत नहीं थी कि वे कमरे के दरबाजे पर जायें। महाराज श्रीपाण्ड्य विजय परिवार के साथ वहीं आगये।

प्रभु दर्शन

पिता श्रीदेवेश्वरभट्टजी तथा यशोमतीजी तो प्रायः अचेतना अवस्था में थी। राजा सहित समस्त नागरिकोंने भी यही निश्चय

किया कि जबतक देवतनु का सकुशल दर्शन न हो, तब तक उपवास करें। सभी लोग दरवाजे पर कान लगाये बैठ गये थोड़ी देर में कुछ आवाज आने लगी—देवतनु गद गद कण्ठ से बोल रहे थे कि हे प्रभो! हे निज जनानन्ददायक !

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

यह गीता का वाक्य क्या झूठा है ? जिससे अभी तक आपने दर्शन नहीं दिया । **पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।** क्या यह आपकी वाणी असत्य है ? अथवा कवियों की कपोल कल्पना है ? जिससे आज सात दिन बीत गये, आपने मेरा भोग नहीं स्वीकार किया, समस्त श्रुतिस्मृतीतिहास पुराणों में यह लिखा है, जब आपके भक्त आपको आर्तस्वर से बुलाते हैं तब आप दौड़ कर आते हैं, तो क्या मैं पूर्ण भक्त नहीं बना:— मेरे नाथ ! क्या मेरी श्रद्धा में कोई दोष है ? क्या भवद्विषयक सभी गाथाएँ असत्य हैं जिससे आप मेरे बुलाने पर नहीं आते। हे दयामय ! जगदीश ! मैंने सुना है कि ध्रुव के लिये आप श्रीहरि बनगये थे। प्रह्लाद के लिये खम्भ फाड़कर निकले थे।

पाञ्चाली के लिये चीर दान दिया था । गजराज के लिये गरुड़ को छोड़ कर ही दौड़ पड़े थे। बोलो प्राणेश ! क्या अभी मैं उन भक्तों के समान नहीं हुआ हूँ ? यदि मेरी कोई त्रुटि हो तो उसको भूल जावो ! मेरे स्वामिन ! प्रभो अब मौन होने से कार्य नहीं चलेगा। मेरी प्रतिज्ञा है प्रभु, यदि आज सांय से पूर्व आप का दिव्य दर्शन नहीं हुआ तो आज ही मैं अपना प्राण को आप में लीन कर दूँगा।

हे **सर्वान्तर्यामिन् !** क्या मेरे अन्तःकरण की भावनाओं से आप अपरिचितहैं। तो क्या आप विषयक अन्तर्यामी शब्द असत्य है। क्या आप यह नहीं जानते कि बाहर क्या हो रहा है। हे परम पितः आज मेरे साथ ही समस्त मथुरा नगरी का नाश हो जायेगा । जो हो दीन बन्धो ! जगत सर्जक पालक तथा संहारक आप हैं। मुझे इसकी क्या चिन्ता है। मैंने तो अपना कर्तव्य पूरा किया। लो ये प्राण आप को समर्पित है। इतना कह, देवतनु अपना शिर, अर्चाविग्रह के चरणों पर रख मुक्त कण्ठ से रोने लगे।

उनका करुण रुदन सुनकर बाहर बैंठे सभी लोग तार स्वर से रोने लगे। एक साथ राजा सहित समस्त नगर में भयङ्कर रुदन का शब्दव्याप्त हो गया ।

समय की गति को कौन रोक सकता है। भुवन भाष्कर विश्ववाटिका पर से अपना किरणजाल, समेट रहे थे। ऐसा ज्ञात होता था मानो मथुरा नगरी के दुःख को देखकर वे भी रक्तानन हो उठे थे। इस अति करुण दृश्य को न देख सकने के कारण आप अपना अरुणाभ मुख दिगञ्चल में छिपा देना चाहते हों। ज्यों ज्यों अंशुमान—ढलते जा रहे थे त्यों त्यों कोलाहल बढ़ता जाता था। श्रीदेवेश्वरभट्ट तथा यशोमती तो अचेतन थे सभी के मुख पर निराशा की पतलीसी रेखा खिंचती जा रही थी।

अचनाक आकाश में कुछ शब्द हुआ। सबका ध्यान, उधर आकर्षित हो गया। सबों ने प्रत्यक्ष देखा कि एक दिव्य प्रकाश

दिविमण्डल में प्रकट होकर विलीन हो गया। सभी का ध्यान आकाश में गया, और पुनः बन्द कोठरी में बाते होने लगी। कोई पीयूष वर्षिणी वाणी में कह रहा था।

वत्स ! उठो तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गयी। सजलजलद गर्जना की तरह सान्द्र गिरा को सुनकर श्रीदेवतनु ने मस्तक को ऊपर उठाकर देखा कि सामने त्रिभङ्गललित, मोरमुकुट पीताम्बरधारी अधरधारित मुरलीमनोहर, परमानन्ददायक, मन्दमुस्कानयुक्त, द्विभुज साक्षात व्रजराज सामने उपस्थित है। प्रभु का निजजनवरदकरकञ्ज देवतनु के शिरःस्थान पर अविरत गति से चल रहा था। श्रीदेवतनु ने नित्य-गोलोकविहारी का दर्शन किया। अन्तःकरण में महती उत्कण्ठा जागृत हुयी कि मैं प्रभु की स्तुति करूँ, परन्तु आनान्दातिरेक से गला भर आया और वे कुछ भी न बोल कर आनन्दाश्रसहित मस्तक को प्रभु के चरणों में पुनः रखना चाहे परन्तु उससे पहले ही प्रभु ने उनको भुज पास में बांध लिया। अब श्रीदेवतनु महाप्रभु के अंक में थे। प्रभुने कहा—देवतनु इतना अधीर क्यों हो गये ! तुम तो हमारे ही अवतार हो अनन्य सेवा भक्ति के प्रचार के लिये तुम्हारा धरा धाम पर आना हुआ है। अब देर करने का समय नहीं है। बद्रि काश्रम में तुम को वेद व्यास का दर्शन होगा। वहीं नर तथा नारायण से भी मिलना जैसा वे सब कहें वैसा करना। अब मैं जाता हूँ—देवतनु ने कहा कि प्रभो ! आज मैंने प्रतिज्ञा की थी कि सूर्यास्त से पूर्व यदि आप दर्शन न देंगे तो मैं प्राणोत्सर्जन करूँगा। इस बात को सभी लोग जानते हैं। आपने मुझे दर्शन दिया ऐसा उनको विश्वास

हुआ तो ये सब मुझे मृत्युभीत कहेंगे। प्रभु ने हँसकर कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा, दरवाजा खोल दो।

किवाड़ के खोलते ही सभी ने आश्चर्य चकित हो—नन्दाङ्गण बिहारी के दर्शन किये। एक क्षण के लिये सभी की आँखें चकाचौंध में पड़ गयी। जब खुली तो वहाँ पर व्रजराज न थे। माया प्रेरित होने के कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने देवतनु से क्या कहा इसको किसी ने भी न सुना। श्रीदेवेश्वरभट्ट (देवस्वामी) ने देवतनु को हृदय से लगाया—माता ने प्रेमनिर्भर हो चुम्बन किया।

अब राजा ने साष्टाङ्ग प्राणिपात किया सभीने साष्टाङ्ग नमस्कार किया और अत्यानन्द विभोर हो निजनिज भवन को प्रयाण किया।

पिता और पुत्र का सम्वाद्

श्रीदेवतनु के अगाढ़ पांडित्य तथा भगवत्प्रेम से पिता श्रीदेवेश्वर-भट्ट बड़े प्रभावित हुए थे। माया से प्रेरित हो जाने के कारण उनको अतीत की सारी घटनाएँ भूल गयी थीं। अब वे देवतनु को सत्यतया अपना पुत्र समझने लग गये थे। अतएव उन दोनों माता और पिता ने विचार किया कि अब श्रीदेवतनु सर्वथा पूर्ण विद्वान हो गया है। अब उसको विद्यालय से धर बुला लेना चाहिये। पुत्र का गृह प्रवेश की तिथि निश्चित हो गयी। विद्यालय नगर से कुछ दूर था। विद्या-लय से ही समस्त नागरिकों की एक शोभा यात्रा निश्चिय हो गयी। बड़े उत्सव के साथ देवतनु अपने घर पर जाने वाले थे। समस्त नगर में तोरण और पताका बाँधे गये।

यह समाचार श्रीदेवतनु को ज्ञात हो गया कि, निश्चित तिथि को पिता श्रीदेवेश्वरभट्ट लेने आने वाले थे। अब देवतनु के सामने एक विकट तथा विचारणीय प्रश्न था। उनको यह निश्चय करना था कि अब क्या तथा कैसे करना। थोड़ी देर विचार के बाद उन्होंने निश्चय कर लिया कि प्रभु की आज्ञा के अनुसार मुझे बद्रिका आश्रम में जाना है। तुरन्त उन्होंने श्रीदेवेश्वरभट्ट के पास समाचार लिख कर भेज दिया।

परम पूज्यचरण श्रीपिताजी! आपके पवित्र चरणों में मेरा दैनिक साष्टाङ्ग नमस्कार स्वीकृत हो।

विशेषतः—यह ज्ञात हो कि—मुझे घर लेजाने की जो आपने योजना बनाई है इस विषय में घर जाने से पूर्व मैं आप से मिल लेना चाहता हूँ, अनेक बातें करनी हैं अतः करबद्ध प्रार्थना है कि श्रीमाताजी को लेकर आप यहाँ आइये उसके बाद जाने का प्रोग्राम बनेगा। बस श्रीमाताजी के चरणों में सादर वन्दन हो।

आपका प्यारा देवतनु—

पत्र प्राप्त कर दोनों को बड़ा आश्चर्य होने लगा श्रीदेवेश्वरभट्टजी समझ गये कि देवतनु विरक्त जीवन विताना चाहता है। माताजी ने सोचा कि सम्भवतः अभी कुछ दिन विद्यालय में ही रहने का विचार होगा। अति शीघ्र दोनों शीघ्रगामी यान से विद्यालय पहुँचे। आज इस तरह अचानक विद्यालय में राज्य के प्रधान मन्त्री को आया देख कर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ कारण कि जब कभी पहले

देवेश्वरभट्टजी आते थे तो विद्यालय में राज्य की ओर से सूचना दी जाती थी। सभी तैयारी के साथ आते थे।

आज श्रीदेवेश्वरभट्टजी विना किसी से बोले मौनइंगित से ही सभी के नमष्कारों का प्रत्युत्तर देते हुए सीधे श्रीदेवतनु के कमरे में चले गये। श्रीदेवतनुजी तो माना स्वागत के लिये दरवाजा पर ही बैंठे थे। उन्होंने उठकर पूज्य चरणों में नमष्कार किया और माताजी के गोद में जाकर बैठ गये। श्रीदेवेश्वरभट्ट ने शान्त स्वर में पूछा कि वत्स! स्वास्थ्य कैसा है? इतना सुनकर श्रीदेवतनु की आँखों में अश्रुकण आ गये। माताजी के अञ्चल में मुख छिपा कर रोने लगे। मातृ हृदय भी उमड़ पड़ा, श्रीदेवेश्वरभट्ट से न रहा गया। उन्होंने देवतनु के हाथ पकड़ अपने अंक में बैठा लिया और शान्तिपूर्वक वात्सल्य पूर्ण वाणी से पूछा—हे पुत्र! आज तुम्हारी यह करुणदशा क्यों है? तुम्हारे अन्तःकरण में ऐसी कौन सी विचार धारा वह रही है जिसके कहने में तुमको इतना दुःख होता है। इस तरह रोने से कार्य नहीं सिद्ध होता। अपितु और हानी ही होती है। देखो तुम्हारे रोने से सभी उपस्थितजनों के आँखों में आँसु आ गये हैं अतः तुम शान्ति से बात करो।

अब देवतनुजी कुछ सावधान हुए उन्होंने श्रीमाताजी की तरफ देखा वे देवप्रतिमा जैसी स्तब्ध वन गयी थी। बडे शान्त स्वर में श्रीदेवतनु ने कहा कि मैं घर नहीं जाऊँगा। मेरा विचार है कि मैं विरक्त होकर प्रभुस्मरण में अपना जीवन विताऊँ। यह सुनना था

कि उन वृद्ध तपस्वियों पर वज्र प्रहार होगया। माताजी तो अचेत हो गयी। पिताजी कुछ सावधान थे। वे देवतनु के हठ को जानते थे। उनके अन्तथस्ल पर गहरी चोट लगी फिर भी थोड़ा हँसकर उन्होंने कहा पुत्र ! यथा समय वह भी होगा। वैदिक मर्यादा के अनुसार अब तुम्हारा ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त हो गया। अब गृहस्थ बनना चाहिये पुनः वानप्रस्थ, उसके बाद संन्यस्त का क्रम आता है उसके लिये जल्दी क्यों है।

देवतनुः—नहीं पिताजी ! मुझे गृहस्थ एवं वानप्रस्थ के झगड़े में न पड़कर अभी और यहीं संन्यास लेना है। बद्रिकाश्रम जाकर तपश्या में निज जीवन को बिताना है।

देवेश्वरभट्ट—वत्स ! यहाँ तो वेद का विरोध होगा। सनातनमर्यादा का विरोध होगा। कारण कि श्रुतियों में लिखा है कि—

ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् गृही भुत्वा वनी भवेत्
वनी भुत्वा प्रव्रज्येत्—जा० श्रुतिः
प्रजा तनु मा व्यवच्छेत्सीः। तैतिरीयः ७-११-१
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः
'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिऋणवान् जायते ?
तैः ६-३-१००५,

वत्स इन सब श्रुति वाक्यों की अवहेलना क्या उचित है ? अत एव हे पुत्र ! वेद मर्यादा का रक्षण ब्राह्मण धर्म है निज धर्म के अनुसार अब तुम को गृही होना चाहिये। यथा काल अपने धर्म का अनुपालन सुखावह होता है। पितृधर्म के अनुसार भी तुम्हें गृही होना चाहिये

कारण कि मानव धर्मशास्त्र में लिखा है कि—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य-मनोमोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्यमोक्षंतु सेवमान पतत्यधः॥ मनु० ६-३५

इन विधायक श्रुति स्मृति वचनों के अनुसार पितृ ऋण से मुक्त होने के लिये तुम को गृही बनना ही चाहिये। माता-पिता की आज्ञा भी तुमको माननी चाहिये। प्रिय पुत्र ! अपनी माता की ओर जरा ध्यान दो-वह कितनी कातर हो रही हो। इतना कह कर श्रीदेवेश्वरभट्टजी चुप हो गये।

श्रीदेवतनु ने दोनोंकरजोड़ श्रीपिताजी के चरणो में नमष्कार किया और कहने लगे। हे मेरे पूज्य पिताजी ! मैं वेद विरोधी कार्य करना नहीं चाहता हूँ। अपितु श्रुतियों में ही यह भी तो लिखा है—

यद्विवेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रज्येत्।

गृहस्थ आश्रम के धर्म में मति न निविष्ट होती हो तो ब्रह्मचर्य में ही संन्यास ले लेना चाहिये। अतएव अब मैं निश्चित संन्यास लूंगा गृही नहीं बन सकता हूँ। इतना सुन पिता की आंखों में भी अश्रुकण आ गये। उन्होंने कहा-हे पुत्र ! अपनी माता की ओर देखो-उसको दुःखी करना उचित नहीं हैं। देवतनु ने देखा यशोमती की आँखों से निरन्तर आँसु धारा चल रही थी। माताजी के हृदय में कुछ साहस आया उन्होंने गद-गद कण्ठ से कहा-हे पुत्र मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि **मातृदेवोभव ? पितृदेवोभव**—क्या ये वैदिक वाकय तुमको

अमान्य है। या उनमें तुम्हारी श्रद्धा नहीं है। मेरी आँखों की ज्योति
तुम्हारे लिये तो पिता ही सब कुछ हैं। कारण कि पद्मपुराण में
लिखा है।

पिता धर्मः पिता कर्म पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिसम्पन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥१॥
नास्ति पितृसमोदेवो नास्ति पितृसमो गुरुः
नास्ति पितृसमो बन्धुर्नास्ति पितृसमो क्वचित् ॥

प्रियपुत्र ! इन पौराणिक बचनों के अनुसार तुम को माता
पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिये इसीसे तुम्हारे ऊपर
देवता प्रसन्न हो जायेंगे तुम्हारे लिये तपश्या की क्या आवश्यक
है और भी कितनी तपश्या के बाद हमने प्रभुकृपा से वृद्धावस्था
तुमको प्राप्त किया है। तुमको लेकर हमारे अन्तःकरण में क्या-क्या
आशाएँ उमड़ रही हैं। अब तुम इस अवस्था में हम वृद्धों
छोड़कर चले जायोगे यह हमारे लिये कैसे सह्य होगा। प्रिय
बोलो क्या मेरी आखें इसी तरह रोती रहेंगी ? क्या तुम यह
हो कि जब तुम चले जावोगे तब मेरा हृदय इसी तरह स्थिर
सकेगा। शास्त्रीयमर्यादा के अनुसार तुमको मातापिता की
करनी चाहिये। शास्त्रीय विधिका त्याग करनेसे अच्छा नहीं है
कारण कि गीता में भगवानने स्वयं कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
नस सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥

अतएव हे पुत्र ! अब तुमको घर जानेकी तैयारी भी करनी चाहिये

इतना सुनकर श्रीदेवतनु की आत्मा कांपने लगी माताजी का उत्तर देना शरल नहीं है। मातृप्रेम के सामने तर्क तथा शास्त्रीयज्ञान फीके पड़ गये। देवतनु कुछ बोल न सके। कातर नेत्रोंसे उन्होंने पिता की ओर देखा। पिताजीने कहा वत्स ! संन्यास से मेरा किसी प्रकार का विरोध नहीं है। परन्तु दह अति कठिन चीज है। अभी तुमने संसार के किसी अंग को देखा ही नहीं। संन्यास धर्म में आनेवाली सांसारिक विघ्न बाधाओं को भी तुम जानते नहीं हो। इन सभी बातों का अनुभव करने के लिये तुम को पूर्ण सांसारी बनना पडेगा। हे पुत्र ! तुम को माताजी की आज्ञा माननी चाहिये। माताजी का हृदय दुखा कर कहीं जाना उचित नहीं है।

अब श्रीदेवतनुजीने कहा पूज्य पिताजी ! एवं परमपूजनीया श्रीमाताजी ! आप सबोंका पवित्र एवं शास्त्रानुकूल आदेश मानने में मुझे कोई एतराज नहीं है। आपकी कठोर आज्ञा प्राप्त कर प्राणों की आहुति देने में भी किंचित् संकोच नहीं है। परन्तु आज देशकी परिस्थिति को देखकर मैंने यह संन्यास लेने का निश्चय किया है सो हिमालय जैसा अचल है। हम ब्राह्मण हैं ब्राह्मणों की कीर्ति, त्याग—तपस्या एवं प्रभु स्मरण में है। आज जो देश की वर्तमान परिस्थिति है उसको आप जानते हैं। समस्त विश्व में से प्रभुकी सत्ता उठती जा रही सी प्रतीत होती है। भगवद् भक्ति से विमुख जीव नाना प्रकार के पापाचारों में पड़कर कष्टमय जीवन बिता रहे हैं। पापान्ध जीवों को नीजि

सुख और दुःखका ज्ञान नहीं है। अमृतज्ञान से विषपान कर तडफ रहे हैं। फूलके बदले कांटों में हाथ डालते रहे हैं। क्या ? अनेक उन दुःखी जीवोंके अनन्त सुख के लिये हम अपने क्षणिक सुख का त्याग नहीं कर सकते हैं। पूज्यपिताजी तथा परमपूज्या श्रीमाताजी! क्या अच्छा होता, यदि आप सब मुझे केवल अपना न समझकर सारे संसारको अपना समझते। आप उन पवित्र इतिहासों को खूब जानते हैं। महाराज शिबिने कपोत को सुखी करने के लिये अपना प्राण दिया था। महर्षि श्री दधीचिने देवताओं को सुखी करने के लिये निज शरीर को गला दिया था। हम भी उन्हीं महर्षियों के सन्तान हैं। क्या आज लाखों कलि चक्र चकित जीवों के लिये क्षणिक सुख को भी नहीं छोड़ सकते। पूज्य पिताजी ! बताइये ? इन लाखों प्रभु के प्यारे पुत्रों तथा प्रभु की प्यारी भारत वसुन्धरा के प्रति हमारे कुछ भी कर्तव्य नहीं है। इन हजारों भक्ति विमुख अल्पज्ञ जीवों को दुखी छोड़कर हमको सांसारिक सुख भोगना क्या न्याय संगत है ?

देश और दीनदुखियों के प्रति इतनी उच्च भावना को देखकर श्री देवेश्वर स्तम्भित रह गये। कुछ भी बोलने का साहस न हुआ। साँप और छंछून्दर की तरह उनकी दशा हो गई। माताजी तो स्वप्न लोक में थी। आँखों से निरन्तर जलश्रोत चल रहा था। माता के सामने देवतनु को भी कुछ बोलने का साहस नहीं हो रहा था। जहाँ हृदय पारावार बनकर उमड़ रहा हो वहाँ पर मस्तिष्क रूपी पिपीलिका की गति ही कितनी। देवतनु ने माताजी की ओर देखा उनका

भी हृदय उमड़ पडा। उन्होंने कहा मां ! बस इतना कहकर गोद में शिर रखकर रोने लगे। समस्त उपस्थित गण मौन थे। फैला था भगवती करुणा का पूर्ण शक्तिशाली साम्राज्य।

आकाश में कुछ भारी पन माळूम हुआ। कुछ शब्द होने लगा सभी की आँखे ऊपर उठीं, सभीने बिना देखे सुना अशरीरीवाचा सब को समझा रही है। हे श्रीदेवेश्वरजी! आपको यह भूलना न चाहिये कि वे केवल तुम्हारे पुत्र नहीं है। परात्पर प्रभु श्रीविष्णु के अवतार हैं। जगत में धार्मिक मर्यादा का प्रचार एव संरक्षण हो एतदर्थ इनका अवतार हुआ है। अभी जो कुछ हो रहा है वह लीला मात्र है। अतएव तुम दोनों को चाहिये कि वनमें जाकर तपश्या करने की आज्ञा दें। आकाशवाणी को सुनकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। देवेश्वर तथा यशोमती को कुछ पूर्ववृत्त स्मृति पट पर आ गया। देवतनु गोद में से उठकर निजस्थान पर बैठ गये थे। प्रभुने थोड़ा हँस दिया माता और पिता के मन में एक त्यागी लोकोपकारी पुत्र की भावना जागृत हो गई। दोनों ने एक साथ कहा वत्स ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। देवतनु ने दोनों हाथ जोड़ खडे होकर कहा—हे पूज्यचरण माता ! एवं पिताजी ! आप सब किसी भी प्रकार की चिंता न करें। मैं वही करूँगा जिससे हमारे पितृ लोग स्वर्ग में आनन्दित हों। इतना ध्यानमें रखिये कहीं भी रहूँ। कुछ भी करूँ मैं रहूँगा आपका इससे सभी को शन्ति आ गई।

बद्रिकाश्रम-प्रयाण दर्शन

अब श्रीदेवेश्वर तथा श्रीयशोमतीने दो-तीन दिनों तक वि... में रहने का प्रोग्राम बना लिया ।

एक दिन श्रीदेवतनु एकांत में बैठे भविष्यकार्य के विष... प्रोग्राम शोच रहे थे । सहसा आकाश में कुछ प्रकाश पुञ्ज दि... दिया। जो शनैः शनैः देवतनु की ओर बढ़ रहा था। थोडीदेर में ... ने देखा कि निरन्तर प्रभु की लीला का गान गानेवाले वीणापाणी ... वान् श्रीनारदजी देवतनु के सामने उपस्थित हो गये। देवतनु ... उठकर उनका स्वागत किया। षोडसोपचार से पूजा की, दोनों में ... होने लगी ।

देवतनु—कहिये महर्षि ! मैंने सुना है कि आप जीवों पर ... करने के लिये सदा मर्त्यलोक में घूमा करते हैं । आज अवश्य ह... अनेकजन्मों के पुण्य उदित हुये हैं जिससे आपने दर्शन दि... आज्ञा दीजिये मैं कौनसी आपकी सेवा करूँ जिससे आपका ... सफल हो ।

नारद—हे प्रभो ! इस तरह आप हमे भी मोह में न डालिए ... जानता हूँ कि आप जगत्पालक भगवान् श्रीविष्णु के लीला अवतार ... भगवती भक्ति के उद्धार के निमित्त आप भूमण्डल पर पधारें ... अस्तु अधिक बात करने का समय नहीं है । अभी मैं बद्रिका... से आ रहा हूँ । वहां अपनी गुफा पर बैठे भगवान् श्री व्यास...

...आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वहीं आप से नर तथा नारायण भी ...मिलेंगें। प्रभो ! अति शीघ्र जाइये अब इससे अधिक भगवत् प्रिया ...गवती भक्ति की दुर्दशा देखी नहीं जाती है । ढ़ोंग तथा अत्याचारों ...से भक्ति का अस्तित्व मिटता सा दिख रहा है।—इतना कहकर श्रीनारदजी ...चले गये और श्री देवतनुजी विचार करने लगे। थोड़ी देर में आकाश ...में कुछ झंझावात प्रतीत होने लगा । प्रसन्न दिशाएँ धूम से धूमिल ...हो गयीं। भगवान् विवश्वान भी तिमिराछन्न हो गये। दिन में ही ...भयंकर-रात्रि जैसा अन्धकार छा गया । विद्यालय के सभी लोग एक-...त्रित होकर मन में ही प्रार्थना करने लगे। किसी को भी कुछ दिखता नहीं ...था। दिशायों में भयंकर शब्द भी हो रहा था। सभी लोग विमूढ़ होकर ...बैठ गये। थोड़ी देर में प्रकाश हुआ तो सभीने देखा कि श्रीदेवतनुजी ...आकाश में श्री पक्षिराज गरुड की पीठ पर बैठे सभी से अति विनम्र ...आज्ञा मांग रहे हैं । सभीने सहर्ष आज्ञा प्रदान कर साष्टाङ्ग प्रणिपात ...किया और श्रीदेवतनुसहित गरुडजी अदृश्य हो गये । श्री देव-...स्वामी तथा यशोमती देवी कुछ हर्ष तथा कुछ उन्मने से होकर निज-...भवन में चले आये । बड़े आश्चर्य के साथ यह बात समस्त राज्य में ...प्रसारित हो गयी।

श्री व्यासजी का आश्रम दर्शन

दिशाएँ आरक्त हैं भुवन भाष्कर क्षितिज पार हो रहे हैं। स्फटिक-...मय हिमालय विद्रुममय जैसा प्रतिभासित हो रहा है । आवास-...वृक्षों पर पक्षिनिचयों के मधुरकलध्वनि से दिशाएँ मुखरित हो

रही हैं। दिनभर बनों में चरने के बाद मृग समुदाय स्वबास में रहा है, आकाश में कचित् तारिकाएँ भी निकलती जा रही हैं। सायंकाल का समय है। एक महती गुफा के सामने कुछ महर्षि बैठे विचार कर रहे हैं। सबके मुख दक्षिणाभिमुख हैं। कुछ मौन रहने के बाद एक वृद्धतापसने अपने दिव्य स्मश्रुकुञ्ज पर फेरता हुआ सभी के सामने लक्ष्य करके कहा—

व्यास—हे देवर्षे ! नारदजी ! क्या आप मदुरा जा आये तक श्री देवतनु का आगमन क्यों नहीं हुआ।

नारद—महर्षे श्रीव्यासजी ! आप सबोंसे मिलने के बाद मैं से सीधे मदुरा जा कर श्रीदेवतनु से मिला था। उनको सन्देश कहा और वहां से लौटते समय मैं गरुड को वहां था अतः अब आते ही होंगे।

नर और नारायण—भाई ! हम सबोंने सुना है कि भगवान् विष्णु का मानव अवतार हुआ है। अतः दर्शन की अति है कब तक आ जायेंगे। क्या कहा आपने, उनका नाम क्या है, ठीक ही तो है—इस नाम में चाहे बहूव्रीहि समास करो षष्ठी तत्पुरुष दोनों ही तरह नाम तो यथार्थ है।

व्यासजी—नहीं यह नाम तो उनके माता-पिताने रक्खा संसार में उनका कुछ और नाम प्रसिद्ध होगा।

इसी तरह उन ब्रह्मकल्प महर्षियों में बातें चल रही थी आकाश कुछ गम्भीरसा माळुम पड़ने लगा। दिशाओं में कुछ

श्री ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। महर्षि लोग आनन्दोल्लास से उठ खड़े हुये। सभीने देखा कि—अनन्त शक्तिशाली श्री गरुड आ गये। उनके पीठ पर श्री देवतनुजी बैठे हैं। अब वैनतेयजी धरापर आ गये थे। देवतनुने सामने आकर महर्षियों के चरणों में नमस्कार किया। व्यास तथा श्री नर-नारायणने उठ कर गले लगाया। सब लोग शान्ति से बैठ गये बातें होने लगीं। सर्व प्रथम श्री व्यासभगवान्ने कहा कि हे विष्णुदेव ! हम सब आपकी प्रतीक्षा में हि थे अच्छा किया आ गये। आज संसार की स्थिति अति अमर्यादित तथा अधार्मिक होती जा रही है। उसी के उद्धार के लिये मैंने उपनिषदों का समन्वय कर कुछ सूत्रों का निर्माण किया है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजीने महाभारतकाल में अर्जुन को जो दिव्यज्ञान दिया था। उसको भी मैंने महाभारत नामक ग्रन्थ में संग्रहीत कर दिया है—उपनिषद् तो हैं ही। इन सभी का समन्वय करके आप श्री भगवद् भक्ति का प्रचार करें ऐसी प्रार्थना है। व्यासजी की इस बाणी को सुनकर श्री देवतनुजीने हाथ जोड़ कर खड़े होकर कहा हे महर्षियो ! मेरा नाम देवतनु है आप सबोंने विष्णुदेव कैसे जाना यह मेरी समझ में नहीं आता है। यह सुन प्रभुस्वरूप महर्षियोंने कहा कि हे जगत के पालक ! यहाँ आप अपनी मोहमयी लीला को रहने दीजिये श्रीभगवान् श्रीविष्णु के अवतार हैं। विष्णुप्रिया भगवती भक्ति के उद्धार के लिये धरातल पर आयें हैं। साक्षात् विष्णु के स्वरूप होने के कारण आप का नाम भी अब विष्णुदेव ही रहेगा। जगत में प्रचार के कारण आज से लोग आपको परमाचार्य श्री विष्णुस्वामी कहेंगे।

इसके बाद महर्षियों में अनेक बातें हुयीं। व्यासजीने कहा कि जब मानव देह धारण करके लोक में आये हैं तो आप को साधारण मानव की तरह लीला करनी होगी, गरुड को छोड़कर पैदल यात्रा करनी होगी। ब्रह्मसूत्र गीता तथा उपनिषदों का अध्ययन करना होगा। इस प्रस्थानत्रयी को यहीं मेरे पास पढ़िये और फिर यहाँ से थोड़ी दूर पर सिद्धतपस्वियों की निवासभूमि कलापग्राम है। वहां जाना वहां पर आपको श्रीशुकदेवजी मिलेगें। उनसे श्रीमद्भागवत का अध्ययन करना इस प्रस्थान चतुष्टय के अनुसार विशुद्ध अनपायिनी भक्ति का प्रचार कर कलिकलुषकलुषितमनस्क मानवप्राणी का उद्धार करें।

अब हमारे चरित्र नायक, श्रीदेवतनु से विष्णुस्वामी बन गये थे। श्रीविष्णुस्वामी कुछ दिनों तक व्यासजी के आश्रम में निवास कर नर लीला के अनुसार ब्रह्मसूत्र, गीता तथा उपनिषदों का अध्ययन करते रहे। उसके बाद नर नारायण आदि महर्षियों की आज्ञा लेकर कलाप ग्राम को चल दिये। मार्ग में ही दिगम्बर वेश द्वादश वर्षीय विमलात्मा श्रीशुकदेवजी से भेट हो गयी। श्रीशुकदेवजीने कहा कि मुझे मालूम हो गया था, आप आ रहें है। अतः मैं मार्ग में ही प्रतीक्षा करता रहा। दोनों गले से गला मिला कर मिले और बातें करते करते कलाप ग्राम की ओर चल पड़े। थोड़ी देर में कलाप ग्राम आ गया। वहां जा कर दोनों ने सिद्ध महर्षियों के बीच बैठे। त्रिपुर विजेता त्रिलोचन स्वरूप साक्षात् भगवान् रुद्र के **दर्शन किये**। सभी महर्षियोंने उठ कर इन समागत भगवद् विभूतियों का स्वागत किया पुनः ये दोनों भगवान् श्री शिव के चरणों में नतमस्तक हो बैठ गये।

साम्प्रदायिक दीक्षा और दिग्विजयप्रयाण दर्शन

आज आचार्य श्रीत्रिलोचनजी के आश्रम में धूमधाम था। शुकादिक दिव्य महर्षियों का जमाव था और भी अनेक दिव्य महर्षियों को निमन्त्रित करके बुलाया गया था। ब्रह्मचारी श्रीदेवतनुजी स्नातक की स्थिति में सब के सामने लाये गये। आश्रम के मध्य में सुन्दर मण्डप का विधान बनाया गया। यज्ञ मण्डप का निर्माण किया गया। महर्षियों ने दिव्य औषधियों की आहुतियों से अग्नि प्रज्वलित किया। दिव्य सौरभ से दिङ्मण्डल सुरभित हो उठा। देववटु श्रुतिगान करते थे। आकाश में देवगण दुन्दुभि निर्घोष कर रहे थे। देव कुमारिकाएँ निजकर चपलता का उपयोग ललितकुसुम चयन कर वृष्टि कर रही थीं। विमानस्थ देवनिचय की आखें लालायित थीं धरा पर कुछ देखने के लिये वन्य पशु परस्पर स्वाभाविक वैर को छोड़कर शान्ति से विचरण पर थे। आज आश्रम की शोभा अलौकिक आभान्वित थी। हिम वाहिनी भगवती भागीरथी निशब्द तथा शान्त थी। व्यवस्थित रूप से यथा स्थान दिव्य देहधारी अलौकिक प्रतिभावान महर्षिसमुदाय बैठा था। ब्रह्मा, होता तथा ऋत्विज लोग अपना कार्य कर रहे थे और सामने बैठे थे सर्वतेजो विभावी ब्रह्मचारी स्वरूप भगवान् श्रीविष्णुस्वामी। देव. त–

सहसा यथास्थान बैठे देव तथा महर्षियों के मध्य में जटा जूट विभूषित दिव्य मङ्गलमयी मूर्ति आकर विराज गयी जिसके अलौकिक

तेज से सब प्रभावित हो गये। सबों ने करजोड़ प्रणाम किया। साथ आदेश प्राप्त कर विराज गये। वह स्थान देवसभा को सुशोभित होने लगा। आकाश में विराजमान साक्षात् देवगण विमुग्ध थे। अभी आनेवाली मूर्तिने (जो आचार्य श्रीत्रिलोचनजी श्री)। सभी के सामने कुछ कहना प्रारंभ किया ।

उपस्थित देवताओ तथा दिव्यज्ञान सम्पन्न महर्षियो! सम्भवतः आप लोगों को आज के इस आयोजन का कारण ज्ञात ही होगा। भारतीय वसुन्धरा पर पाप का झंझावात चल रहा है। त्रिलोक पर श्रीहरिप्रिया भगवती भक्ति देवी का प्रति दिन ह्रास होता जा रहा

धरा पापों के बोझ से बोझिल होती जा रही है। इस परि के अनुसार निजी प्रतिज्ञा का स्मरण कर त्रिलोक नायक भगवान् विष्णुदेवजी का अवतार हो चुका है। प्रभुने निज अनन्य प्रियतम ह्रास को देख कर स्वयं धरा पर पधार निज श्री चरण से आज आश्रम को भी अनुगृहीत किया है। हे महर्षियो! आप सब लोचन को सफल बनाने के लिये इस लीला विहारी की लीला दर्शन करें। ऐसा कह कर—आचार्य श्रीत्रिलोचनजीने श्रीदेवतनु ओर ईशारा किया। श्री देवतनुजीने सुमधुर मुस्कान के साथ को देखा और सभी को विश्वस्त बनाने लिये निज सहज रूप में बदल गये। सभीने प्रार्थनाएँ कीं, चरण में मस्तक झुका प्रभुने सभी के नत मस्तकों पर निजकर कमल को फेर परमानन्द शाली बनाया। सभीने देखा कि महर्षि श्री त्रिलोचन देव भी

भगवान् श्रीशंकर के रूप में बदल कर कह रहे हैं कि बस अब लीला का प्रारंभ करना चाहिये। दूसरे ही क्षण ब्रह्मचारी श्रीदेवतनु तथा आचार्य श्रीत्रिलोचन देवजी अपने लौकिक रूप में थे। आचार्य श्री त्रिलोचनजीने कहना प्रारम्भ किया, महर्षियो! आप सबों ने प्रभु का दर्शन करलिया, आप जानते हैं कि ये परमपिता परमेश्वर हैं। समस्त लोक के गुरु हैं तथापि लोक लीला निमित्तक इन्होंने यह शरीर धारण किया और उस लीला में हमकों अपना पार्ट पूरा करना है। अतएव आज मैं इनको वैष्णवमन्त्र से दीक्षित कर लोक में भक्ति प्रधान शुद्ध अद्वैत सिद्धान्त के प्रचार के लिये आदेश दूँगा।

महर्षि श्रीत्रिलोचनाचार्यजी की आज्ञा के अनुसार सभी अत्यावश्यक सामग्री लायी गई। यथा विधि आचार्य श्रीत्रिलोचन देवजी ने ब्रह्मचारी श्रीदेवतनु को श्रीगोपाल अष्टादशाक्षर वैदिक मन्त्र का उपदेश दिया और पञ्चसंस्कार युक्तकर आचार्य श्रीविष्णुस्वामी नाम रखा, जो पूर्व में ही श्रीव्यास भगवानने रख दिया था। एक बार पुनः दिशाओं ने मङ्गलगान किया। नभोमण्डल में देवों ने दुन्दुभियाँ बजायीं। आपाताल समस्त लोक आनन्दविभोर हो उठा। प्रकृति के प्रत्येक कण, भक्ति देवी की जय, आचार्य श्रीविष्णुस्वामी की जय, परात्पर प्रभु की जय आदि दिव्यघोषों से निनादित था। वनवृक्षों में नवीन फूल और मनो-वांछित फल देखने में आते थे। गङ्गा जमुना आदि दिव्य नदियों में मनो-नुकूल दूध, दधि, घृत तथा मधु की धारा प्रवाहित थी। विशाल हिमालय प्राणीमात्र के लिये चिन्तामणि बन गया था। अतिसुखस्पर्शपवन

अलौकिक सौरभ से समस्त भूमण्डल को आनन्दविभोर बनाता था। भक्तजन का अन्तःकरण अतर्कितानन्द में झूलने लगा। प्राणी मात्र के मनः पटल पर एक ऐसी अज्ञात भावना जागृत होती थी मानो इनको कुछ मिल गया हो। समस्त चराचर परमानन्दविभोर था।

अब हमारे चरित्रनायक श्रीदेवतनु का वेष भी परिवर्तित हो गया था। दिव्य शरीर में द्वादश तिलक देदीप्यमान थे। हरिनाम्ाङ्कित पीत कौशेय उपवस्त्र, चन्द्रवत् श्वेत अधोवस्त्र, आकण्ठ लम्ब युगल कण्ठी सुशोभित थी। तमाम समागत महर्षियों के सामने हमारे चरितनायक को आज लौकिक व्यवहारानुकूल लोकतारकपरमवैदिक-अष्टादश गोपाल मन्त्र का उपदेश मिलने वाला है। इसी निमित्त आश्रम में धूम धाम मनया जा रहा है। मुनि वालक तथा बालिकाएँ एक साथ मिलकर सानन्द क्रीड़ा करते दिखते हैं। वसन्तपञ्चमी (श्रीपञ्चमी) होने के कारण आज वसन्तोत्सव भी है इसी शुभः मुहूर्त में देवाधिदेव भगवान् श्रीत्रिलोचन देवने हमारे श्रीआचार्य देव को द्विव्य मन्त्र से दीक्षित बनाया। पुनः आपाताल सत्य लोक में दिव्य शंख तथा दिव्य बाजे गह गहा उठे। समस्त भूमण्डल पर किसलय निचय की वृष्टि देखी गयी। उस पावन कलाप ग्राम में अलौकिक सौरभयुक्त चन्दन की वृष्टि हुई। परमाचार्य श्रीभगवान् श्रीत्रिलोचन देवजी ने यथा विधि उपदेश देकर सब महर्षियों के समक्ष आचार्य श्रीविष्णु स्वामीजी का जयजयकार बोलाकर नाम संस्कार किया। अतः पञ्चसंस्कार सम्पन्न बनकर हमारे चरितनायक पूर्ण आचार्य बन गये थे। आचार्य श्री-

त्रिलोचन देव ने सब को सम्बोधित करके कहा कि हे समागत महर्षियो ! तथा इन्द्रादिक देवताओ !

आज मैं एक बड़े उत्तरदायित्व से मुक्त हो गया हूँ। साक्षात् देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुनारायण समस्त संसार में वास करने वाले परात्पर प्रभु श्रीवासुदेव भगवान् द्वारा संचालित जिस परंपरागत मन्त्र को अपने पास रखकर मैं चिन्तित रहता था, आज के भक्ति विरोधी युग को देखकर भी मुझे चिन्ता होती थी, अब इस मन्त्र की मर्यादा रक्षित तथा संतार पापपरायणजीवों के उद्धार के लिये पराभक्ति की तरह प्रचारित होगी। आज स्वयं प्रभुने मानवीय अवतार ग्रहण कर उस मन्त्र तथा भक्ति प्रचार कार्य को अपनाया है। अतएव अब उत्तरदायित्व समाप्त हो गया तथा जीवों का कल्याण भी निश्चित हो गया। अतएव उत्सवोपरान्त भोजन कर आप सब भी निज निज धामों तथा आश्रमों को जाइये और नित्य प्रभुका स्मरण कर उनके अंश आचार्य श्रीविष्णु स्वामी, लीला विभूति का लीला का अन्तरीक्ष से अवलोकन कीजिये। तदुपरान्त सभा विसर्जित हो गयी।

आचार्य आज्ञा से देश भ्रमण दर्शन

उत्सव समाप्त हो जाने के बाद सभी देव महर्षियों के चले जाने बाद—आचार्य श्रीत्रिलोचन देवजीने एकान्त में बोलाकर आचार्य श्री-चरित्रनायकजी से कहा कि—

भगवन् ! अब तो आप को लोक लीला का अनुसरण करना

चाहिये। मेरी आज्ञा से आपको समस्त भारत का भ्रमण कर परम विशुद्ध शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार पराभक्ति तथा निष्काम सेवा का मधुर उपदेश कर पापोन्मुख जीवों को निजोन्मुख बनाना होगा। अतएव किसी दिन सांसारिक नियम के अनुसार अच्छे मुहूर्त में आप की यहाँ से यात्रा होनी चाहिये।

आचार्य श्रीविष्णु स्वामी ने लोक व्यवहार के अनुसार मस्तक झुका कर आज्ञा स्वीकार की तथा यात्रा के शुभ मुहूर्त का विचार होने लगा। दीक्षित होने के बाद ४ दिन आश्रम में निवास कर माघशुक्ला नौमी को प्रातः यात्रा निश्चित हो गयी। उपस्थित सभी महर्षियों एवं देवोंको वाँच्छित बिनोदानन्द प्रदान कर निश्चित समय पर श्रीआचार्य चरण ने कलाप से यात्रा कर दी। नीचे उतर ने से पूर्व श्री-कैलाशधाम की यात्रा की गयी। जहाँ पर एक निविच्छाय वट वृक्ष के नीचे निजशांकरीमायासमन्वित भगवान् श्री सदाशिव का दर्शन हुआ। आचार्यचरण ने नमष्कार किया। सदाशिव ने सादर स्वागत किया। कुछ देर पारस्परिक बातों के बाद अपनी परिस्थिति को बताकर आगे चले आचार्य देव। अनेक द्विव्य तीर्थों के दर्शन करते गङ्गोत्री जमनोत्री आदि पवित्र तीर्थस्थलों को अतिपवित्र बनाते हुए—मानवं वेष में विराजते अनेक महर्षियों के साथ संतसङ्ग करते श्रीपरमाचार्य श्रीविष्णुस्वामी मायापुरी (हरिद्वार) आगये। वहाँ पहले से ही कुछ महर्षियों का जमघट लगा था। आज एक वर्तमान समय पर सोचने के लिये एक विषयविचारिणीसभा रक्खी गयी थी। सभी समागत महर्षियों के

सामने एक यही प्रश्न था। आज इस घोर कलिकाल में किस तरह भगवती भक्ति का प्रचार किया जाय। अनेक प्रकार से निज सिद्धान्त तथा प्रचारप्रणाली पर व्याख्यान हो रहे थे। ठीक उसी समय आचार्य चरण का दर्शन कर उपस्थित महर्षि समुदाय चकाचौंध में पड़ गये। इस अपूर्व तेज को देखकर सभी के अन्तःकरण में कुछ आशा, कुछ विश्वास, कुछ आश्चर्य—शङ्का और कुछ को स्वयं समाधान हो गया। महर्षियों ने इस सभा का उद्देश्य समझाया। अनेक बातों के बाद सभा विसर्जित कर दी गयी।

सभामें लोकचिन्ता दर्शन

दूसरे दिन प्रातःकाल हमारे चरितनायक ने स्नान नित्य—नैमितिक क्रियाओं को समाप्त कर भोजनोपरान्त मानवीय व्यवहारानुसार आरामकर सांयस्नान कर करीब ४ बजे सभा में उपस्थित हुए। सभी समागत महर्षि पूर्व से ही आकर उपस्थित थे। सभीने खडे हो स्वागत किया। सभी के मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ थीं। अनेक तर्क थे। नाना जिज्ञासा थी। कुछ लोगों ने खडे होकर अपना मत प्रकट किया। तदनन्तर श्रीस्वामीजी ने शान्त गम्भीर मुद्रा से स्थित हो इषद्धास्य किया, मानों सब के अन्तःकरण को निजानन्द धारा से आप्लावित करते हों। जिसके प्रवल प्रवाह में सभी की शंकाएँ, कुतर्कनाएँ अपने आप वह जाती हों। एक समय श्री-आचार्यजी ने सभी उपस्थितजननिचय को देखा, और पुनः कुछ

हँसकर कहा—

उपस्थित सन्त महात्माओ ! एवं सिद्ध महर्षिओ !

आप लोग जितने उपस्थित हैं प्रायः सभी युगद्रष्टा हैं। प दर्शी हैं। आप सबों के सामने कुछ भी कहना उपहासास्पद है तथा आप सबों ने मेरा हार्दिक सत्कार एवं सम्मान किया है। कुछ बो की आज्ञा भी दी है। अतएव मेरा बोलना आज्ञापालन मात्र होगा इसके बाद सभी महात्माओने धन्यबाद गान किया और प्रव चालू हो गया।

आप जानते हैं कालचक्र बड़ी तेजी से चल रहा है। उस अति क्षिप्रधार में समस्त संसार पिशा जा रहा है। प्रभु की इच्छा व्यवस्थित रूप से संसार चले, एतन्निमित मानवता के आदिकाल कृत—युग का प्रादुर्भाव हुआ। जीवमात्र जगन्नायक प्रभु की पवित्रता उपासना में लीन रहते थे। प्रभु भोक्ता थे। जीव भोग्य था। जीव शरीर धारी होने का मुख्य उद्देश्य होता प्रभु की अनन्य सेवा सायुज्य मुक्ति प्राप्त करना। धरा के किसी भी भाग पर पाप, आदि दोष नाम मात्र के लिये भो कहीं पर नहीं थे। प्रा मात्र के अन्तःकरण में परार्थ भावना जागृत थी।

स्वार्थता का जगत् में अत्यन्ताभाव था। इतना होने पर स की गति, अपने अप्रतिहत रूप से चलती रही। त्रेता आया। अधर्म के प्रभाव बढे। सद्धर्म का नाश होने लगा था। परात्प्रभु ने राजराजे

श्रीदाशरथि के रूप में अवतरित होकर रावणादिकों को मार कर संसार में वैदिक मर्यादा की पुनः स्थापना की। अन्त के राजाओं ने भी काल चक्र का अनुसरण किया। द्वापर आया। आनन्दकन्द वृन्दा-वन विहारी का अवतार हुआ। मधुर मनोरम लीलाओं को समाप्त कर आप भी निजनित्यचिन्मय गोलोक में पधार गये।

महात्माओ ! यह साधारणतया भूतकाल की झांकी हुयी। अब वर्तमान पर आजाइये। आज कलिकाल नामक युग आगया है। अनेक युगों से आप देखते—सुनते, तथा अनुभव करते आये हैं कि कलिकाल कितना विकराल युग है। जिसके भीषण प्रभाव से आज के समस्त प्राणी लोकाचार—कुलाचार, एवं सदाचार का त्याग कर मदोन्मत्त स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हैं।

आज हम को यह सोचना है कि इन स्वार्थ परायण जीवों का उद्धार किस प्रकार होगा।

इसी चिन्ता को लेकर मैंने दिव्य महर्षियों के निवासस्थानों की यात्रा की है। मानसरोवर, कैलाश, कलापग्राम आदि स्थानों पर जाकर अभी आया हूँ। वहाँ अनेक दिव्य महर्षियों ने कृपया दर्शन दिया है। साक्षात् भगवान् श्री वेदव्यास अमलात्ममहर्षि—शिरोमणि श्रीशुकदेव एवं साक्षात् भगवान् श्री सदाशिवजी ने ऐसी चिन्ता व्यक्त कर, लोक कल्याण की भावना से मुझे निजी वैदिक अनादि मर्यादा के अनुसार भक्ति प्रधान शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का उपदेश दिया है। जिसके आदि प्रवर्तक जगत्पालक करुणावरुणालय नित्य रमावैकुण्ठनिवासी

भगवान् श्रीमहाविष्णु हैं। आदि प्रभु ने निजधाम में ही इस सिद्धान्त का नित्य कैलाशवासी महारुद्र स्वरूप श्रीसदाशिव को उपदेश दिया था। काल क्रमित परम्परा के अनुसार उसी सिद्धान्त का उपदेश आचार्य श्रीत्रिलोचन के रूप में आकर स्वयं भगवान् श्रीशंकरजी ने मुझे दिया। सत्यतया आज उसके अनुसार लोक कल्याण हो सकता है।

साम्प्रदायिक रहस्य।

इतना प्रवचन के अनन्तर एक महात्माने खड़े हो कर प्रश्न किया। हे प्रभो आपकी वाणी पर हम सबों को पूर्ण विश्वास है। आपकी कुशाग्रबुद्धि तथा शारीरिक तेज के कारण हम सब पूर्ण प्रभावित हैं। आपने अपने प्रवचन में सेवा प्रधान शुद्धाद्वैत की बात की जरा उसकी विशेष व्याख्या कीजिये जिससे हमारे अन्तःकरण में कुछ भी सन्देह न रहे।

इतनी बात सुनकर श्रीआचार्यचरण का पवित्र मुखमण्डल इस हास्य से कमलवत् खिल गया। जगदभयदायी दक्षिण करकमल उठाकर कहने लगे। प्रिय महात्माओ! इस प्रश्न को सुनकर हम अत्यानन्दित हैं अब आप सब दत्तावधानतया सुने। हमारे परंपरागत सिद्धान्त का नाम है शुद्धाद्वैत जो वैदिक सिद्धान्त है। अब हम आप सबों के लिये इस पद के अर्थ पर विचार करते हैं। इस पद में दो शब्द हैं शुद्ध—और अद्वैत इन दोनों मिश्रण पर सामासिक तौरपर विचार किया जायेगा। आज व्याकरण के अन्दर ६ प्रकार के

समास हैं। उनमें कर्मधारय के अनुसार इन पदों का मिश्रण किया गया है। **शुद्धम् च तत् अद्वैतम् च इति शुद्धाद्वैतम्**—अर्थात् शुद्ध सदा निर्विकार रहने वाला जो अद्वैत है। उसी को शुद्धाद्वैत कहते हैं। वह संसार का कारण समस्त गुणों से युक्त रहता है। उसमें कभी भी किसी धर्म का लोप या ह्रास नहीं होता है। वेद कथित समस्तधर्म उस परमात्मा में नित्य विद्यमान रहते हैं। जैसे ब्रह्मसूत्र में भगवान् श्रीवेदव्यासजी ने कहा है। **अवरद्रव्ये द्रष्टव्या सर्वत्र सर्वधर्मोपपत्तेश्च**, कारण कि वह सर्व समर्थ है और भी **सर्वोपेता-चतद्दर्शनात्**। सः परमेश्वर—**सर्वाभिः शक्तिभिः उपेत** है वह जगत् का रचयिता सर्वशक्तियों से युक्त है, कारण कि आरण्यक ब्राह्मण में लिखा है। (**यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सर्वकर्ता सर्वकामः** इत्यादि छां-३।१४।२ और भी अनेक प्रमाण हैं जिससे यह सिद्ध है। परमात्मा सर्वशक्तिमान है और वे शक्तियां औपचारिक अथवा औपाधिक हो नहीं सकतीं, कारण कि वह परम शुद्ध है अद्वैत स्वरूप है। उसमें उपचार तथा उपाधि आदि कृत्रिम वस्तुओं का रहना नितान्त असम्भव है। वे शक्तियां नित्य हैं। जैसे कि श्रुति भी कहती है। **परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।** श्वे—६।८, वही परमात्मा ब्रह्म है। विश्व के अणु अणु में व्यापक है। देशकाल, वस्तु तथा स्वरूप, इन चारों की मर्यादा से रहित है। यह सजातीय विजातीय तथा स्वगत भेदों से रहित है। जीव तथा ब्रह्म ये सजातीय हैं। जड़ और ब्रह्म ये विजातीय हैं और अन्तर्यामित्वेन परमात्मा स्वगत भी है। इन तीनों में परमात्मा ब्रह्म व्यापक है। जैसे

श्रीव्यासजी ने कहा भी है कि **तत्तु समन्वयात्।**

उसी ब्रह्म में सत्य दया शौच आदि अनन्तगुण स्थायीरूप से निवास करते हैं। इन्हीं परमदिव्य गुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा सगुण भी कहा जाता है। ब्रह्म माया के आधीन नहीं रहता अपितु माया उसके आधीन होकर रहती है। वह केवल नहीं अपितु शुद्ध अद्वैत है। सर्वरूप है। वही परमेश्वर जीवमात्र के लिये परम उपास्य है। समस्त मनोयोग से परमसेव्य है सच्चिदानन्द निर्गुण अविकृत रूपेण ब्रह्म है। कर्ता है, भो है, इस संसार में जो कुछ भी नेत्र का विषय होता है वह परमात्मा का स्वरूप मात्र है। वही ब्रह्म है, ईश्वर परमात्मा है। ज का कारण भी, जगत रूप कार्य भी है। जगत को पवित्र करने वा भी है और जगत का आधार भी है। जीव का अधिष्ठाता है त्रिवृत्त का कर्ता भी है, नाम रूप और विकार का करने वाला है। सर्वाभिन्न उपादान तथा निमित्त कारण भी है।

निराकार है, लौकिक प्राकृत आकृति रहित भी है। उसी प्र साकार, आनन्दाकार रसाकार भी है।

इसके बाद एक दूसरे महात्मा ने उठ कर प्रश्न कि स्वामिन्! आपने कहा कि परमात्मा निराकार भी है साकार भी है ये दोनों विरुद्ध धर्म उसमें कैसे रहते हैं? इस को जरा स्पष्ट क बताइये श्री स्वामीजी ने थोड़ा हँस कर कहना प्रारम्भ किया।

प्रिय महात्माओ! साकार शब्द से यह नहीं समझना चाहिये

हमारे आपके पार्थिव शरीर में जैसे शरीर और जीवात्मा, ये दो तत्व हैं उसी प्रकार उस प्रभु की शरीर में दो तत्त्व है। अथवा जैसे हमारा शरीर पांचभौतिक तथा जरा व्याधिग्रस्त है उसी तरह परमात्मा का शरीर भी है। ह तो समस्त शरीर से आनन्दमय है, रसमय है—उसके दस इन्द्रियां भी आनन्दमय हैं। परिपूर्ण रसमय है। वह परमात्मा अपने समस्त शरीर से समस्त विश्व को आच्छादित करके बैठा है। उसमें सब धर्म हैं-परन्तु वे-औपाधिक तथा औपचारिक न होकर नित्य तथा स्वाभाविक हैं। ऐसा सर्वगुण विशिष्ट परमात्मा स्वयं भक्तहित के लिये नाना शरीरों को धारण करने वाले अतिरम्य प्राणी मात्र मनोहर सुललित लीला विहारी अनन्त गुण गणार्णव अकारण करुणा है। प्रभु की सर्वतो भाव से उपासना, अनन्य भाव से सेवा, यही प्रभु की भक्ति है। कारण कि परात्पर प्रभु केवल अनन्य भक्ति से ही पाये जाते हैं और उसी पराभक्ति के जरिये प्रभु से पोषण प्राप्त करना जीवमात्र का परम कर्त्तव्य है।

प्रिय महात्माओ! अब आप सब मेरी बातों को अच्छी तरह समझ गये होंगे। इसी को शुद्धाद्वैत अर्थात भगवान् श्रीव्यास का प्रधान मार्ग कहते हैं, और आज की परिस्थिति के अनुसार यही प्रभु प्राप्ति का उत्तम उपाय है। इतना कह कर मैं अपना प्रवचन समाप्त करता हूँ। आप सबों का जो विचार हो वैसा करें। इसके बाद सभी महात्माओं ने सहर्ष श्री आचार्य चरण के पवित्रोपदेश को स्वीकार कर पवित्र शुद्धाद्वैत-भक्ति प्रधान मार्ग को अपनाया।

प्रयाण दर्शन

अब श्रीविष्णुस्वामीजी की हरिद्वार में बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी सारे नगर में प्रसिद्धि हो गयी कि उत्तराखण्ड से एक सिद्ध महात्मा पधारे हैं। बड़े उच्च कोटि के विद्वान तथा सिद्ध पुरुष हैं। प्रतिदिन हजारों महात्मा तथा साधारण मानव, दर्शन के लिये आते हैं तथा शङ्का-समाधान शास्त्रार्थ आदि द्वारा अपने मन को सन्तुष्ट पाकर शिष्य आदि भी बन जाते हैं। इस तरह हरिद्वार में बड़े जोरों से भक्ति का प्रचार होता रहा। किन्तु हमारे श्रीस्वामीजी इतने से सन्तुष्ट न थे उनको तो समस्त भारत की यात्रा करनी थी, समस्त भारत में पराभक्ति का प्रचार करना था। अतः एक दिन श्रीस्वामीजी ने सभी महात्माओं तथा भक्तों के सामने अपनी यात्रा की इच्छा व्यक्त की। उन्हों ने सभी को समझाकर कहा कि महात्माओ! इस समय कुरुक्षेत्र जाना चाहिए। सब को दुःख तो हुआ किन्तु श्रीस्वामीजी के महान् उद्देश्य के सामने सब को झुकना पड़ा और सहर्ष अनुमति देदी। बडे घूम-धाम के साथ स्वामीजी की शोभा यात्रा निकली निर्दिष्ट मार्ग पर कुछ दूर तक सभी नागरिक श्रीस्वामीजी को पहुँचा के को गये और अनेक तो सर्वदा के लिये श्रीस्वामीजी के साथ होगये श्रीस्वामीजी ने हरिद्वार से कुरुक्षेत्र की यात्रा निश्चित की। मार्ग में अनेक प्रख्यात नगर मिले, अनेक जगह उनका भव्य स्वागत किया गया। अनेक विद्वान् तथा महात्मा भी मिले, बात चीत तथा शास्त्रार्थ भी हुए। सभी जगह श्रीस्वामीजी का विजय हुआ। अनेकों ने स्वामी

के सर्वगम्यमार्ग को अपनाया। थोडे ही दिनों में कुरुक्षेत्र में भी आगये। स्वामीजीने वहाँ पर पडाव डाल दिया। पड़ाव की सभी सुविधाओं का प्रबन्ध किया गया। पहुँचने के एक दिन बाद दूसरे दिन एक विशाल सभा हुयी। श्रीस्वामीजी ने कुरुक्षेत्र के माहात्म्य पर प्रवचन किया।

प्रवचन में उन्होंने कहा कि—

हे भगवत् भक्त महात्माओ! तथा सद्गृहस्थो! बडे हर्ष की बात है कि आज हम इस क्षेत्र में उपस्थित हुए हैं। सत्यतया इस क्षेत्र का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं अतिपवित्र है। यह वही भूमि है जिस पर अन्तः सलिला भगवती सरस्वतीतट निवासी महर्षियो ने सर्व प्रथम वेद की ऋचाओं का मधुरस्वर में गान किया था। मानवता के आदि काल में समय-समय पर ब्रह्मा तथा अनेक देवताओंने यज्ञ कर के इस भूमि की महत्ता को अधिक बढ़ाया है और उनको सिद्धियाँ प्राप्त हुयीं। इसी भूमि के प्रभाव से विश्वामित्र तथा वशिष्ठ आदि अनेक महर्षियो को दिव्यज्ञान प्राप्त हुआ। सृष्टि के आदि काल में महाराज श्री कुरु ने अपने लिये इसी भूमि को कृष्यभूमि बनाया था और इसी भूमि में बीजस्वरूप अपने समस्त शरीर को भगवान् श्रीविष्णु द्वारा गड़वा दिया था। अतएव इस भूमि का नाम कुरुक्षेत्र है। द्वापर के अन्त में अभी थोड़े दिनों की बात है। यहीं पर महाभारत नामक कौरवों तथा पाण्डवों का महान् नर विनाशकारी संग्राम हुआ था। जिसमें अनादि पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने निज अनन्य भक्त श्रीअर्जुन

को गीता का उपदेश दिया था। खासकर कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण तथा सोमवती अमावस्या के पर्व पर स्नान मज्जनादि करने से मानव को देवत्व मिलता है।

आज भी इस क्षेत्र में पवित्रता के द्योतक प्राचीन स्मृति चिन्ह विद्यमान है। जैसे कि कुरुक्षेत्र अर्थात् श्रीकुरु महाराज का क्षेत्र (खेत) है। काम्यक आदि सात पवित्र बन हैं, जिनके दर्शन मात्र से मानव कृतार्थ हो जाता है। सरस्वती, वैतरणी आदि सात पवित्र नदियाँ हैं, जो स्नान के बाद सशरीर स्वर्गादिक लोक को भेजती हैं। ब्रह्म सरोवर आदि ४ सरोवर हैं। चन्द्र, विष्णु आदि सात कूप हैं, जो देवता की तरह फल देने वाले हैं और भी अनेक तीर्थ हैं, जिनके दर्शन से मानव मात्र के जन्म जमान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं। कुरुक्षेत्र का माहात्म्य महान् है। सो इसका पूरा विवरण सतपथ ब्राह्मण, बृहज्जाबालोपनिषद् यजुर्वेद तथा सभी पुराणों में सविस्तर वर्णित है।

प्रिय महात्माओ हमारे अहो भाग्य से समीप में सोमवती अमावश्या तथा सूर्यग्रहण भी है। अतएव आज विश्राम करें, कल्ह पर्व स्नान करने के बाद निकलेंगे और सभी तीर्थों का दर्शन करेंगे। इसके बाद सभा विसर्जित हो गयी। उपस्थित सभी जनता स्वामीजी के गुणों का गान करते, निज-निज स्थान तथा घर पर चले गये।

आज सोमवती तथा सूर्यग्रहण होने के कारण इस भू भाग पर एक बहुत बड़ा जन समाज उपस्थित हुआ है। समस्त कुरुक्षेत्र में

यत्र तत्र बडे बडे उत्सवों की योजना की गयी। कहीं पर हवन, कहीं पर भगवन्नाम कीर्तन, कहीं वेदऋचाओं का गान, कहीं भजन-सतसंग तथा व्याख्यान आदि चल रहे थे। हमारे चरितनायक भी उत्सव में शामिल थे। एक बडे अग्निकुण्ड में अनेक महर्षि आहुतियाँ दे रहे थे, यथा समय आदि मध्य तथा मोक्ष स्नान के बाद फलादिक भोजन की व्यवस्था की गयी। विश्राम के बाद पुनः एक सभा का आयोजन किया गया। एक बहुत बडे पण्डाल लाखों जनता के बीच श्रीविष्णु स्वामीने ग्रहण सोमवती माहात्म्य पर प्रवचन किया। सभी श्रोता लोग सानन्द प्रवचन श्रवण कर विश्राम करने गये। तदनन्तर श्री स्वामीजी ने भी विश्राम किया।

दूसरे दिन मेला खतम हो गया। साधारण जन-समाज चला गया। श्रीस्वामीजी सभी अवान्तर तीर्थों के दर्शन करने निकल पडे। साथ में अनेक महात्मा भी थे। प्रातः काल से सायं तक प्रायः मुख्य तीर्थों के दर्शन करने के बाद स्वामीजी ने भोजन और विश्राम किया। करीब एक मास तक कुरुक्षेत्र में निवास करते रहे। अब श्री स्वामीजी ने विचार किया कि यहाँ से यात्रा करनी चाहिये। इस यात्रा में श्रीव्रजभूमि भी निटक में थी। अतएव श्रीस्वामीजी सर्व प्रथम इन्द्रप्रस्थ होकर वृन्दावन जाने का निश्चय किया और निश्चित तिथि पर यात्रा प्रारम्भ कर दी गयी।

मधु पुरी में आचार्यश्री दर्शन

आज की तरह पूर्वकाल की यात्रा सर्वसुलभ नहीं थी। साफ सुथे मार्ग नहीं थे। रेल गाड़ी, मोटर आदि की व्यवस्था नहीं थी। हजारों की यात्रा पग से ही निष्पन्न होती थी। अपनी निश्चित तिथि पर श्रीस्वामीजी चल पडे। अब तो उनके साथ पर्याप्त महात्मा भी थे, कितने शिष्य भी थे। एक पूरा शिशाला साथ में रहता था। धीरे-धीरे आचार्य श्रीव्रजकिशोर की मधुर लीलाओं का स्मरण करते हुये व्रजेश की अवतार भूमि में पहुँचे। मार्ग में कितने ही राजालोग मिले। सभी ने आचार्यश्री का स्वागत सम्मान किया। उनकी शिष्यता स्वीकार की। इस तरह कितने दिनों के बाद आचार्य चरण ने पावनी भूमि पर स्वचिन्ह अंकित किया। व्रजनिवास करने वाले सन्त महात्माओं के आनन्द का पार न रहा। उस समय श्रीमधुपुरी में महाराज श्रीशिशु- नाग का शासन था। जब उनको आचार्यचरण का आगमन ज्ञात हुआ अत्यधिक प्रसन्न हुए। समस्त राजोपकरण से श्रीआचार्यचरण का स्वागत किया। बडे धूमधाम के साथ आचार्यचरण की शोभा- यात्रा निकली। राजसाही सबारी के साथ श्रीस्वामीजी नगर में लाये गये। समस्त मथुरा के लोग धन्य-धन्य हो गये। महाराज श्रीशिशु- नाग ने अनन्य श्रद्धा तथा आन्तरिक भक्ति के साथ आचार्य प्रवर की सेवा की। व्रजभूमि का दर्शन कर श्री स्वामीजी की आत्मा नाचने लगयी थी। काफी दिनों तक आपने व्रजभूमि में निवास किया। नित्य श्रीविहारीजी के दर्शन करने जाया करते थे। व्रजभूमि में आने

ाद ऐसे तो श्री आचार्यचरण का मन पूर्ण प्रसन्न रहता था। ी कभी-कभी कुछ उन्मना जैसा हो जाया करते थे। न मालूम ौनसा विचार उनके अन्तः करण में कभी कभी आ जाया करता था और उनके अब्धिवत् शान्त गम्भीर तथा परमानन्दमय अन्तः करण को भी चंचल बना देता था। सम्पूर्ण ऐश्वर्यमय राजप्रासाद में आपका उतारा था। साथ अनेकों महात्माओं की जमायत थी। नित्य प्रति सत्संग होता रहता था। कभी आये विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ भी होता था। सेवा में स्वयं राजा के साथ अनेक राज पुरुष उपस्थित रहते थे। अन्तः करण में अभिलाषा जागृत होने से पूर्व ही आवश्यक चीज़ें उपस्थित हो जाती थीं। सब कुछ होने पर भी प्रतिदिन श्रीआचार्यचरण की अस्थिरता बढ़ने लगी। अपनी इच्छा के अनुसार आपने गोवर्धन, कामवन, नन्दग्राम, बरशाना आदि भगवच्चरणांकित स्थानों को परिभ्रमण भी किया। तो भी आपको आन्तरिक शान्ति का अनुभव नहीं हुआ। प्रतिदिन आपकी अवस्था ऐसी होने लगी जैसे कोई चीज़ खो गयो हो। किसी भूली बात को स्मृति में लाने का प्रयत्न करते हों। जब तब आप बिना किसी से कुछ कहे रात अथवा दिन को अपनी इच्छा से कहीं चले जाते थे। खोज करने पर भी नहीं मिलते थे। जब आनेकी इच्छा होती तो चले आते थे। इसी तरह आप का क्रम चलता था। उसी क्रम के अनुसार एक दिन पुनः तीन बजे ही आप उठे और वंशीवट के पास जाकर बैठ गये। विचारमग्न थे, बाह्य दुनियाँ का किञ्चित्मात्र भी भान न रहा। सम्भवः एक घण्टा इसी तरह बीता।

चार बजे प्रातः काल का रमणीय समय था। प्राची का ललाम ललाट अखण्ड सौभाग्य सिन्दूर से विभूषित हो रहा था। निर्मल आकाश में तारकाएँ विलुप्त प्राय हो रही थीं। निशाकर निस्तेज था परिमल पवन प्रणय संकेत कर रहा था। कलिकाएँ अतशाकर करवट बदल रही थीं। द्विरेफ परिवार अर्धनिद्रित था। दिग्वधुयें प्रसन्न थीं। इस समय हमारे चरितनायक समाधिष्ट थे।

सहसा निरभ्रव्योम कुछ साभ्र बना। आकाश में मेघ घटाएँ प्रतीत होने लगीं। प्रकृति का कनकमयूर नृत्य के लिये पर फैलाने लगा। घनघोर गर्जन के साथ विष्णुपद में एक विद्युत का प्रकाश हुआ। साथ ही मृदङ्ग कंकण ध्वनि के साथ मधुर मनोहर परमानन्दमयी मुरली स्वर भी सुनाई पड़ने लगा। अभी तक प्रकृति के साथ ही श्रीस्वामीजी जाग गये थे। जब उनके नेत्र के पलक खुले तब उन्होंने देखा कि सामने वंशीवट की छाया में व्रजेश रासेश बने बैठे हैं। चारों ओर सुमधुर लावण्यमयी कोमलांगी व्रजवधूटियाँ नाच रही हैं।

किसी के हाथ में मृदङ्ग है तो, किसी के हाथ में झांझ करताल आदि वाद्य हैं। कोई सितार विणा बजा रही है। देवांगना कल्प अनिन्दनीय सौन्दर्य सम्पन्न सभी के सभी नृत्य पर हैं। सभी के मध्य में साक्षात परमानन्द विहारी, लीलाधाम मनोहर रसिक शिरोमणि मोरमुकुटयुक्त, पीतपट सुशोभित त्रिभंगी ललित भगवान रासेश चरणाग्र पर खड़े त्रिभुवन मोहनी मुरली बजा रहे हैं।

अब क्या था हमारे श्री आचार्यजी का अन्तः करण भी रसराज के रास-रसमें सराबोर होकर नाच उठा। सहसा उन्होंने सोचा कि मैं दौड़ कर आनन्द घन के चरणारविन्द को पकड़ लूँ। वे दौड़ पडे, ज्यों ही आप परात्पर प्रभु के चरण के पास आये त्यों ही रासलीला खतम हो गयी। गोपिकाएँ अलक्ष्य गति से अन्तर्हित हो गयीं अब वहाँ पर दो ही रह गये। एक शेष और एक शेषी।

आनन्दकन्द श्रीनन्दनन्दनने चरणस्थ श्री आचार्यरचण को सुमधुर मुस्कान के साथ निजकरकमलों से उठा लिया और कहा। विष्णो! उठो! तुमको तो इतना अधीर न होना चाहिये। कारण कि तुम मदंशसम्भूत हो-अब वैष्णवाचार्य हो गये हो, आज के नास्तिक संसार में पराभक्ति के प्रचार के लिये मैंने ही आपको स्वावतारभूत भेजा है। अब कार्य करने का समय है। अतएव अविलम्ब कार्य में संलग्न हो जाना चाहिये। इतना कह कर गोपिकेश ने आपके मुखारविन्द को ऊपर उठाया आप आनन्दविभोर थे वाणी बन्द थी। आँखें सजलकमल पंखड़ियों की तरह छल छला रही थीं। प्रभु ने उठकर अन्तःकरण से लगाया। उस के बाद श्री स्वामीजी ने धीरे से कहा, प्रभो! हमारा मनोरथ सफल हो गया। अब जो आपकी आज्ञा होगी उसको करूँगा। तदनन्तर आपने परेश की स्तुति की चरणो में नमस्कार करने झुके और उन्होंने मुख को ऊपर उठाया तब तक लीलाविहारी पधार चुके थे।

सौरोजीमें आचार्यश्री दर्शन

आचार्यश्री जब वंशीवट से चले तब तरुणारुण प्रकाश से आकाश रक्तिम हो चुका था। आपने वहीं व्रजकी पञ्च कोशी प्रदक्षिणा की और करीब आठ बजे दिन तक घूमते—घूमते महाराज श्रीशिशुनाग के महल पर आये। सभी ने आपका दर्शन किया। आज आपका मुखमण्डल प्रसन्न एवं प्रकाशमय था। अन्तः करण शान्त एवं गम्भीर था। रोज की अपेक्षा आज आप अधिक आनन्द विभोर थे। सपत्नीक राजा ने दरवाजे पर आकर आपका स्वागत किया। समस्त सन्त मण्डली आपका दर्शन करके आनन्द का अनुभव करने लगे। आप आकर निजासन विराजे। यथा समय भोग लगा। स्वामीजी तथा समस्त सन्तों ने प्रभु प्रसाद का सेवन किया। मध्याह्न आरम्भ होने के बाद श्रीस्वामीजी ने राजा को बुलाया और व्रज चौरासी परिक्रमा करने के बाद अयोध्या जाने की बात कही। यद्यपि राजा को यह बात रुचिकर नहीं लगी तथापि उनकी आज्ञा को उलङ्घन करने की हिम्मत भी न पड़ी। अपने प्रोग्राम के अनुसार श्रीआचार्य देव ने सन्त मण्डल के साथ व्रज—चौरासी की परिक्रमा के लिये प्रयाण किया। गोवर्धन, कामवन, नन्दगाम, वरशाना आदि सभी भगवच्चरणांकित भूमि का दर्शन कर अतिशीघ्र आप मधुपुरी आगये और प्रयाण के लिये तैयारी होने लगी।

जब राजा को यह निश्चय हो गया कि अब श्रीस्वामीजी किसी तरह नहीं रूक सकते हैं तब उसने एक ज्योतिषीजी को बुला कर शुभ

तिथि के दिन अच्छे मुहूर्त में एक वृहत्त भण्डारा दिया। व्रजचौरासी के सभी सज्जन पधारे थे। ब्राह्मण मण्डली भी उपस्थित थी। सभी के सामने राजा ने सपरिवार श्रीआचार्यचरण की शिष्यता स्वीकार की तथा भक्तिप्रचार की प्रतिज्ञा ली। बाद में आचार्य चरण ने मधुपुरी से श्रीअवध के लिये प्रयाण कर दिया।

व्रजभूमि से चलकर आपने शूकरक्षेत्र (सौरों) में प्रवेश किया। वहाँ पर आपने भगवान् श्री आदि वाराह का दर्शन किया।

शूकरक्षेत्र ब्राह्मणों का समुदाय था। वे बडे शास्त्र निष्णात थे। उनमें एक काशीनाथ भट्ट नामक ब्राह्मण थे। जो गाँव में सबसे अधिक विद्वान् थे। आस पास के गाँवों में उनका अच्छा प्रभाव था। अपनी अपूर्व विद्वता के वे काफी ख्यातनामा थे। उनको जब श्रीस्वामीजी का आगमन ज्ञात हुआ। जब श्रीआचार्यचरण मधुपुरी में थे, तभी से उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। अतएव पण्डित श्रीकाशीनाथ को श्रीआचार्यचरण की ख्याति अच्छी न लगी विद्वत्ता का अभिमान था। इसी लिये उन्होंने स्वामीजी के विरुद्ध ब्राह्मणों को भड़काया और शास्त्रार्थ का आयोजन बनाया। श्रीस्वामीजी को तो पहले से ऐसी योजना नहीं थी। जब उनको इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने ब्राह्मणों को थोड़ा हँस कर कहा कि भाइयो इसमें शास्त्रार्थ की कौनसी बात है। यदि आप को हमारा सिद्धान्त अच्छा नहीं लगता तो आप लोग अपना सिद्धान्त बतायें। यदि वह

शास्त्र सिद्ध होगा तो मैं उसको मान लूँगा। यदि मेरी बात शास्त्र सिद्ध हो तो आप मान लें।

जब यह नियम स्वीकार हो गया तो तब एक विशाल सभा का आयोजन किया गया जिसमें प्रायः सभी नागरिक उपस्थित थे। सभा दो भागों में विभाजित थी। अब मध्यस्थ का विचार किया गया कि मध्यस्थ कौन हो। श्रीस्वामीजी ने हँस कर कहा कि जब परात्पर प्रभु श्री आदि बराह के धाम में बैठे हैं। सभा भी प्रभु के मन्दिर में ही है। अतएव हमारे मध्यस्थ भी बराह भगवान् ही रहेंगे। इस बात को सुन कर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। कितने तो श्रीस्वामी की श्रद्धा की हँसी भी उड़ाने लगे, परन्तु उनमें पण्डित श्रीकाशीनाथ जो सबसे अधिक विद्वान् थे, उन्होंने सभा में बड़ी नम्रता के साथ कहा कि यदि आपका इतना विश्वास है तो मैं प्रश्न करता हूँ आप उत्तर दीजिये। उत्तर के बाद यदि बराह भगवान् आप के उत्तर से सन्तुष्ट होकर अपना बरद कर कमल ऊपर उठा देंगे तो हमारा शास्त्रार्थ समाप्त हो जायेगा और हम आपकी शिष्यता स्वीकार कर लेंगे। श्रीआचार्य देव ने स्वीकृति देकर प्रश्न करने की आज्ञा प्रदान की तब पण्डित श्रीकाशीप्रसादजी ने प्रश्न किया स्वामिन्! प्रायः आजकल ब्रह्म के विषय में ही अनेक बाद ख़डे हो रहे हैं। सांख्यादिक शास्त्रों का भी मतैक्य नहीं है। अतएव आपका स्वरूप कैसा है, अपनी बुद्धि के अनुसार बतायें। इस प्रश्न को सुन कर श्रीस्वामीजी थोड़ा हँसे और गम्भीर होकर उत्तर देने लगे।

श्रीदाशरथि के रूप में अवतरित होकर रावणादिकों को मार कर संसार में वैदिक मर्यादा की पुनः स्थापना की। अन्त के राजाओं ने भी काल चक्र का अनुसरण किया। द्वापर आया। आनन्दकन्द वृन्दावन विहारी का अवतार हुआ। मधुर मनोरम लीलाओं को समाप्त कर आप भी निजनित्यचिन्मय गोलोक में पधार गये।

महात्माओ! यह साधारणतया भूतकाल की झांकी हुयी। अब वर्तमान पर आजाइये। आज कलिकाल नामक युग आगया है। अनेक युगों से आप देखते—सुनते, तथा अनुभव करते आये हैं कि कलिकाल कितना विकराल युग है। जिसके भीषण प्रभाव से आज के समस्त प्राणी लोकाचार—कुलाचार, एवं सदाचार का त्याग कर मदोन्मत्त स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हैं।

आज हम को यह सोचना है कि इन स्वार्थ परायण जीवों का उद्धार किस प्रकार होगा।

इसी चिन्ता को लेकर मैंने दिव्य महर्षियों के निवासस्थानों की यात्रा की है। मानसरोवर, कैलाश, कलापग्राम आदि स्थानों पर जाकर अभी आया हूँ। वहाँ अनेक दिव्य महर्षियों ने कृपया दर्शन दिया है। साक्षात् भगवान् श्री वेदव्यास अमलात्ममहर्षि—शिरोमणि श्रीशुकदेव एवं साक्षात् भगवान् श्री सदाशिवजी ने ऐसी चिन्ता व्यक्त कर, लोक कल्याण की भावना से मुझे निजी वैदिक अनादि मर्यादा के अनुसार भक्ति प्रधान शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का उपदेश दिया है। जिसके आदि प्रवर्तक जगत्पालक करुणावरुणालय नित्य रमावैकुण्ठनिवासी

भगवान् श्रीमहाविष्णु हैं। आदि प्रभु ने निजधाम में ही इस सिद्धान्त का नित्य कैलाशवासी महारुद्र स्वरूप श्रीसदाशिव को उपदेश दिया था। काल क्रमित परम्परा के अनुसार उसी सिद्धान्त का उपदेश आचार्य श्रीत्रिलोचन के रूप में आकर स्वयं भगवान् श्रीशंकरजी ने मुझे दिया। सत्यतया आज उसके अनुसार लोक कल्याण हो सकता है।

साम्प्रदायिक रहस्य।

इतना प्रवचन के अनन्तर एक महात्माने खड़े हो कर प्रश्न किया। हे प्रभो आपकी वाणी पर हम सबों को पूर्ण विश्वास है। आपकी कुशाग्रबुद्धि तथा शारीरिक तेज के कारण हम सब पूर्ण प्रभावित हैं। आपने अपने प्रवचन में सेवा प्रधान शुद्धाद्वैत की बात की जरा उसकी विशेष व्याख्या कीजिये जिससे हमारे अन्तःकरण में कुछ भी सन्देह न रहे।

इतनी बात सुनकर श्रीआचार्यचरण का पवित्र मुखमण्डल इस हास्य से कमलवत् खिल गया। जगदभयदायी दक्षिण करकमल उठाकर कहने लगे। प्रिय महात्माओ ! इस प्रश्न को सुनकर हम अत्यानन्दित हैं अब आप सब दतावधानतया सुने। हमारे परंपरागत सिद्धान्त का नाम है शुद्धाद्वैत जो वैदिक सिद्धान्त है। अब हम आप सबों के लिये इस पद के अर्थ पर विचार करते हैं। इस पद में दो शब्द हैं शुद्ध—और अद्वैत इन दोनों मिश्रण पर सामासिक तौरपर विचार किया जायेगा। आज व्याकरण के अन्दर ६ प्रकार के

समास हैं। उनमें कर्मधारय के अनुसार इन पदों का मिश्रण किया गया है। शुद्धम् च तत् अद्वैतम् च इति शुद्धाद्वैतम्—अर्थात् शुद्ध सदा निर्विकार रहने वाला जो अद्वैत है। उसी को शुद्धाद्वैत कहते हैं। वह संसार का कारण समस्त गुणों से युक्त रहता है। उसमें कभी भी किसी धर्म का लोप या ह्रास नहीं होता है। वेद कथित समस्तधर्म उस परमात्मा में नित्य विद्यमान रहते हैं। जैसे ब्रह्मसूत्र में भगवान् श्रीवेदव्यासजी ने कहा है। **अवरुद्ध्ये द्रष्टव्या सर्वत्र सर्वधर्मोपपत्तेश्च**, कारण कि वह सर्व समर्थ है और भी **सर्वोपेता-तद्दर्शनात्**। सः परमेश्वर—**सर्वाभिः शक्तिभिः उपेत ह** वह जगत् का रचयिता सर्वशक्तियों से युक्त है, कारण कि आरण्यक ब्राह्मण में लिखा है। (**यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सर्वकर्ता सर्वकामः इत्यादि** छां-३।१४।२ और भी अनेक प्रमाण हैं जिससे यह सिद्ध है। परमात्मा सर्वशक्तिमान है और वे शक्तियां औपचारिक अथवा औपाधिक हो नहीं सकतीं, कारण कि वह परम शुद्ध है अद्वैत स्वरूप है। उसमें उपचार तथा उपाधि आदि कृत्रिम वस्तुओं का रहना नितान्त असम्भव है। वे शक्तियां नित्य हैं। जैसे कि श्रुति भी कहती है। **परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। श्वे–** ६-८, वही परमात्मा ब्रह्म है। विश्व के अणु अणु में व्यापक है। देशकाल, वस्तु तथा स्वरूप, इन चारों की मर्यादा से रहित है। यह सजातीय विजातीय तथा स्वगत भेदों से रहित है। जीव तथा ब्रह्म ये सजातीय हैं। जड़ और ब्रह्म ये विजातीय हैं और अन्तर्यामित्वेन परमात्मा स्वगत भी है। इन तीनों में परमात्मा ब्रह्म व्यापक है। जैसे

श्रीव्यासजी ने कहा भी है कि तत्तु समन्वयात्।

उसी ब्रह्म में सत्य दया शौच आदि अनन्तगुण स्थायी… निवास करते हैं। इन्हीं परमदिव्य गुणों से युक्त होने के कारण प… मात्मा सगुण भी कहा जाता है। ब्रह्म माया के आधीन … रहता अपितु माया उसके आधीन होकर रहती है। वह केवल … नहीं अपितु शुद्ध अद्वैत है। सर्वरूप है। वही परमेश्वर जीवमात्र … लिये परम उपास्य है। समस्त मनोयोग से परमसेव्य है … सच्चिदानन्द निर्गुण अविकृत रूपेण ब्रह्म है। कर्ता है, भो… है, इस संसार में जो कुछ भी नेत्र का विषय होता है वह … मात्मा का स्वरूप मात्र है। वही ब्रह्म है, ईश्वर परमात्मा है। ज… का कारण भी, जगत रूप कार्य भी है। जगत को पवित्र करने वा… भी है और जगत का आधार भी है। जीव का अधिष्ठाता है … त्रिवृत्त का कर्ता भी है, नाम रूप और विकार का करने वाला … है। सर्वाभिन्न उपादान तथा निमित्त कारण भी है।

निराकार है, लौकिक प्राकृत आकृति रहित भी है। उसी प्र… साकार, आनन्दाकार रसाकार भी है।

इसके बाद एक दूसरे महात्मा ने उठ कर प्रश्न किया … स्वामिन्! आपने कहा कि परमात्मा निराकार भी है साकार भी है … ये दोनों विरुद्ध धर्म उसमें कैसे रहते हैं? इस को जरा स्पष्ट करि… बताइये श्री स्वामीजी ने थोड़ा हँस कर कहना प्रारम्भ किया।

प्रिय महात्माओ! साकार शब्द से यह नहीं समझना चाहिये …

… आपके पार्थिव शरीर में जैसे शरीर और जीवात्मा, ये दो तत्व हैं … प्रकार उस प्रभु की शरीर में दो तत्त्व है। अथवा जैसे हमारा शरीर … भौतिक तथा जरा व्याधिग्रस्त है उसी तरह परमात्मा का शरीर भी है। … तो समस्त शरीर से आनन्दमय है, रसमय है—उसके दस इन्द्रियां … आनन्दमय हैं। परिपूर्ण रसमय है। वह परमात्मा अपने समस्त … से समस्त विश्व को आच्छादित करके बैठा है। उसमें सब … है-परन्तु वे–औपाधिक तथा औपचारिक न होकर नित्य तथा … भाविक हैं। ऐसा सर्वगुण विशिष्ट परमात्मा स्वयं भक्तहित के लिये … शरीरों को धारण करने वाले अतिरम्य प्राणी मात्र मनोहर सुल- … लीला विहारी अनन्त गुण गणार्णव अकारण करुणा है। प्रभु की … भाव से उपासना, अनन्य भाव से सेवा, यही प्रभु की भक्ति है। … कि परात्पर प्रभु केवल अनन्य भक्ति से ही पाये जाते हैं … उसी पराभक्ति के जरिये प्रभु से पोषण प्राप्त करना जीवमात्र का … कर्तव्य है।

प्रिय महात्माओ! अब आप सब मेरी बातों को अच्छी तरह समझ … होंगे। इसी को शुद्धाद्वैत अर्थात भगवान् श्रीव्यास का प्रधान मार्ग … हैं, और आज की परिस्थिति के अनुसार यही प्रभु प्राप्ति का उत्तम … है। इतना कह कर मैं अपना प्रवचन समाप्त करता हूँ। आप सबों … जो विचार हो वैसा करें। इसके बाद सभी महात्माओं ने सहर्ष … आचार्य चरण के पवित्रोपदेश को स्वीकार कर पवित्र शुद्धाद्वैत– … प्रधान मार्ग को अपनाया।

प्रयाण दर्शन

अब श्रीविष्णुस्वामीजी की हरिद्वार में बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी। सारे नगर में प्रसिद्धि हो गयी कि उत्तराखण्ड से एक सिद्ध महात्मा पधारे हैं। बड़े उच्च कोटि के विद्वान तथा सिद्ध पुरुष हैं। प्रतिदिन हजारों महात्मा तथा साधारण मानव, दर्शन के लिये आते हैं तथा शङ्का-समाधान शास्त्रार्थ आदि द्वारा अपने मन को सन्तुष्ट पाकर शिष्य आदि भी बन जाते हैं। इस तरह हरिद्वार में बड़े जोरों से भक्ति का प्रचार होता रहा। किन्तु हमारे श्रीस्वामीजी इतने से सन्तुष्ट न थे उनको तो समस्त भारत की यात्रा करनी थी, समस्त भारत में पराभक्ति का प्रचार करना था। अतः एक दिन श्रीस्वामीजी ने सभी महात्माओं तथा भक्तों के सामने अपनी यात्रा की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने सभी को समझाकर कहा कि महात्माओ! इस समय कुरुक्षेत्र जाना चाहिए। सब को दुःख तो हुआ किन्तु श्रीस्वामीजी के महान् उद्देश्य के सामने सब को झुकना पड़ा और सहर्ष अनुमति देदी। बडे धूम-धाम के साथ स्वामीजी की शोभा यात्रा निकली। निर्दिष्ट मार्ग पर कुछ दूर तक सभी नागरिक श्रीस्वामीजी को पहुँचाने को गये और अनेक तो सर्वदा के लिये श्रीस्वामीजी के साथ होगये। श्रीस्वामीजी ने हरिद्वार से कुरुक्षेत्र की यात्रा निश्चित की। मार्ग में अनेक प्रख्यात नगर मिले, अनेक जगह उनका भव्य स्वागत किया गया। अनेक विद्वान् तथा महात्मा भी मिले, बात चीत तथा शास्त्रार्थ भी हुए। सभी जगह श्रीस्वामीजी का विजय हुआ। अनेकों ने स्वामीजी

के सर्वगम्यमार्ग को अपनाया। थोडे ही दिनों में कुरुक्षेत्र में भी आगये। स्वामीजीने वहाँ पर पडाव डाल दिया। पड़ाव की सभी सुविधाओं का प्रबन्ध किया गया। पहुँचने के एक दिन बाद दूसरे दिन एक विशाल सभा हुयी। श्रीस्वामीजी ने कुरुक्षेत्र के माहात्म्य पर प्रवचन किया।

प्रवचन में उन्होंने कहा कि—

हे भगवत् भक्त महात्माओ! तथा सद्गृहस्थो! बडे हर्ष की बात है कि आज हम इस क्षेत्र में उपस्थित हुए हैं। सत्यतया इस क्षेत्र का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं अतिपवित्र है। यह वही भूमि है जिस पर अन्तः सलिला भगवती सरस्वतीतट निवासी महर्षियों ने सर्व प्रथम वेद की ऋचाओं का मधुरस्वर में गान किया था। मानवता के आदि काल में समय-समय पर ब्रह्मा तथा अनेक देवताओंने यज्ञ कर के इस भूमि की महत्ता को अधिक बढ़ाया है और उनको सिद्धियाँ प्राप्त हुयीं। इसी भूमि के प्रभाव से विश्वामित्र तथा वशिष्ठ आदि अनेक महर्षियों को दिव्यज्ञान प्राप्त हुआ। सृष्टि के आदि काल में महाराज श्री कुरु ने अपने लिये इसी भूमि को कृष्यभूमि बनाया था और इसी भूमि में बीजस्वरूप अपने समस्त शरीर को भगवान् श्रीविष्णु द्वारा गड़वा दिया था। अतएव इस भूमि का नाम कुरुक्षेत्र है। द्वापर के अन्त में अभी थोड़े दिनों की बात है। यहीं पर महाभारत नामक कौरवों तथा पाण्डवों का महान् नर विनाशकारी संग्राम हुआ था। जिसमें अनादि पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने निज अनन्य भक्त श्रीअर्जुन

को गीता का उपदेश दिया था। खासकर कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण तथा सोमवती अमावस्या के पर्व पर स्नान मज्जनादि करने से मानव को देवत्व मिलता है।

आज भी इस क्षेत्र में पवित्रता के द्योतक प्राचीन स्मृति चिन्ह विद्यमान है। जैसे कि कुरुक्षेत्र अर्थात् श्रीकुरु महाराज का क्षेत्र (खेत) है। काम्यक आदि सात पवित्र बन हैं, जिनके दर्शन मात्र से मानव कृतार्थ हो जाता है। सरस्वती, वैतरणी आदि सात पवित्र नदियाँ हैं, जो स्नान के बाद सशरीर स्वर्गादिक लोक को भेजती हैं। ब्रह्म सरोवर आदि ४ सरोवर हैं। चन्द्र, विष्णु आदि सात कूप हैं, जो देवता की तरह फल देने वाले हैं और भी अनेक तीर्थ हैं, जिनके दर्शन से मानव मात्र के जन्म जमान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं। कुरुक्षेत्र का माहात्म्य महान् है। सो इसका पूरा विवरण सतपथ ब्राह्मण, वृहज्जाबालोपनिषद् यजुर्वेद तथा सभी पुराणों में सविस्तर वर्णित है।

प्रिय महात्माओ हमारे अहो भाग्य से समीप में सोमवती अमावश्या तथा सूर्यग्रहण भी है। अतएव आज विश्राम करें, कल पर्व स्नान करने के बाद निकलेंगे और सभी तीर्थों का दर्शन करेंगे। इसके बाद सभा विसर्जित हो गयी। उपस्थित सभी जनता स्वामीजी के गुणों का गान करते, निज-निज स्थान तथा घर पर चले गये।

आज सोमवती तथा सूर्यग्रहण होने के कारण इस भू भाग पर एक बहुत बड़ा जन समाज उपस्थित हुआ है। समस्त कुरुक्षेत्र में

यत्र तत्र बडे बडे उत्सवों की योजना की गयी। कहीं पर हवन, कहीं पर भगवन्नाम कीर्तन, कहीं वेदऋचाओं का गान, कहीं भजन-सत्संग तथा व्याख्यान आदि चल रहे थे। हमारे चरितनायक भी उत्सव में शामिल थे। एक बडे अग्निकुण्ड में अनेक महर्षि आहुतियाँ दे रहे थे, यथा समय आदि मध्य तथा मोक्ष स्नान के बाद फलादिक भोजन की व्यवस्था की गयी। विश्राम के बाद पुनः एक सभा का आयोजन किया गया। एक बहुत बडे पण्डाल लाखों जनता के बीच श्रीविष्णु स्वामीने ग्रहण सोमवती माहात्म्य पर प्रवचन किया। सभी श्रोता लोग सानन्द प्रवचन श्रवण कर विश्राम करने गये। तदनन्तर श्री स्वामीजी ने भी विश्राम किया।

दूसरे दिन मेला खतम हो गया। साधारण जन-समाज चला गया। श्रीस्वामीजी सभी अवान्तर तीर्थों के दर्शन करने निकल पडे। साथ में अनेक महात्मा भी थे। प्रातः काल से सायं तक प्रायः मुख्य तीर्थों के दर्शन करने के बाद स्वामीजी ने भोजन और विश्राम किया। करीब एक मास तक कुरुक्षेत्र में निवास करते रहे। अब श्री स्वामीजी ने विचार किया कि यहाँ से यात्रा करनो चाहिये। इस यात्रा में श्रीव्रजभूमि भी निटक में थी। अतएव श्रीस्वामीजी सर्व प्रथम इन्द्रप्रस्थ होकर वृन्दावन जाने का निश्चय किया और निश्चित तिथि पर यात्रा प्रारम्भ कर दी गयी।

मधु पुरी में आचार्यश्री दर्शन

आज की तरह पूर्वकाल की यात्रा सर्वसुलभ नहीं थी। साफ सुथरे मार्ग नहीं थे। रेल गाड़ी, मोटर आदि की व्यवस्था नहीं थी। हजारों की यात्रा पग से ही निष्पन्न होती थी। अपनी निश्चित तिथि पर श्रीस्वामीजी चल पडे। अब तो उनके साथ पर्याप्त महात्मा भी थे, कितने शिष्य भी थे। एक पूरा शिशाला साथ में रहता था। धीरे-धीरे आचार्य श्रीव्रजकिशोर की मधुर लीलाओं का स्मरण करते हुये व्रजेश की अवतार भूमि में पहुँचे। मार्ग में कितने ही राजालोग मिले। सभी ने आचार्यश्री का स्वागत सम्मान किया। उनकी शिष्यता स्वीकार की। इस तरह कितने दिनों के बाद आचार्य चरण ने पावनी भूमि पर स्वचिन्ह अंकित किया। व्रजनिवास करने वाले सन्त महात्माओं के आनन्द का पार न रहा। उस समय श्रीमधुपुरी में महाराज श्रीशिशुनाग का शासन था। जब उनको आचार्यचरण का आगमन ज्ञात हुआ अत्यधिक प्रसन्न हुए। समस्त राजोपकरण से श्रीआचार्यचरण का स्वागत किया। बडे धूमधाम के साथ आचार्यचरण की शोभायात्रा निकली। राजसाही सवारी के साथ श्रीस्वामीजी नगर में लाये गये। समस्त मथुरा के लोग धन्य–धन्य हो गये। महाराज श्रीशिशुनाग ने अनन्य श्रद्धा तथा आन्तरिक भक्ति के साथ आचार्य प्रवर की सेवा की। व्रजभूमि का दर्शन कर श्री स्वामीजी की आत्मा नाचने लगयी थी। काफी दिनों तक आपने व्रजभूमि में निवास किया। नित्य श्रीविहारीजी के दर्शन करने जाया करते थे। व्रजभूमि में आने

के बाद ऐसे तो श्री आचार्यचरण का मन पूर्ण प्रसन्न रहता था। तो भी कभी–कभी कुछ उन्मना जैसा हो जाया करते थे। न मालूम कौनसा विचार उनके अन्तः करण में कभी कभी आ जाया करता था और उनके अब्धिवत् शान्त गम्भीर तथा परमानन्दमय अन्तःकरण को भी चंचल बना देता था। सम्पूर्ण ऐश्वर्यमय राजप्रासाद में आपका उतारा था। साथ अनेकों महात्माओं की जमायत थी। नित्य प्रति सत्संग होता रहता था। कभी आये विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ भी होता था। सेवा में स्वयं राजा के साथ अनेक राज पुरुष उपस्थित रहते थे। अन्तः करण में अभिलाषा जागृत होने से पूर्व ही आवश्यक चीजें उपस्थित हो जाती थीं। सब कुछ होने पर भी प्रतिदिन श्रीआचार्यचरण की अस्थिरता बढ़ने लगी। अपनी इच्छा के अनुसार आपने गोवर्धन, कामवन, नन्दग्राम, वरशाना आदि भगवच्चरणांकित स्थानों को परिभ्रमण भी किया। तो भी आपको आन्तरिक शान्ति का अनुभव नहीं हुआ। प्रतिदिन आपकी अवस्था ऐसी होने लगी जैसे कोई चीज़ खो गयो हो। किसी भूली बात को स्मृति में लाने का प्रयत्न करते हों। जब तब आप बिना किसी से कुछ कहे रात अथवा दिन को अपनी इच्छा से कहीं चले जाते थे। खोज करने पर भी नहीं मिलते थे। जब आनेकी इच्छा होती तो चले आते थे। इसी तरह आप का क्रम चलता था। उसी क्रम के अनुसार एक दिन पुनः तीन बजे ही आप उठे और वंशीवट के पास जाकर बैठ गये। विचारमग्न थे, बाह्य दुनियाँ का किञ्चित्मात्र भी भान न रहा। सम्भवः एक घण्टा इसी तरह बीता।

चार बजे प्रातः काल का रमणीय समय था। प्राची का ललाम ललाट अखण्ड सौभाग्य सिन्दूर से विभूषित हो रहा था। निर्मल आकाश में तारकाएँ विलुप्त प्राय हो रही थीं। निशाकर निस्तेज था परिमल पवन प्रणय संकेत कर रहा था। कलिकाएँ अतशाकर करवट बदल रही थीं। द्विरेफ परिवार अर्धनिद्रित था। दिग्वधुयें प्रसन्न थीं। इस समय हमारे चरितनायक समाधिष्ट थे।

सहसा निरभ्रव्योम कुछ साभ्र बना। आकाश में मेघ घटाएँ प्रतीत होने लगीं। प्रकृति का कनकमयूर नृत्य के लिये पर फैलाने लगा। घनघोर गर्जन के साथ विष्णुपद में एक विद्युत का प्रकाश हुआ। साथ ही मृदङ्ग कंकण ध्वनि के साथ मधुर मनोहर परमानन्दमयी मुरली स्वर भी सुनाई पड़ने लगा। अभी तक प्रकृति के साथ ही श्रीस्वामीजी जाग गये थे। जब उनके नेत्र के पलक खुले तब उन्होंने देखा कि सामने वंशीवट की छाया में व्रजेश रासेश बने बैठे हैं। चारों ओर सुमधुर लावण्यमयी कोमलांगी व्रजवधूटियाँ नाच रही हैं।

किसी के हाथ में मृदङ्ग है तो, किसो के हाथ में झांझ करताल आदि वाद्य हैं। कोई सितार विणा बजा रही है। देवांगना कल्प अनिन्दनीय सौन्दर्य सम्पन्न सभी के सभी नृत्य पर हैं। सभी के मध्य में साक्षात परमानन्द विहारी, लीलाधाम मनोहर रसिक शिरोमणि मोरमुकुटयुक्त, पीतपट सुशोभित त्रिभंगी ललित भगवान रासेश चरणाग्र पर खडे त्रिभुवन मोहनी मुरली बजा रहे हैं।

अब क्या था हमारे श्री आचार्यजी का अन्तः करण भी रसराज के रास–रसमें सराबोर होकर नाच उठा। सहसा उन्होंने सोचा कि मैं दौड़ कर आनन्द घन के चरणारविन्द को पकड़ लूँ। वे दौड़ पडे, ज्यों ही आप परात्पर प्रभु के चरण के पास आये त्यों ही रासलीला खतम हो गयी। गोपिकाएँ अलक्ष्य गति से अन्तर्हित हो गयीं अब वहाँ पर दो ही रह गये। एक शेष और एक शेषी।

आनन्दकन्द श्रीनन्दनन्दनने चरणस्थ श्री आचार्यरचण को सुमधुर मुस्कान के साथ निजकरकमलों से उठा लिया और कहा। विष्णो! उठो! तुमको तो इतना अधीर न होना चाहिये। कारण कि तुम मदंशसम्भूत हो–अब वैष्णवाचार्य हो गये हो, आज के नास्तिक संसार में पराभक्ति के प्रचार के लिये मैंने ही आपको स्वावतारभूत भेजा है। अब कार्य करने का समय है। अतएव अविलम्ब कार्य में संलग्न हो जाना चाहिये। इतना कह कर गोपिकेश ने आपके मुखारविन्द को ऊपर उठाया आप आनन्दविभोर थे वाणी बन्द थी। आँखें सजलकमल फंखड़ियों की तरह छल छला रही थीं। प्रभु ने उठकर अन्तःकरण से लगाया। उस के बाद श्री स्वामीजी ने धीरे से कहा, प्रभो! हमारा मनोरथ सफल हो गया। अब जो आपकी आज्ञा होगी उसको करूँगा। तदनन्तर आपने परेश की स्तुति की चरणो में नमष्कार करने झुके और उन्होंने मुख को ऊपर उठाया तब तक लीलाविहारी पधार चुके थे।

सौरोजीमें आचार्यश्री दर्शन

आचार्यश्री जब वंशीवट से चले तब तरुणारुण प्रकाश से आकाश रक्तिम हो चुका था। आपने वहीं व्रजकी पञ्च कोशी प्रदक्षिणा की और करीब आठ बजे दिन तक घूमते–घूमते महाराज श्रीशिशुनाग के महल पर आये। सभी ने आपका दर्शन किया। आज आपका मुखमण्डल प्रसन्न एवं प्रकाशमय था। अन्तः करण शान्त एवं गम्भीर था। रोज की अपेक्षा आज आप अधिक आनन्द विभोर थे। सपत्नीक राजा ने दरवाजे पर आकर आपका स्वागत किया। समस्त सन्त मण्डली आपका दर्शन करके आनन्द का अनुभव करने लगे। आप आकर निजासन विराजे। यथा समय भोग लगा। स्वामीजी तथा समस्त सन्तों ने प्रभु प्रसाद का सेवन किया। मध्याह्न आरम्भ होने के बाद श्रीस्वामीजी ने राजा को बुलाया और व्रज चौरासी परिक्रमा करने के बाद अयोध्या जाने की बात कही। यद्यपि राजा को यह बात रुचिकर नहीं लगी तथापि उनकी आज्ञा को उलङ्घन करने की हिम्मत भी न पड़ी। अपने प्रोग्राम के अनुसार श्रीआचार्य देव ने सन्त मण्डल के साथ व्रज–चौरासी की परिक्रमा के लिये प्रयाण किया। गोवर्धन, कामवन, नन्दगाम, वरशाना आदि सभी भगवच्चरणांकित भूमि का दर्शन कर अतिशीघ्र आप मधुपुरी आगये और प्रयाण के लिये तैयारी होने लगी।

जब राजा को यह निश्चय हो गया कि अब श्रीस्वामीजी किसी तरह नहीं रूक सकते हैं तब उसने एक ज्योतिषीजी को बुला कर शुभ

तिथि के दिन अच्छे मुहूर्त में एक वृहत्त भण्डारा दिया। व्रजचौरासी के सभी सज्जन पधारे थे। ब्राह्मण मण्डली भी उपस्थित थी। सभी के सामने राजा ने सपरिवार श्रीआचार्यचरण की शिष्यता स्वीकार की तथा भक्तिप्रचार की प्रतिज्ञा ली। बाद में आचार्य चरण ने मधुपुरी से श्रीअवध के लिये प्रयाण कर दिया।

व्रजभूमि से चलकर आपने शूकरक्षेत्र (सौरों) में प्रवेश किया। वहाँ पर आपने भगवान् श्री आदि वाराह का दर्शन किया।

शूकरक्षेत्र ब्राह्मणों का समुदाय था। वे बडे शास्त्र निष्णात थे। उनमें एक काशीनाथ भट्ट नामक ब्राह्मण थे। जो गाँव में सबसे अधिक विद्वान् थे। आस पास के गाँवों में उनका अच्छा प्रभाव था। अपनी अपूर्व विद्वता के वे काफी ख्यातनामा थे। उनको जब श्रीस्वामीजी का आगमन ज्ञात हुआ। जब श्रीआचार्यचरण मधुपुरी में थे, तभी से उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। अतएव पण्डित श्रीकाशीनाथ को श्रीआचार्यचरण की ख्याति अच्छी न लगी विद्वत्ता का अभिमान था। इसी लिये उन्होंने स्वामीजी के विरुद्ध ब्राह्मणों को भड़काया और शास्त्रार्थ का आयोजन बनाया। श्रीस्वामीजी को तो पहले से ऐसी योजना नहीं थी। जब उनको इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने ब्राह्मणों को थोड़ा हँस कर कहा कि भाइयो इसमें शास्त्रार्थ की कौनसी बात है। यदि आप को हमारा सिद्धान्त अच्छा नहीं लगता तो आप लोग अपना सिद्धान्त बतायें। यदि वह

शास्त्र सिद्ध होगा तो मैं उसको मान लूँगा । यदि मेरी बात शास्त्र सिद्ध हो तो आप मान लें ।

जब यह नियम स्वीकार हो गया तो तब एक विशाल सभा का आयोजन किया गया जिसमें प्रायः सभी नागरिक उपस्थित थे। सभा दो भागों में विभाजित थी। अब मध्यस्थ का विचार किया गया कि मध्यस्थ कौन हो । श्रीस्वामीजी ने हँस कर कहा कि जब परात्पर प्रभु श्री आदि बराह के धाम में बैठे हैं । सभा भी प्रभु के मन्दिर में ही है । अतएव हमारे मध्यस्थ भी बराह भगवान् ही रहेंगे। इस बात को सुन कर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ । कितने तो श्रीस्वामी की श्रद्धा की हँसी भी उड़ाने लगे, परन्तु उनमें पण्डित श्रीकाशीनाथ जो सबसे अधिक विद्वान् थे, उन्होंने सभा में बड़ी नम्रता के साथ कहा कि यदि आपका इतना विश्वास है तो मैं प्रश्न करता हूँ आप उत्तर दीजिये। उत्तर के बाद यदि बराह भगवान् आप के उत्तर से सन्तुष्ट होकर अपना बरद कर कमल ऊपर उठा देंगे तो हमारा शास्त्रार्थ समाप्त हो जायेगा और हम आपकी शिष्यता स्वीकार कर लेंगे। श्रीआचार्य देव ने स्वीकृति देकर प्रश्न करने की आज्ञा प्रदान की तब पण्डित श्रीकाशीप्रसादजी ने प्रश्न किया स्वामिन्! प्रायः आजकल ब्रह्म के विषय में ही अनेक बाद ख़डे हो रहे हैं। सांख्यादिक शास्त्रों का भी मतैक्य नहीं है । अतएव आपका स्वरूप कैसा है, अपनी बुद्धि के अनुसार बतायें । इस प्रश्न को सुन कर श्रीस्वामीजी थोड़ा हँसे और गम्भीर होकर उत्तर देने लगे ।

चाहते थे कि चारों बालक जलके अन्दर कूद गये और श्रीसरयूजी में बिलीन हो गये श्रीस्वामीजी ने भी स्नान कर अपने आसन पर आ गये । नित्य नियम पूजा पाठ के बाद नित्य राजा साहब की सवारी आती थी । दैनिक प्रातः सत्संग के लिये सन्त महात्मा भी आते थे । जब श्रीस्वामीजी अपने नियम के अनुसार नगरके मुख्य मन्दिर में दर्शन करके वहाँ से आते थे तब प्रातः सत्संग चला करता था । अतएव जमघट होने लगा । राजा आदि सभी लोग जब यथा स्थान बैठ गये तब सत्सङ्ग प्रारम्भ हो गया । करीब दो घण्टे तक सत्संग चलता रहा । अन्त में आचार्यश्री ने निवेदन किया कि अब अतिशीघ्र काशी चला जाऊँगा । यद्यपि ऐसा सुनकर राजा तथा उपस्थित महात्माओं ने दुःख व्यक्त किया तथापि अनेक तर्क वितर्क के बाद स्वामीजी की यात्रा निश्चित हो गयी। एक महात्मा ने प्रार्थना की स्वामिन् ! अब वैशाख का मास है, अतएव काशी में गर्मी अधिक पडेगी । आपने उत्तर दिया कि हमको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की आज्ञा माननी चाहिये । उन्होंने अर्जुन से कहा है कि---

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय ! शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत ! गीता२।१४

अब सभी हताश हो गये । आचार्य श्री की आज से यात्रा तिथि भी निश्चित हो गयी। निश्चित तिथि पर जब आप चलने लगे तब समस्त साकेत पुरी में हाहाकार मच गया । आबालवृद्ध पशु-पक्षि तक आपके वियोग से सब व्याकुल हो गये । सरयूजल भी अन्यमनस्क जैसा प्रतीत होने लगा । ठीक वैसी दशा हो गयी जैसी भगवान् श्री-

राम की वनयात्रा के समय हो गयी थी। बड़ी कठिनता से ने बनारस तक पहुँचा ने के लिये धैर्यधारण किया। राजा की आज्ञा से सुन्दर रथ सजाया गया। उस पर बैठ कर आचार्यश्रीने काशी की ओर प्रयाण किया।

आचार्य श्रीशिवपुरी में

तदागमारूढ़गुरुप्रहर्षः ऐसे तो परमानन्द स्वरूप भगवान भूत भावन की पुरी में सर्वदा प्रमोद का प्रवाह बहा ही करता है। त्रिलोकतारणी भगवती भागिरथी, सुमधुर कलरवों से सुखदस्पर्शी सुधालजावनी मुधुरिमा से चार प्रकार के जीवों के समस्त पापों को नष्ट करती ही रहती है। अपनी चपल–तरंगों से जन-मनों के आनन्द को बढाया ही करती है। नित्य नई उल्लासमयी, नवनवं श्रृङ्गारमयी सुन्दर धारा से समीपागत् जीवों को परा विश्रान्ति देती ही रहती है। फिर भी आज ज्ञात नहीं क्यों ? इनकी धारा निराली थी। निज पुरी की समस्त गलियों में मानो नटराज स्वयं नृत्य कर रहे थे। आज आनन्दातिरेक से समस्त काशी पुरी कुछ अन्य जैसी प्रतीत होती थी।

जन समुदाय दौड़–धूप कर रहा थी। कुतुहल वश एक दूसरे से पूछ भी रहे थे कि भाइ ! आज क्या है ? ज्ञान शील लोग समझा रहे थे कि तुम को नहीं मालूम ? आज समस्त आर्यावर्त में जिन की चर्चा है, भारतीय जनता के मानस पटल पर जिनकी प्रति अंकित है, जिनका निर्मलयश सुन कर कान तृप्त हो रहे हैं, जिनके

दर्शन के लिये मानव समाज की आखें लालायित रहती हैं। वे ही आचार्य श्रीविष्णु स्वामी अपने चरण रज से पावन पुरी को पावन-तम बनायेंगे। यह बात कर्णोपकर्णविधान से समस्त नगर में व्याप्त हो गयी थी। आवाल–वृद्ध सभी, निर्णिमेश दृष्टि से मार्गाव-लोकन कर रहे थे।

जब आचार्यश्री अवध में थे, तभी अवधनरेश ने काशीनरेश के पास सन्देश भेज दिया था कि आचार्यजी सीधे बनारस आयेंगे। इस लिये आज समस्त राज्य परिवार आचार्य श्री के स्वागत में उपस्थित था। काशी के पण्डितों का तो कहना ही क्या किसी के अन्तःकरणमें श्रद्धा-प्रेम और उल्लास था तथा किसी के अन्तःकरण में चूहा कूद रहा था। नियत समय पर स्वामीजी काशी की सीमा में आये। नागरिकों को समाचार मिला। नागरिकों के साथ अलौकिक उपकरण युक्त काशी नरेश का रथ अगुआनी के लिये चल दिया। करकमल में सुन्दर पुष्पहार लेकर काशी नरेश रथ के पिछे पैदल ही चल रहे थे। उनके पिछे थी समस्त जनता।

श्रीस्वामीजी ने अपने अनुयायियों के साथ देखा कि समस्त काशीपुरी उमड़ी चली आ रही है। मार्ग में ही दोनों दल मिले। काशी नरेश ने आगे बढ़कर श्रीस्वामीजी का चरण कमल पकड़ लिया। उनके लोचन सजल थे। श्रीस्वामीजी ने प्रेम पूर्ण नेत्रों से निज चरणों में पड़े हुये राजा को देखा और गोद में उठा लिया। राजा ने अपने को धन्य-धन्य समझा। स्वामीजी ने शुभाशीर्वाद दिया। शोभा यात्रा (जुलूस) विश्वनाथ पुरी की ओर चल पड़ी। नगर के

प्रथम मार्ग पर स्वामीजी की आरती की गयी। नगर में अनेक स्थानों पर सन्मानसूचक क्रियाएँ की गयीं। यद्यपि स्वामीजी के विश्राम के लिये काशी नरेश ने अपना महल खाली कर दिया था। तथापि स्वामीजी ने नगर से दूर गङ्गा तट पर ही स्वनिवेश डालने का निश्चय किया। काशी के सभी लोग स्वामीजी का दर्शन कर अपने को कृत-कृत्य माने। गङ्गातट पर एक सुन्दर विशाल पट मण्डप का निर्माण किया गया। अनेक विभाग भी उसमें बनाये गये। एक में भगवान की प्रतिमा पधरायी गई, दूसरे में स्वामीजी का निजी आसन था, तीसरे में अनेक सन्त—महात्माओं के आसन थे, चौथे में भण्डार हो रहा था। स्वामीजी अब काशी में शान्ति पूर्वक निवास करने लगे।

एक सुरम्य विस्तृत पण्डाल में एक सुन्दर सिंहासन था जिस पर विराज कर, धार्मिक प्रवचन करते थे। नित्य हजारों जनता अमृत-मय उपदेश का लाभ लेती थी। काशी के अनेक सत्-शास्त्र चिन्तन शील विद्वान स्वामीजी के पवित्र प्रबाह मयी वाग्धारा से प्रभावित होकर आनन्द सिन्धु में हिलोरा लेते थे। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता एवं श्रीमद्भागवत, इस प्रस्थान चतुष्ठय के गूढ़ तत्वों पर विचार विमर्श चला करता था। स्वामीजी के मुख कञ्ज से निकले भक्ति रस पराग में काशी वासियों का अन्तःकरण सरावोर होरहा था। समस्त नगरी में मानो भक्ति रस का सागर उमड़ रहा था। भगवती भागी-रथी भक्तिमयी बन गई थी। साक्षात् भगवान विश्वनाथ मानो भक्ति रस में स्नान कर रहे थे। इस तरह निरन्तर शिवपुरी आनन्द-

मयी, उल्लासमयी, एवं भक्तिमयी होकर मानो स्वयं नर्तकी बन गयी हो।

खलः स्वपापेन विहिंसितः खलु।

जब से श्रीस्वामीजी ने काशी में पदार्पण किया, तभी से नित्य नये आमोद प्रमोद के साथ समय व्यतीत होने लगा। भावुक हृदय स्वामीजी के दर्शन, प्रवचन तथा सेवा कार्य से अपने को धन्य-धन्य मान रहे थे, इतना होने पर भी कुछ लोग विद्या अभिमानी होकर, ईर्ष्यावशतः स्वामीजी की निन्दा करते थे। धीरे—धीरे पण्डितों का एक दल एकत्रित हुआ। उन लोगों की यह भावना थी कि भरी सभा में स्वामीजी से कुछ प्रश्न पूछे जाएँ। समुचित्त उत्तर न मिलने पर उनकी हँसी उड़ाई जाय। जब इस भावना का स्वरूप व्यापक हो गया, काशी नरेश के कान में यह बात पहुँच गई तो काशी नरेश ने आचार्यजी से भी परामर्श किया। आचार्यजी ने अपनी स्वाभाविक शान्त-गम्भीर मुद्रा में इषद् हास्य के साथ राजा को समझाया कि राजन्! मैं तो आपका अतिथि हूँ जैसा कहेंगे, वैसा करूँगा। यदि यहाँ के पण्डितों में कुछ असंतोष है तो मैं स्वमति अनुसार उचित समाधान करने का प्रयत्न करूँगा। फिर क्या था दूसरे रोज एक बड़ी सभा का आयोजन हो गया, और स्वामीजी कुछ विचार मग्न होकर रात्रि में आराम करने के लिये आसन पर चले गये। आप सोच रहे थे यह पुरी भगवान शंकर की है। इस परिस्थिति में यदि यहाँ के पण्डितों से शास्त्रार्थ करूँगा, तो कहीं ऐसा नहीं हो कि भगवान शंकर हमारे विरोधी बन जाएँ। इसी विचार में बहुत

देर जागने के बाद, आचार्य श्री निद्रा के आधीन हो गये। सम्भवतः चार बजे ब्रह्म मुहूर्त में उठने से पहले ही स्वामीजी क्या देखते हैं कि निज पट कुटीर में एक नवागत भव्य परम तेजोमयी मूर्ति, विस्तृत वक्षस्थल, विशाल भाल, जटा जाल विशोभित मस्तक, महाप्रा चले आ रहे हैं। निकट आनेपर स्वामीजी ने शिरःस्थित जलधारा से, शशिखण्ड सुशोभित भाल से, अनुमान कर निश्चय कर लिया कि ये साक्षात् भगवान रुद्र हैं। आपने उठ कर भूतनाथ का स्वागत किया। साष्टांग प्रणिपात् के लिये आचार्य श्री चरण की ओर झुके ही थे कि भगवान भूतेश ने करकञ्ज उठा कर हृदय कञ्जसे में लगा लिया। उसके बाद बिना पूछे ही गौरीश ने कहा कि देवतनु अब आप आचार्य विष्णु स्वामी हो गये हो। अब आप के मन में शंका या सन्देह नहीं होना चाहिये। आप को स्मरण होगा कि मैंने 'कला नगर में ही आप को कहा था कि आप निःशंक होकर परा भक्ति का प्रचार कीजिये। अतएव आप पूर्ण विश्वस्त होकर अपना काम कीजिये। इतना सुनने के पश्चात् आचार्यश्री कुछ कहना ही चाहते थे कि भगवान महेश अन्तर ध्यान हो गये। अब प्रातःकाल का समय हो गया था। इस लिये आपने सुरसरी की ओर प्रयाण किया। प्रति दिन की तरह सारी क्रियाएँ होने लगीं।

आज सायं चार बजे सभा में जाने की तैयारी होने लगी। नियत समय पर आचार्य श्री सभा मण्डप में पधारे। सभा का आयो- जन दशाश्वमेध घाट के पास गांगेय सुन्दर सैकत विभाग पर नव- निर्मित पट कुटीर में किया गया था। आचार्य श्री के पहुँचने ने

शिष्य सहित समागत जनता ने उठ कर स्वागत किया। आप मध्य वर्ती सुन्दर सिंहासन पर विराज गये। शास्त्रार्थ का कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। भगवान सदाशिव की एक सुन्दर प्रतिमा मध्यस्त के रूप में प्रतिष्ठित की गई थी।

सम्पूर्ण सभास्थल जन समाज से ओतप्रोत भरा हुआ था। व्यवस्था के अनुसार स्वामीजी के सामने उन पण्डितों का दल बैठा था, जो लोग कुछ पूछना चाहते थे। यद्यपि आचार्य श्री के अलौकिक तेज से समागत पण्डितों की कान्ति निस्तेज हो चूकी थी तथापि अहंकार वश पण्डित श्रीविद्याधर भट्टाचार्यजी ने (जो विपक्षी पण्डितों के नेता थे।) प्रश्न कर ही दिया कि आप यह बताइये जगत् का स्वरूप क्या है? जगत् ब्रह्म से भिन्न है या अभिन्न? यदि भिन्न है तो स्वसत्ताक है या परसत्ताक। यदि पर सत्ताक है तो उस सत्ता का रूप क्या है? यदि ब्रह्माभिन्न है तो जो स्वरूप हम जगत् का देख रहे हैं तो क्या वही ब्रह्म का स्वरूप है तो ब्रह्म नाना हो जायेगा। यदि ब्रह्म को अनेक मानेंगे तो **एकमेवाद्वितीयम्। नेह नानास्ति** किञ्चन, इत्यादि श्रुतियों का विरोध हो जायेगा।

इतना कहकर पण्डित श्रीविद्याधर भट्टाचार्यजी चूप हो गये। अब जनता मात्र के नेत्र स्वामीजी के मुखारविन्द की ओर घूम गये। स्वामीजी ने अमृत प्रसादमय कटाक्ष से जनता की ओर देखा। मन से ही श्रीकाशीनाथ को नमस्कार कर गम्भीर वाणी में कहा—साक्षी भूत भगवान श्रीभूतभावन! त्रिलोक तारिणी मां गंगे! तथा

उपस्थित वाराणसी वास्तव्य नागरिक ! आप सबों ने पण्डित श्री भट्टाचार्यजी के प्रश्न को सुन लिया । अब मैं भी स्वमति अनुसार उत्तर देता हूँ, आप सब शान्त चित से विचार करें ।

जगत् ब्रह्म से अभिन्न है । ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं ।

(१) पर ब्रह्म आधि दैविक स्वरूप ।

(२) अक्षर ब्रह्म आध्यात्मिक स्वरूप ।

(३) जगत् आधिभौतिक स्वरूप ।

ये तीनों स्वरूप परस्पर अभिन्न एवं अनन्य रूप है । इसी लिये भगवान श्रीवेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र में **तदन्वयाधिकरण** में कहा है कि **"तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः"** यह सूत्र लिखा है। तथा च श्रुति भी समस्त विकार को वाचारम्भण विकार नाम मात्र मानती है। वास्तव में घट मृतिका से अभिन्न ही है। इस लिये जगत सत्य ही है । यदि जगत मिथ्या हो अथवा ब्रह्म से भिन्न हो तो-

एकेने विज्ञातेन सर्वं विज्ञातं भवति ।

एक को जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है, यह उपनिषद वाक्य व्यर्थ हो जायगा। इस का अर्थ पूर्ण संघटित नहीं हो सकेगा। एक विज्ञान सिद्धान्त में भी विरोधापत्ति होगी। यदि जगत् मिथ्या होता तो—

वाचारंभणं विकारो नामध्येयं मृत्तिका सत्या ।

इस प्रकार से श्रुति की आज्ञा होती। परन्तु श्रुति तो कहती है कि मृत्तिका **इत्येव सत्यम् ।** अर्थात मृत्तिका ही सत्य है। घट भी

मृत्तिका ही है। घट और मिट्टी में अभेदान्वय है अतएव घट भी सत्य है। 'इति' शब्द का अर्थ प्रकार है। मतलब, घट भी मृत्तिका का ही एक प्रकार है। मृत्तिका का ही रूप है। इस लिये घट और मृत्तिका की अनन्यता सर्व सिद्ध है। मृत्तिका सत्य है। अतएव जगत भी सत्य है। असत्य अथवा मिथ्या नहीं। सर्वदा जगत सत्य है। अभिन्न है। और भी—

तदेवैतत्प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम् ।

वही ब्रह्म इस प्रकार से जगत के स्वरूप में आविर्भूत होता है यह श्रुति का सिद्धान्त है जो वस्तु रहती है, उसी की प्राप्ति होती है। यदि वस्तु नहीं रहेगी तो कभी उसकी प्राप्ति नहीं होगी। जगत की प्राप्ति होती है इस लिये जगत सत्य है। कारण कि जगत सत स्वरूप ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न है। इसी लिये श्रुति कहती है कि——

"सदेव सौम्येदमग्र आसीत्,
एकमेवाद्वितीयम् यदिदं च तत्सत्यम् ।

इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म और जगत् की अभिन्नता प्रतिपादित होती है।

"तदात्मानं स्वयमकुरुत"

इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म आत्मा स्वयं अपनी क्रिया से अपने आधिभौतिक जगत के रूप में आविर्भूत होता है। और भी 'आसीत्' इस प्रयोग में तृतीय पुरुष का प्रयोग किया गया है।

कार्य सर्वदा अपने कारण के साथ समवाय सम्बन्ध से युक्त

होकर, अस्तित्व में आता है। सर्वदा सम्बन्ध दो चीजो का ही होता है। इस से भी ब्रह्म और जगत की अनन्यता सिद्ध होती है। कारण के साथ सम्बन्ध रहित होकर यदि कार्य की उत्पत्ति मानी जाय, तो जगत के मिथ्यात्व का प्रश्न आ सकता है।

कितने ही समय ऐसा होता है कि वस्तु उपस्थित रहती है, तथापि स्पष्ट रूप से वस्तु को सार्वजनिक प्रकाश में लाने के लिये उसी में अन्य क्रियाएँ की जातो है। जैसे कि दुकानमें व्यवस्थित तरीके से रखा हुआ कपड़ा सब के सामने रहता है, तथापि ग्राहक को दिखाने के लिये कपड़े की गाँठ खोल दी जाति है। उस समय वह कपड़ा स्वपूर्वकालिक व्यवस्थित गाँठ बधे कपड़े से अलग यानि —कोई दूसरा कपड़ा बन नहीं जाता है। अपितु गाँठ वाला कपड़ा तथा फैलाया गया कपड़ा दोनों में पूर्ण अनन्यता रहती है। ठीक इसी तरह आविर्भाव तथा तिरोभाव रूप से ब्रह्म तथा जगत में सर्वदा अनन्यता ही रहती है। जिस तरह प्राण अपान आदि पवनों को नियमन तथा अनियमन करने से प्राण का भेद नहीं होता उसी तरह ब्रह्म तथा जगत की अभिन्नता नित्य सिद्ध है। इसी तरह ब्रह्म और जगत की अभिन्नता तथा अनन्यता मान ने पर, ब्रह्म भोक्ता, तथा जगत भोग्य बनेगा। ऐसी शंका करने वाली बुद्धि निर्मुक्त है। क्योंकि हम देखते हैं कि मकडी अपने ही शरीर के सूत्र से एक सुन्दर जाल का निर्माण कर, उसके अन्दर, अप्रतिहत गति से विहार करता है। स्वेच्छा पूर्वक रमण कर, उस जाल को अपने में ही विलिन कर लेता है। फिर भी मकड़ी की सत्ता यथावत स्वस्थ रहती है और

भी योगी लोग अपनी इच्छा से नाना प्रकार के स्वरूपों का निर्माण कर स्वयं ही भोग्य तथा भोक्ता बन कर अनेक प्रकार की क्रिड़ाओं को करते हैं। इतना होने पर भी वे शुद्ध रहते हैं। जगत में जिस तरह सोने का मुकुट भी सोना है और कुण्डल भी सोना है। दानों के सोना होने पर भी कोई मुकुट को कुण्डल तथा कुण्डल को मुकुट कहता नहीं है। इसी तरह भोक्ता भी ब्रह्म है और भोग्य भी ब्रह्म है, तो भी भोक्ता को भोग्य तथा भोग्य को भोक्ता कहा नहीं जा सकता। पूर्ण काम ब्रह्म जगत का स्वरूप बनता है और जगत से अभिन्न रह कर ही नाना प्रकार का विहार करता है। यही ब्रह्म की महत्ता है।

इतना कहने के बाद आचार्य श्री ने थोड़ा हँस कर उपस्थित जनता की तरह देखा और फिर कहना प्रारम्भ किया।

उपस्थित भगवत भक्त काशी एवं काशी के नागरिक तथा विद्वत्समाज ! मैं आशा करता हूँ कि मेरे प्रवचन से आप सबों को सन्तोष प्रद उत्तर मिल गया होगा तथापि यदि किसो के मन में शंका हो तो वह उसको उपस्थित कर सकता है।

श्रीस्वामीजी के प्रवचन से उपस्थित जन समुदाय इतना प्रभावित हुआ था कि किसी को भी बोलने का साहस ही नहीं हुआ, परन्तु पण्डित श्रीविद्याधर भट्टाचार्यजी ने कहा कि हे आचार्य चरण आपके मधुर वाङ्मय अमृत प्रबाह के श्रवण से, हम सब परम तृप्त है। कुछ भी कहना शेष नहीं है लेकिन हम और आप दोनो ने अपना मध्यस्थ भगवान श्री विश्वनाथ को बताया है इस लिये उनकी

अनुमति जरूरी है। इतना कहते ही भगवान विश्वभावन का दक्षिण करकमल ऊपर उठ कर श्रीविष्णुस्वामीजी के मस्तक पर गया तथा अन्तरिक्ष में जय-जयकार की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। फिर क्या था? भक्त मण्डली की ओर से जितम-जितम का शब्द उच्चरित हुआ। पण्डित श्रीविद्याधर भट्ट आदि सभी पण्डितों ने चरण में नमस्कार किया और सभा विसर्जित हो गयी।

काशी से प्रयाण

यही तो कालचक्र की विशेषता है। वह आगे ही बढ़ता है। शास्त्रार्थ में विजयी होने के बाद पूर्ण आनन्द और पूरी शान्ति के साथ काशी में निवास करने लगे। निरन्तर कथा उपदेश चलता रहा। राजा तथा अनेक पण्डितों ने श्रीस्वामीजी की शिष्यता स्वीकार की। इस तरह भगवत् भक्ति को आन्तरिक श्रद्धा से अपना कर अपने जीवन को कृत्य-कृत्य बनाया।

इसी तरह आनन्दमय समय व्यतीत होता रहा था। एक दिन अपनी सभा में, जिस में राजा तथा नगर के सभी लोग उपस्थित थे। श्रीस्वामीजी ने कहा कि, प्रेमास्पद भ्रातृवर्ग! काशी में आये मुझे बहुत दिन हो गये, इस लिये मेरी इच्छा है कि जगन्नाथपुरी में जाकर श्रीजगनाथ भगवान का दर्शन करूँ। यह सुन कर उपस्थित जनता में सभी को आन्तरिक दुःख का अनुभव हुआ। सभी के नेत्र अश्रु पूर्ण हो गये। किसी को भी बोलने का साहस नहीं हुआ। इस अस्वाभाविक निरव को देख कर स्वामीजी ने फिर कहा भाइयो!

जाना जरूरी है इस लिये मैं तो जाऊँगा ही। इस में दुःखी होने का प्रसंग ही नहीं। यदि भगवत् कृपा होगी तो, पुनः आऊँगा।

अब स्वामीजी का जाना निश्चित हो गया। सब की अनुमति से यात्रा की तिथि भी निश्चित कर दी गई। श्रीस्वामीजी ने भगवान श्री शंकर तथा भगवती श्रीगङ्गा को अभिवादन एवं प्रसन्न कर, काशी निवासियों को सन्तुष्ट कर, राजा तथा प्रधान पण्डितों को परा भक्ति प्रचार करने के लिये आदेश देकर पुनरागमन का बचन देते हुए निश्चित समय पर काशी से जगदीशपुरी के लिये प्रयाण कर दिया।

बड़ी श्रद्धा और सद्भावना के साथ आचार्य श्री की विदाई की गयी। उपस्थित राजा तथा समस्त प्रजा के हाथों में सुन्दर पुष्पों की माला एवं आँखों में प्रेमाश्रु भरे थे। गद्-गद् कण्ठ से सबों ने श्रीस्वामीजी का जय-जयकार किया। स्वामीजी ने सबों को मङ्गलमय आशीर्वाद दिया, और स्वामीजी का रथ चल पड़ा। इस तरह स्वामीजी ने पुरी की तरफ प्रयाण किया। काफी दिनों तक चलने के बाद मार्ग में आये विशाला (बक्सर) में व्यवस्थित विश्राम की योजना बनी। श्रीस्वामीजी ने बक्सर में पर्याप्त दिनों तक निवास किया। भगवान श्रीरामचन्द्रजी के अनेक स्मृति चिन्हों का दर्शन किया। ताड़का वध आदि स्थानों को देखा और अपनी सफलता के लिये प्रभु से मानसिक प्रार्थना की। कितनी जगहों पर तो स्मृति चिन्हों को देख कर श्रीस्वामीजी पुलकित हो उठते थे। नेत्रों

से प्रेमाश्रु की धारा निकल पड़ती थी। यदा–कदा ऐसा ज्ञात होता था कि भगवान श्रीरामचन्द्रजी मिल ही गये हों। इस तरह श्रीस्वामीजी अन्तरिक्ष में बात भी कर लेते थे।

इसी प्रकार कितने ही दिनों तक स्वामीजी ने विशाला में निवास किया तथा एका एक वहाँ से पुरी की तरफ प्रयाण किया। कुछ दिन यात्रा करने के बाद मार्ग में पाटलिपुत्र आया। यात्रा–प्रक्रम में आचार्य श्री अनेक गावों में निवास करते थे। जहाँ-जहाँ निवास करते थे, वहाँ खूब सत्सङ्ग और भजन तथा कीर्तन होता था। ग्राम के भावुक लोग श्रीस्वामीजी की शिष्यता स्वीकार करते थे। यही प्रक्रिया पाठलिपुत्र (पटना) में भी चालू रही तात्कालिक राजा तथा प्रजा दोनों ने स्वागत किया। काफी दिनों तक स्वामीजी ने सभी को भक्ति का उपदेश दिया और यथा समय सब को सन्तुष्ट कर एक दिन श्रीवैद्यनाथ धाम की यात्रा की। वैद्यनाथ धाम में पहुँच कर रावण के लायी हुई भगवान श्रीसदाशिव की लिङ्ग मूर्ति का दर्शन किया। कुछ दिन निवास करने के बाद वहाँ से सीधे जगदीशपुरी की यात्रा की। मार्ग में अनेकों जगह में विश्राम किये। सभी जगह कथा सत्सङ्ग कीर्तन होता था। अन्त में एक दिन स्वामीजी ने जगदीश भगवान की दिव्य सीमा में प्रवेश किया।

पुरी में प्रवेश

परमपिता परमेश्वर सर्वदा ही, सर्वथा, निरवच्छिन्न रहते हैं किसी भी तरह का बन्धन उनका स्पर्श नहीं करता। न वे कभी

किसी भाषा के बन्धन में आते, न वे किसी देश या समाज के बन्धन में रहते, न कभी किसी जाति या परिवार के बन्धन में बान्धे जाते तथा न कभी व्यक्ति विशेष की बुद्धि की बन्धन में आते हैं। वे तो स्वतन्त्र रूप से लीला विहारी बन कर विचरण करते हैं। अज्ञानी जीव यह समझता है कि प्रभु अपने बन्धन में बँधा हुआ है। ठीक यही दशा पुरी में श्रीजगन्नाथ भगवान की थी। पूजाधिकारी (पण्डेलोग) भगवान की अपनी बपौती चीज़ मानते थे। इस लिये सब को दर्शन का अधिकार भी प्राप्त नहीं था। स्वामीजी को इस बात का ज्ञान हो चुका था अतएव स्वामीजी ने समस्त मण्डली को सीमा पर ही बैठा कर जगदीश भगवान के दर्शन के लिये चल पड़े। मन्दिर में जाकर भगवान के सामने जगमोहन में बैठ कर प्रार्थना करने लगे। सम्भवतः भोग का समय हो गया था स्पर्शास्पर्श की भावना से पण्डित पुजारियों को इधर–उधर अपने जाने में कुछ बाधाएँ आयीं। एक पुजारी ने तो श्रीस्वामीजी को बुरी तरह फटकारा और सामने से उठ जाने के लिये कहा। जब श्रीस्वामीजी नहीं उठे, तब एक ने हठात् हाथ पकड़ कर उठाया और मन्दिर के पीछे बैठा दिया। थोड़ी देर में क्या देखते हैं कि मन्दिर के पीछे जहाँ श्रीस्वामीजी बैठे हैं उनके सामने ही मन्दिर का दिवार टूट गया और एक सुन्दर दरवाजा बन गया। यह देख कर पुजारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक पुजारी ने ढोंगी तथा पाखण्डी कह कर वहाँ से भी उठाया तथा मन्दिर के एक बगल में बैठा दिया। श्रीस्वामीजी अपनी शान्त और गम्भीर मुद्रा में, क्षण मात्र में क्या देखते हैं कि वहाँ की भी भित्ति

टूट कर एक सुन्दर दरवाजा बन गया और सामने जगन्नाथ भग-वान का भव्य दर्शन होने लगा। पुजारी तथा आने जाने वाले दर्शनार्थी लोग चित्रवत खड़े रहे। पुजारियों की प्रतिभा कम होने लगी। अब उनका अहंकार कुछ उतर ने सा लगा। कितने ही तो स्वामीजी के चरणों में पड़ गये। एक मूढ़तम व्यक्ति था जिसने श्रीस्वामी-जी को एक पागल कह कर उठा दिया। अब स्वामीजी उस तरफ जाकर बैठ गये जिस तरफ दरवाजा नहीं खुला था। थोड़ी देर में वहाँ भी पूर्वोक्त घटना घटी। एक सुन्दर दरवाजा बन गया। अब तो श्रीस्वामीजी के प्रभाव से मन्दिर के चारों तरफ चार दरवाजे बन गये। सभी दरवाजों से दर्शन करने पर ऐसा ज्ञात होता था कि सामने ही भगवान का मुखारविन्द है। अर्थात चारों तरफ से भग-वान की भक्ति दर्शन होने लगी। पुजारी लोग तो बड़े आश्चर्य में पड़ गये।

पुरी से प्रयाण

उस अलौकिक घटना को देख कर पुजारियों की आत्मा काँप उठी। सभी एक ओर खड़े होकर श्रीआचार्य की प्रार्थना करने लगे। साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम किया। श्रीस्वामीजी ने आश्वासन दिया और समझाया कि भाइयो ! परमात्मा किसी के बन्धन में नहीं रहते हैं। जाओ तुम सब प्रभु की पूजा करो कोई भी भक्त आवे तो मन कर्म वाणी से किसी भी प्रकार का अपमान न होने पावे। इतना कह कर आचार्य श्री अपनी मण्डली में चले गये। पुजारी वर्ग अपने कार्य में

संलग्न हो गये। धीरे धीरे इस घटना का प्रचार सारे नगर में हो गया। जिन लोगों ने सुना सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। नागरिक वर्ग श्रीस्वामीजी के दर्शन के लिये चलपड़ा। आचार्य श्री का प्रेम पूर्ण स्वागत किया गया। आप सानन्द पुरी में निवास करने लगे। पर्याप्त दिनों तक पुरी में रहे। अन्त में एक दिन श्रीरामेश्वरम् आदि दक्षिण के तीर्थों का दर्शन करने के लिये निश्चय किया। पुरी में प्रतिदिन सभा होती थी। आचार्य श्री अनन्य भक्ति का उपदेश देते रहे।

फूलडोल समाप्त होने के बाद आचार्य श्री दक्षिण दिशा को चल दिये। साथ में अनेक शिष्य तथा सन्तमण्डल था। सभी के लिये रथ की व्यवस्था की गई। सभी का यथोचित सन्मान किया गया। धीरे धीरे रथ पर बैठ गये। रथ चलने लगा। गाँव की सीमा पर अन्तिम जलाशय तक नागरिक वर्ग स्वामीजी के स्वागतार्थ पहुँचाने आये। स्वामीजी ने सब को आश्वासन दिया, सब को लौटा कर अपने रथ को आगे बढ़ाया। मार्ग में अनेक तिर्थों का दर्शन करते हुए लगभग ३०० तीन सौ मिल की दूरी को पारकर एक रोज अन्न-बरम की सीमा पर पहुँचे। स्वामीजी ने विचार किया कि सम्भवतः १५ दिनों तक अत्यल्प विश्राम युक्त यात्रा करने के कारण सभी लोग थक गये हैं। अतएव यहाँ पर कुछ विशेष विश्राम करना आवश्यक है। इस लिये अन्नबरम पर पड़ाव डाल दिया गया।

अन्नबरम सुन्दर नगर था। स्वामीजी ने वहाँ काफी दिनों तक निवास किया। बड़े आनन्द पूर्वक सत्संग, और प्रवचन चालू रहा।

जब स्वामीजी का यहाँ से चलने का विचार हुआ तब यह निश्च
किया गया कि स्वामीजी यहाँ आये थे । इस लिये कुछ स्मारक चि
होना चाहिए ।

भावुक जनता के आग्रह को स्वीकार करके अपनी आध्यात्मि
शक्ति से, सत्यनारायण भगवान की प्रतिमा को प्रगट कर जनता के
समक्ष रख दिया । सभी को शान्ति पूर्वक समझाया कि भाइयो!
जगत् में मानो कल्याण के उपायों में से प्रभु की प्रतिमा की अर्च
सर्वोत्तम उपाय है । मुझे महावलिपुरम् होकर श्रीरामेश्वरम् का दर्शन
करना है । इस तरह सब को समझा कर स्वामीजी ने आगे जाने के
लिये प्रबन्ध किया ।

स्वामीजी महावलिपुरम् में

स्वामीजी का रथ रामेश्वर के लिये था । बीच-बीच में जहाँ
उतरते थे या जहाँ दीर्घकालिक विश्राम करते थे वहाँ के राजा अथवा
प्रजा की ओर से अश्वपरिवर्तन करने की व्यवस्था करदी जाती थी। इस
तरह लगभग डेढ़ मास तक चलने के बाद स्वामीजी ने अपना विशे
विश्राम पक्षितीर्थ में किया । पक्षितीर्थ में, शंखतीर्थ नामक सरोव
में स्नान करने के बाद स्वामीजी ने रहने की व्यवस्था की । वहाँ के
पण्डित, राजा तथा समस्त नागरिकों ने स्वामीजी का स्वागत किया।
बहुत दिनों तक काफी वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थ चलता रहा। वहाँ
के सब लोगों ने स्वामीजी के आचार्यत्व को स्वीकार किया। वहाँ

जनता की भावना तथा उपासना के अनुसार, भगवान की उपा-
ना का उपदेश दिया । वहाँ पर श्रीआचार्यजी एक दिन कुछ
चार में मग्न थे रात्रि का समय था । रजनी-रानी का श्रृङ्गार
नता सा प्रतीत होता था । सुधाकर की सुधामयी किरणे गवाक्षों
प्रवेश कर अन्तर गृह को रजतमय बनाती थीं । नारी के विस्तृत
नमय अलंकारों की तरह द्यौ-नव वधू के अङ्ग पर तारिकाएँ
ती थी । पूर्ण मुखमण्डल सा चन्द्रमण्डल आभाषित था । इस
लिक छटा के निरीक्षण में स्वामीजी तल्लीन थे । इतने में ही
कुछ कम्पित होने लगो । स्वामीजी ने निचे देखा तो पृथ्वी कुछ
रही थी । थोड़ी देर में वहाँ से एकशिवलिंग निकल पड़ा ।
स्वामीजी बड़े आश्चर्य में पड़ गये । चारों तरफ उन्होंने देखा
अनेक रुद्र खड़े थे । स्वामीजी ने पूछा कि आप कौन हैं ?
सबों ने कहा हम लोग रुद्र हैं । हमारी संख्या एक करोड हैं ।
दिन पूर्व हमलोगों ने भगवान शिव की पूजा की थी । अभी
शिवलिंग प्रगट हुए हैं वे हमारे उपास्य देव हैं । समय की गति
यह तीर्थ लुप्त हो गया था । कृपा करके आप उसका उद्धार
जिये ।

इतनी बातें सुनने के बाद श्रीस्वामीजी ने हँसकर कहा 'तथास्तु'
दिन उस लिंग की ख्याति हुई । करोडों रुद्रों से सेवित होने
कारण भगवान सदाशिव का रुद्र कोटि नाम रखा । अब श्री-
चार्यजी दिन के बारह बजे के लगभग उस वेदाचल पर्वत पर
अनमना सा घूमने के लिये निकले । अचानक एक घटना घटी ।

उनके सामने दो बड़े विशाल पक्षी आ कर खड़े हो गये। पक्षि... ने मानव वाणी में उनकी स्तुती की। स्वामीजी ने पूछा कि आप कौन हैं?

पक्षी होने पर भी आपको मानव वाणी कहाँ से मिली। पक्षियों ने कहा कि हम ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से हैं। हमारी संख्या ... थी। प्रतियुगान्त में दो-दो मुक्त होते गये। दो कलियुगान्त के लिये ... शेष हैं। स्वामीजी ने कहा कि आप सबों ने बड़ी कृपा की कि ह... को दर्शन दिया। अब आप मेरी बात माने तो मैं यह कहूँगा कि मानव कल्याण के लिये प्रतिदिन आप यहाँ पर आया करें और सम... गत जनता को दर्शन दिया करें। आज़ से इस वेदगिरि का नाम पक्षितीर्थ होगा। तभी से आया हुआ पक्षी तीर्थ यह नाम आज ... सिद्ध है।

श्रीस्वामीजी का जन्मभूमि की ओर पदार्पण

जब आचार्य श्री, श्रीरङ्गम्‌जी में थे वहाँ सत्संग चल रहा था ... सम्पूर्ण दक्षिण प्रदेश में स्वामीजी के आने का समाचार प्रचरित हो ... गया था। धीरे धीरे यह समाचार दक्षिण (मदुरा) में आ... श्रीविष्णुस्वामीजी के माता-पिता को भी, प्राप्त हुआ। माता-पिता का हृदय स्वामीजी के दर्शन के लिये उमड़ पड़ा। श्रीदेवेश्वरभट्टजी ने यशोदा देवी से कहा कि शान्ति से आप यहीं रहें और मैं जाऊँगा ... जैसे हो सकेगा मैं उनको अवश्य लाऊँगा।

संसार में एक माँ का हृदय ऐसा होता है जिसको माता ...

...ती है। भला बताइये कि जगत् में माँ कौशल्या को छोड़कर इस तरह ... कहेगी कि हे पुत्र! तुम बन को जाओ, किन्तु नहीं, माँ यशोदा ... कहा था और आज उसी पुत्र के दर्शन के लिये हृदय जल बन ... आँखों से बरसता है। धन्य है माँ तुमने अपने हृदय को पकड़ ... खा। यशोदाजी कहती है आप जावें, देवतनु को ले आवें! इस ... वे देवतनु नहीं रहे किन्तु विष्णुस्वामी हो गये। अतएव ... चार्य श्रीविष्णुस्वामीजी को लाना आवश्यक है। भगवान ... का कल्याण करें। मेरी यही मङ्गल कामना है। श्रीदेवेश्वरभट्टजी ... अवस्था ही कुछ विचित्र थी। उन्हें ज्ञान नहीं, किस दुनियाँ में ... रहे थे। आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी का सम्पूर्ण बालचरित्र उनके ... छाया की तरह नाच रहा था। अभी देवतनु उनके गोद में ... था। प्रत्येक क्रियाओं का स्मरण कर, उनकी आत्मा लोकोत्तर ... बन जाती थी। ध्यान भङ्ग हुआ सहसा एक दीर्घ निश्वास के ... मुख से निकल पड़ा कि अब तो वह आचार्य श्रीविष्णुस्वामी ... गया है। मैं वहाँ जाऊँगा। क्या आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी मुझे ... नेंगे? क्या मैं यह कहूँगा कि मैं आप का पिता हूँ। आप ... यहाँ चलिये? नहीं? यह मुझ से नहीं कहा जायगा। अब ... हमारे नहीं रहे। अब तो जीव मात्र के बन गये। आचार्य हो ... हैं। अब तो शायद मुझे पहचानेंगे भी नहीं। आयेंगे भी नहीं। ... जीवों में और हमारे में उनके लिये अन्तर ही क्या है। तो क्या ... नहीं जाऊँ? नहीं, जाऊँगा तो अवश्य। परिणाम जो हो?

इधर देवेश्वरभट्ट इस प्रकार विचार कर रहे थे उधर यशोदा देवी अचेतन होकर पड़ी थी। सहसा दोनों की चेतना एक साथ वापस लौटी। दोनों ने एक दूसरे को देखा। दोनों के मुख से निकला क्या देवतनु आ गये। दोनों एक से प्रत्युत्तर चाहते थे। अब दोनों को वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हुआ। दोनों शान्ति से विचार में प्रवृत हुए। इस तरह दोनों का परामर्श चलता रहा कि पाण्डयनरेश श्रीमलयध्वज को आचार्यजी का आगमन ज्ञात हुआ।

निजी मन्त्री को देवेश्वरभट्ट के घर पर भेजा, उसने आकर देखा कि घर में किसी प्रकार की योजना बनायी जा रही है। मन्त्री महोदय ने देवेश्वरभट्ट के चरणों में नमस्कार किया। और राजा का समाचार सुनाया। श्रीदेवेश्वरभट्टजी ने कहा कि समाचार मुझे ज्ञात है। मैंने महाराजा साहब को समाचार देना भूल गया था मैं आज ही आचार्यश्री को लेने के लिये जा रहा हूँ। अभी मैं आप से मिलने के लिये ही आ रहा हूँ। मन्त्री के चले जाने के बाद श्रीदेवेश्वरस्वामी ने यशोदा देवी को समझा-बुझाकर राजा श्रीमलयध्वज से मिलने के लिये प्रयाण किया। अनेक औपचारिक बातों के बाद राजा ने कहा कि सुना जाता है कि देवतनु आये हैं। श्रीरङ्गम् में इस समय उनका निवास है। अब तो वे आचार्य श्रीविष्णुस्वामी बन गये हैं। इस समय हजारों शिष्य उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। उनकी अवस्था भी अधिक हो गई।

देवेश्वरभट्ट की आँखों में से आँसु की धाराएँ चल पड़ीं। राजा भी रोने लगे। कुछ देर के बाद श्रीदेवेश्वरभट्ट ने कहा कि मैं आज

उनको लेने के लिये जा रहा हूँ। सभी तरह की तयारी भी मैंने करली है। राजा ने कहा कि नहीं आप ऐसे नहीं जा सकते हैं। कारण कि अब वे केवल आप के नहीं हैं अब एक महान् आचार्य हैं। इस लिये मेरा विचार है कि आचार्यश्री को राजा तथा समस्त प्रजा की ओर से निमन्त्रण भेजा जाय। आप हमारा तथा हमारी प्रजा का प्रतिनिधि बन कर जाइये। यदि विचार आपको स्वानुकूल प्रतीत होता हो तो शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं है। नगर के नागरिकों की एक सभा बुलाई जाय तथा बैधानिक प्रस्ताव रूप से यह निश्चय किया जाय। श्रीदेवेश्वरभट्ट अनुमति दे दी, सायं काल में सभा का आयोजन किया गया। जिन लोगों ने सुना, सभी उपस्थित हुए। माताओं एवं बहिनों की उपस्थिति थीं। स्वयं महाराज श्रीमलयदेवजी ने प्रवचन किया जिसमें आचार्यश्री की विशेष महत्ता का वर्णन था। सर्वमत से यह पास किया गया कि राज तथा प्रजाओं के प्रतिनिधि बन कर श्रीदेवेश्वरभट तथा और भी चार ग्रामजन में से कोई जाय। निश्चय हो जाने के बाद-एक राज्य के वर्तमान मन्त्री नगरशेठ तथा दो प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ श्रीदेवेश्वरभटजी जायें।

उस तरह निश्चय किया गया कि मधुरा (मदुरा) में श्रावण मासिक महोत्सव में उनको अवश्य बुलाया जाय। बाद में पाँच व्यक्ति आचार्य श्री को लेने के लिये श्रीरङ्गम में गये। पहुँचने के बाद सभी ने आचार्यश्री का दर्शन किया। आप श्री की अलौकिक छटा, दिव्य तेज, ईश्वरीय प्रतिभा को देखकर श्रीदेवेश्वरभटतो लिखित चित्र की तरह स्तब्ध हो गये, क्या कहूँ क्या न कहूँ। जब आचार्यश्री को ज्ञात

हुआ कि मधुरा नगरी के लोग आये हैं तो रात्रि को एकांत में मिलने के लिये समय दिया । श्रीरङ्गम में उन सभी को रहने तथा भोजन आदि की समुचित व्यवस्था की गई । सभी ने आराम किया उसके बाद रात्रि को सभी लोग आचार्यश्री के निजी कक्ष में गये । सभी के हाथों में फूल की माला, अन्तःकरण में अपूर्व उल्लास तथा नेत्रों में अश्रुकण थे । सप्रेम मालाएँ अर्पण की गयीं । सभी ने दण्डवत् प्रणाम किया । श्रीदेवेश्वरभट अन्यमनस्क से सब के पीछे खडे थे । कुछ बोलने का भी साहस नहीं हो रहा था । जब आचार्यश्री के नेत्र पुत्र वियोगाग्निदग्ध पिता पर पड़ी जिनकी आँखों से निरन्तर आनन्दाश्रु की धारा चल रही थी । जो साष्टाङ्गप्रणिपात करना चाहते थे । श्रीस्वामीजी आसन से उठे और पिताश्री के गले में चिपट गये । कुछ समय तक एक से एक चिपटे रहे । इस मधुर मिलन में किस को कितना आनन्द मिला यह लेखनी का विषय नहीं है । जब दोनों अलग हुए तब दोनों ने एक दूसरे को देखा और बिना बोले बैठ गये । थोड़ी मौन के बाद आचार्यश्री ने पूछा कि मां का स्वास्थ्य कैसा है । श्रीदेवेश्वरभट ने उचित उत्तर दिया । उसके बाद राज्यपरिवार का तथा समस्त नगर निवासियों का समाचार श्रीआचार्यजी ने पूछा ! उसके बाद कुमार श्रीमलयध्वज को समाचार भी पूछा, राज्य के वर्तमान प्रधान मन्त्री, जिनका नाम श्रीअनन्तम्भट था । जो सम्बन्ध में आचार्य श्री के बड़े भ्राता लगते थे । आचार्यजी ने कहा कि आपकी मातुःश्री सहित समस्त नगर सकुशल हैं । कुमार श्रीमलयध्वज अब कुमार नहीं रहे उनके पिता पाण्ड्यविजय श्रीचन्द्रध्वज का गोलोकवास हो गया,

आजकल कुमार श्रीमलयध्वज ही राजगद्दी पर हैं । अपने पिता के ...ान ही सधर्म प्रजा का पालन कर रहें । उन्होंने यह भी ...या कि हम सब आपको लेने के लिये आये हैं । यह सुनकर ...चार्यश्री ने महाराज श्रीचन्द्रध्वज के निधन पर शोक प्रकट किया ...था चलने की अनुमति देदी ।

अनुमति प्राप्त करने के बाद सभी लोग बड़े आनन्दित हुए । ...का समाचार भेज दिया गया मधुरा में आचार्यश्री के स्वागत की ...री होने लगी । समस्त राजमार्ग पर अनेक प्रकार के भव्य स्वागत ...का निर्माण होने लगा । कितने स्थानों पर नये दरवाजे बनाये ... । समस्त नगर में नवाशोक के पत्तों का तोरण बनाया, नवा-...ों पर पत्र–चौराहों पर मङ्गलबोधकस्वस्तिक आदि चिह्नों का ...ण किया गया । राजमहल भी अत्युत्तम ढ़ङ्ग से सजाया गया । ...घोड़े रथ आदि समस्त चीजें श्रृङ्गार युक्त बनाई गयीं सैनिक ...स्वागत के लिये तैयार हुआ । पण्डित लोग मंगलगान के लिये ...र हो गये । इस नगर के वैश्य वर्गों ने अपनी दुकानों को खूब ...र्य पूर्ण बनाया । मधुरा नगरी के सभी लोग आचार्यश्री के पवित्र ...न के लिये अत्युत्सुक हो गये । आस पास का स्त्री समाज मिलकर ...भट के घर पर आया । सभी ने श्रीयशोदा देवी का अभिनन्दन ... । कुछ दास दासियाँ मिलकर घर को सजाने में संलग्न थीं । सभी ...योग दिया । सम्पूर्णतया घर सजा दिया गया । पूरी तैयारी के ...आबालवृद्ध सभी लोग निर्निमेष दृष्टि से आचार्यश्री के दर्शन के ...आगमन की प्रतिक्षा करने लगे ।

इधर श्रीआचार्यजी ने जाने की अनुमति दे दी थी। दूसरे दिन श्रीरंगम में एक महती सभा की गयी। सभी ने श्रीदेवेश्वरभट्ट का परिचय कराया भटजी ने भी गद गद कण्ठ से कुछ प्रवचन किया। कहा कि उपस्थित सज्जनो ! आप सबों ने मेरा परिचय जाना मुझे आचार्यश्री का पिता बताया किन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। स्वच्छन्द गगनविहारी चन्द्र की तरह जो प्राणीमात्र को प्रकाश देता है–उसको अपना पुत्र कहकर स्वार्थवश एक घडे में बन्द रखना मैं नहीं चाहता। पिता था, किन्तु कुमार देवतनु का। आचार्यश्री विष्णुस्वामी तो जगत के आचार्य हैं। संसार के स्वामी हैं। मैं भी उनको अपना आचार्य ही मानता हूँ। जिस तरह सभी लोग प्रार्थना करते हैं। उसी तरह मैं भी प्रार्थना करने आया हूँ। आनन्द की बात है कि आपने जाने की अनुमति भी दी है। मैं इतना से सन्तुष्ट हूँ। उपस्थित जनता ने तालियां बजाईं। हर्षनाद किया देवेश्वरभट के गले में एक पुष्प की माला पहनाई गयी–कल यात्रा का निश्चय किया गया। सभा विसर्जित की गयी। सभी लोग आश्चर्य तथा आनन्द के साथ अपने अपने घर गये। श्रीदेवेश्वरभट तथा सभी मधुरा निवासी व्यवस्थित तथा स्वस्थ रूप से अपने निवास स्थल पर गये।

दूसरे दिन प्रातः काल में ही पाण्ड्य नरेश श्रीमलयध्वज का भेजा हुआ रथ आगया। आचार्यश्री की यात्रा का समारम्भ होने लगा। एक सुन्दर सिंहासन सजाया गया। षोड़शोपचार से पूजा, आरती की गई। हजारों ने फूलमाला पहनाई। सुन्दर सजे रथ पर

आचार्यश्री विराजे और रथ चलने लगा। सभी ने जय जय कार मनाया और परमानन्द के साथ आचार्यश्री को विदाई की गयी। रथ धीरे–धीरे चलने लगा। नगर के सीमा तक सभी लोग पहुँचाने आये। फिर आचार्यश्री ने सब को समझाया बड़ी कठिनता से लोग आँखों में प्रेमाश्रु लेकर निज स्थान को गये तथा आचार्यश्री का रथ आगे बढ़ा। महाराज श्रीमलयध्वज की ओर से मधुरा से श्रीरंगम (त्रिचना पल्ली) तक एक सुन्दर नये मार्ग का निर्माण किया गया था। मार्ग में अनेक स्थानों पर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों के गमले रक्खे गये थे। मार्ग की दोनों ओर आये हुए वृक्षों के सहारे से तथा यत्र-तत्र नवीन स्तम्भ गाढ़ कर रंगीन कागजों के तोरण लटकाये गये थे। जहाँ तहाँ जल, जलपान तथा साधारण तथा विश्राम की व्यवस्था की गई थी। एक बहुत बड़ी शोभा यात्रा (जुलूस) के साथ, जिस में अनेक शृङ्गार पूर्ण हाथी, दिव्यालंकारयुक्त घोड़े तथा अनेक चमत्कृत द्रव्यों से सजाये हुए रथ थे, स्वामीजी का पदार्पण हो रहा था। सम्पूर्ण मार्ग एक सुव्यवस्थित नगर जैसा प्रतीत होता था। इस तरह त्रिचना पल्ली से लेकर मधुरा तक आचार्यश्री की स्वागत व्यवस्था की गई थी। अब स्वामीजी का रथ मधुरा की सीमा में आगया।

इधर नगर निवासियों को प्रतीत हुआ कि आचार्यश्री का पदार्पण हमारी सीमा में हो गया। फिर क्या था ! जिस तरह शरदकालीन पूर्णिमा के दिन दैव प्रेरित उल्लास से महासागर उमड़ पड़ता है। चन्द्रमा की प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण उमंगों और तरंगों के साथ आकाश की ओर दौड़ पड़ता है। ठीक उसी भाँति आज दक्षिण (मधुरा)

नगरी उमड़ पड़ी थी। आबालवृद्ध सभी लोग आचार्यश्री के मधुर मनोहर मंगलमय दर्शन के लिये दौड़ पड़े। मैं पहले दर्शन करूँ, मैं पहले दर्शन करूँ, यही भावना सबके हृदय में किलोल करती थी। इस लिये सब एक दूसरे से आगे दौड़ जाने के लिये प्रयत्न शील थे। बड़ा मनोहर दृश्य था उस नगर का। न कोई किसीका कुछ सुनता था, न कोई किसी से कुछ पूछता था। सभी के अन्तःकरण में एक ही आनन्द, एक ही उल्लास, एक ही भावना नाच रही थी कि सर्वप्रथम मैं अपने सिर को स्वामीजी के चरणों में रक्खूँ। यह तो जनता की दशा थी।

उधर पाण्ड्य नरेश महाराज श्रीमलयध्वज ने भी प्रेम पूर्ण तथा आन्तरिक श्रद्धा के साथ स्वागत की तैयारी की। उनके अन्तःकरण में एक ऐसा अपूर्व सागर उमड़ रहा था जिसका वर्णन लेखक की बुद्धि से बाहर का विषय है। क्यों न हो महाराजा श्रीमलयध्वजजी आज अपने पूर्व सहचर अन्तेवासी ब्रह्मचारी देवतनु का एक सम्प्रदायाचार्य के रूप में स्वागत करने जा रहे हैं। जरा सोचने की बात है। एक तो संसार में मित्र मिलन को सुधा की धारा बताया गया है। दूसरे मित्र की अवस्था ऐसी हो जिसके सामने देव भी नतमस्तक होते हों तो एक सुहृद मित्र के अन्तःकरण में कैसा तरंग होगा यह केवल अनुभव का विषय है वाणी अथवा लेखनी का विषय नहीं।,

इस तरह समस्त नागरिकों के साथ राजा भी सबसे आगे होकर आचार्यश्री का स्वागत करने नगर के सीमा पर गये। कुछ क्षणों के बाद जब सामने-सामने प्रत्यक्ष दोनों दल उपस्थित हुए

दोनों अग्रगामी व्यक्तियों ने एक दूसरे को देखा। दोनों के अन्तःकरण में कुछ धुंधली सी स्मृति थी, नवीन सुखानुभव था। एक दूसरेने एक दूसरे को पहचाना, उसके बाद मलयध्वज ने आचार्यश्री के चरणों में साष्टांग प्रणिपात किया। अपने निर्मल नेत्रों के जलकणों से आचार्यश्री के चरणों को धो दिया। आचार्यश्री ने बड़ी शान्ति के साथ कहा, आओ कुमार मलय, नहीं नहीं ! पाण्ड्य नरेश श्रीमलयध्वजजी आइये हम सब मिलें, हृदय से हृदय को लगावें। महाराज श्रीमलयध्वज ने विनम्र वाणी से कहा कि नहीं देव मैं उचित स्थान में हूँ। मुझे अपने चरणों में ही रहने दीजिये। उसके बाद आचार्यश्री ने बलपूर्वक उठाकर हृदय से लगाया और पूर्ण समृद्धि का आशीर्वाद दिया। तदनन्तर सभी नागरिकों ने यथायोग्य स्वागत कर फूल मालाएँ पहनाईं, आनन्दयुक्त जय-जयकार मनाया। स्वागत विधि पूर्ण होने के बाद आचार्यश्री धीरे धीरे पूर्व परिचित किन्तु कुछ भूले हुए मार्ग से निज पूरी मदुरा की ओर चलने लगे।

जब देवी श्रीयशोदाजी को ज्ञात हुआ कि मेरा देवतनु अथवा संसार का आचार्य श्रीविष्णु स्वामी नगर की सीमा में प्रवेश कर रहे हैं। सभी नर-नारी नागरिक आपके स्वागत के लिये जा रहे हैं। तब आपने भी प्रिय पुत्र के दर्शन के लिये विचार किया। परन्तु न मालूम क्यों जाने से पहले उनको अचेतना में पड़ जाना पड़ा। यह भी एक सोचने की बात है कि पचीसों वर्षों के बाद बिछुड़ा हुआ पुत्र नगर में एक महान बन कर आ रहा है। उस समय उस

पुत्र वियोगिनी माँ का हृदय किस स्थिति में होगा ? इस तरह सारा नगर आचार्य श्री के स्वागत में संलग्न था और माँ थी बेहोश। जब आचार्यजी की सवारी नगर की प्रमुख सड़कों पर घूमती हुई श्रीदेवेश्वर भट के मकान के सामने गई तब दरवाजे पर अथवा अन्यत्र कहीं भी माताजी को न देख कर कुछ लोग मकान के अन्दर गये। जिसमें श्रीदेवेश्वर भट भी थे। सभी ने जाकर देखा कि आप तो बेहोश हैं। मुख के ऊपर कुछ जल के छांटे देने के बाद चेतना आई, और उनके मुख से सहसा निकल पड़ा कि मैं देवतनु को अपने गले से लगाऊँगी। सामने देखती है तो भट जी तथा नगर के अनेक नागरिक खड़े हैं। सब को देख कुछ संकुचित सी होकर देवेश्वरभटजी से पूछा कि कहाँ है मेरा लाल ? सभी ने समझाया कि आप पूर्ण स्वस्थ हो जाइये। वे आप के लाल नहीं हैं अपितु प्रभु के लाल हैं, जगत के लाल हैं, और आपके दरवाजे पर खड़े हैं। इतना सुनकर माताजी सबसे आगे हो दरवाजे पर आई जहाँ सामने सवारी खड़ी थी। एक दिव्य रथ पर आचार्य श्रीविष्णुस्वामी विराज रहे थे। माताजी ने दूर से देखा उस अपूर्व तेज, अलौकिक ऐश्वर्य आध्यात्मिक प्रकाशमय मुखमण्डल को देख कर माताजी चित्रलिखे सी खड़ी रह गई। न आगे चलसकी न पीछे। बोलना तो असम्भव था ही, केवल पिघले हुए हृदय के प्रतीक दो अश्रु बिन्दुओं से स्वागत कर बोली, कि ये तो आचार्य श्रीविष्णुस्वामी हैं। धीरे-धीरे रथ आगे बढा। अनेक जगहों पर स्वागत तथा आरती की गयी। अब रथ राजमहल के सामने आया। महाराज

…लयध्वज ने श्रीआचार्यजी का स्वागत किया। रथ से उतर ने के …द राजमहल में पधरामणी हुई और वहीं निश्चित मुकाम रखा गया।

जब से आचार्यश्री ने मथुरा नगरी में पदार्पण किया तभी से वह पुरी अत्यधिक मधुर हो उठी । नित्य नये नये उत्सव होते थे। पुरी का नाम ही उत्सव पुरी हो गया। सभी नर-नारी आपका दर्शन कर अपने को अहोभाग्य मानते थे। प्रतिदिन सभा होती थी। स्वामीजी शुद्ध धार्मिक उपदेश देते थे। एक दिन स्वामीजी ने उपदेश देते समय कहा कि उपस्थित भगवत भक्त जीवो ! आप सबों को ज्ञात होना चाहिए कि हम सब जीव हैं। इस बात को जानने से पहले जीव के स्वरूप को जानना आवश्यक है। जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं। ब्रह्म जगत् पूर्व सत् स्वरूप में था। उसमें विक्षा उत्पन्न हुई कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। उसी ईक्षण से ब्रह्म में से अनेक स्वरूप प्रगट हुए। साकार, सूक्ष्म, परिच्छिन्न, चित्प्रधान आदि अनेक अंश ब्रह्म में से ही प्रगट हुए। जिस तरह अग्नि से अनेक स्फुलिङ्ग निकलते हैं उसी तरह ब्रह्म में से जीव निकलते हैं। वे जीव ब्रह्म रूप होने पर भी ऊँच-नीच परिस्थित्यनुकूल भावना से प्रेरित होने से वे जीव कहलाते हैं। जीव में जो विशुद्ध धर्म आभास होता है, उसका कारण यह कि ब्रह्म में (के) जिन गुणों का तिरो भाव है, वह हमारे जीवत्व का कारण है। इस तरह ब्रह्म को अपने स्वरूप का तथा जीव का भोग सिद्ध करने की इच्छा हुई, तब आनन्दांश भाग का कुछ अंश तिरोहित कर अपने ऐश्वर्य को छिपा दिया। ऐश्वर्य के चले जाने से

दीनता, पराधीनता आदि जीव का पूर्ण गुण उसमें आ गये। इसी लिये शुद्ध ऐश्वर्य के तिरोहित होने से जीव में दुःख सहन करने की शक्ति आई। यश के अदृश्य होने से हीनता आई। श्री के अदृश्य होने में जन्म–मरण की पराधीनता आई। ज्ञान के अदृश्य होने से देह वगैरह में अहंकार बुद्धि तथा वैराग्य के तिरोहित होने से विषयों में आशक्ति आई और जीव ऐश्वर्यपूर्ण ब्रह्म होने पर भी बन्धनयुक्त हो गया। मुख्य तथा जीव के तीन प्रकार के लक्षण हैं।

(१) अनादित्वे सति निर्गुणत्वे सति प्रकृतिनियामकत्वे सति अहं वित्तिवेद्यत्वम्, (२) स्वयं प्रकाशत्वम्।

(३) और विश्वगतगुणदोषसंबन्धाभावेऽपि सम्यक्-संसर्गवत्त्वम्।

इसमें पहले लक्षण का उपयोग आत्मा का प्रवृत्ति वगैरह से भेद करने के लिये व्यक्तिरेकानुमानद्वारा आभावात्मक प्रयोग होता है। दूसरे लक्षण का उपयोग आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करने के लिये, तीसरे लक्षण का उपयोग गुणदोष रहित समस्त जगत से सम्बन्ध सिद्ध करने के लिये होता है। जैसे निद्रा के अन्दर ज्ञान और कर्म दोनों प्रकार की इन्द्रियों का लय हो जाता है। उसके बाद व्यक्तनिद्र होने पर हम कह उठते हैं कि बहुत सुखपूर्वक सोया। अर्थात् उस लयावस्था में भी एक स्मृति जागृत रहती है। मैं सोया यह स्मृति साक्षात् विषयानुभव से जन्य नहीं है। जगत के पदार्थों अनुभव से जन्य यदि इस स्मृति को मानेंगे तो पदार्थों का भी अनुभव

होना चाहिये इस लिये स्वाप्निक अनुभव कोई विलक्षण तथा निर्वि-षयक अनुभव है। पदार्थ और काम के भेद से भिन्न-भिन्न स्मरणों में जो जीव में अहंकार का अभिमान होता है वैसे आत्मा निद्रा में अहंकार से मुक्त होने के कारण विषय तथा पदार्थ बिना का होकर स्वतः अनुभव स्वरूप रहता है। दूसरे समय में जागृतावस्था के अन्दर जीव का जीवत्व अस्पष्ट है और निद्रा में उसका स्वयं प्रकाशत्व परिलक्षित हो जाता है। यही जीव का स्वरूप है। जब तक जीव को तुर्यावस्था में जाने के बाद स्वयं प्रकाशत्व का अनुभव न हो तभी तक वह जीव है, और इस स्वयं प्रकाशत्व की प्राप्ति का कारण प्रभु की अनन्य भक्ति है। उपस्थित भगवत् भक्त प्राणियो! अब आप सब समझ गये होंगे कि जीव नित्य है। उसकी उत्पत्ति होती नहीं है। कारण कि जिसका नाम और रूप के साथ सम्बन्ध होता है उसी की उत्पत्ति होती है। जीव जीव का उस तरह का सम्बन्ध नहीं है। जीव तो अग्नि में से निकली हुई चिनगारियों की तरह ब्रह्म में से निकलता है। इसीलिये तियों ने कहा है:—

अयमात्मा अजरः अमरः

स्मृति में भी, न जायते म्रियते वा कदाचित् नायम् भूत्वा भविता वा न भूयः।

कहा गया है। जीव के जन्म-मरण वगैरह सभी कार्य औप-चारिक हैं, गौण हैं। जन्म और मरण यह तो शरीर का धर्म है। किसी भी प्रकार से उन धर्मों के साथ जीव का संबन्ध होता नहीं है।

उपस्थित सज्जनो ! जीव ज्ञाता भी है । सब चिजों को जानता है। कर्ता और भोक्ता भी है । यही हमारी स्थिति है । इस लिये हमारा कर्तव्य है कि मन–वचन–कर्म से परमात्मा की अर्चा करें । इस तरह आपका धर्मोपदेश समाप्त हुआ । जय-जय कार के पश्चात् सभा विसर्जित हुई । मथुरा नगरी के राजा, प्रजा तथा विद्वान लोग सभी ने आचार्यश्री के सिद्धान्त का स्वागत किया, सभी ने शिष्यता स्वीकार की ।

आचार्यश्री का धर्मोपदेश पूरा चारमास तक चलता रहा । अब आचार्यश्री ने कहा कि भाइयो ! मुझे श्रीरामेश्वरम् का दर्शन करने जाना आवश्यक है । इससे पहले मैं माता का चरण स्पर्श करूँगा और जीवन में सम्पूर्ण सफलता प्राप्ति के लिये आशीर्वाद प्राप्त करना चाहूँगा । अभी तक माताश्री यशोदादेवी प्रति दिन आचार्यश्री का दर्शन करने तथा प्रवचन सुनने आती थी । उनके अन्तःकरण में से पुत्र देवतनु की भावना निकल गई थी कारण कि श्रीविष्णुस्वामी के शरीरों में देवतनु के कोई चिन्ह ही न रह गये थे । इधर आचार्यश्री विष्णुस्वामी ने घर जाकर माता का चरण स्पर्श करने का निश्चय कर लिया । एक दिन पूर्ण व्यवस्था की गई । आचार्यश्री निजपूर्व गृह में पधारे माताजी ने कुछ उन्मती सी होकर आपका स्वागत किया । अभी तक माताजी को यह निश्चय नहीं हो पाया था कि मैं पुत्र कहूँ या आचार्य ? जब आचार्यश्री अति निकट में आ गये तब वह मातृ हृदय सहसा फूट पड़ा और हे पुत्र ! कह कर चरणों में गिर पड़ी । आचार्यश्री ने उठा कर बैठाया अश्रु पूर्ण नेत्रों से

आश्वासन दिया कि माँ ? माता और पुत्र यह तो शरीर सम्बन्ध की बात है, वास्तव में हम और तुम दोनों ही चिदानन्दांश हैं । जहाँ तक शरीर का सम्बन्ध है मैं आपका पुत्र ही रहूँगा । चाहे जगत के लिये कुछ भी बन जाऊँ लेकिन तुम्हारे लिये मैं देवतनु ही हूँ । इस लिये मैं तुम्हारे चरणों में नमस्कार कर चरण रज को नेत्र और सिरस्थान में लगाता हूँ । आप मुझे आशीर्वाद दें कि जीवन में सफलता मिले । भारत में भक्ति का प्रचार हो । प्रत्येक जीव अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने । इतना सुनकर जसोदा देवी ने गद् गद् कण्ठ से अस्पष्ट शब्दों में कहा, पुत्र ! तथास्तु । इस तरह आचार्यश्री ने माँ का आशीर्वाद लेकर पिताजी की तरफ देखा और मन में ही आशीर्वाद की याचना की । भट्टजी तो पहले ही से तैयार थे । उन्होंने उपस्थित समस्त जनता की तरफ देखकर कहा कि भाइयो, मैं क्या आशीर्वाद दूँ ? वास्तव में आज मैं धन्य हूँ । मेरे सौभाग्य की ईर्षा से देवताओं के अन्तःकरण भी जागृत हैं । आज मुझे वत्स देवतनु को आचार्य के रूप में देखकर जिस आनन्द की उपलब्धि हो रही है उसका तो केवल अनुभव ही हो सकता है । वास्तव में अब देवतनु नहीं कहना चाहिए, ये तो भक्ति के परमाचार्य हैं । यदि आप शारीरिक सम्बन्ध की भावना से आशीर्वाद चाहते हैं तो मैं कोटिशः आशीर्वाद देता हूँ । वास्तव में जिस प्रभु ने आपको आचार्य बनाया वह सफल तो करेगा ही । आपने मुझ से आशीर्वाद लेकर मेरी महत्ता बढ़ाई है उसके लिये मैं अपना ही अहोभाग्य समझता हूँ । ऐसा कह कर देवेश्वरभट्टजी शान्त हो गये । स्वागत विधि

समाप्त होने के बाद आचार्यश्री राजभवन में आये और रामेश्वरम् का यात्रा का विचार विमर्श एवम् तिथि का निर्णय होने लगा। मधुरा से रामेश्वरम् तक सुव्यवस्थित मार्ग की व्यवस्था की गई। आवश्यकतानुसार विश्राम स्थल भी बनायें गये। इस तरह पूर्व निश्चय के अनुसार एक दिन आचार्यश्रीने रामेश्वर की ओर प्रस्थान किया। महाराज श्रीमलयध्वज ने निजी रथ को सजाया था। रामेश्वरम् तक जाने के लिये सैनिक व्यवस्था की गई थी। आचार्यश्री के साथ रहने वाली सन्त मण्डली के लिये भी उचित यान का प्रबन्ध किया गया था। इस व्यवस्था के साथ जब आचार्यश्री ने प्रयाण किया तब पुनः एक बार मधुरा नगरी विक्षिप्त सी हो उठी। आबाल वृद्ध सभी लोग अश्रुपूर्ण नेत्रों से आचार्यश्री की विदाई की। माताश्री ने अपने कर कमलों से बनाया हुआ सुन्दर हार पहनाया। ब्राह्मणो ने मंगल गान किया। पिताश्री ने मस्तक पर हाथ रख कर मंगल कामना के लिये प्रार्थना की। उसके बाद समवेतस्वर से आचार्यश्री का जय बोला गया और रथ चल पड़ा। सीमान्त जलाशय के पास आने पर आचार्यश्री ने सब को समझा कर वापस किया। श्रीदेवेश्वरभटजी तथा राजा श्रीमलयध्वजजी इन दोनों ने किसी भी तरह जब लौटना स्वीकार न किया तब आचार्यश्री ने रामेश्वरम् तक साथ आने की आज्ञा देदी और सभी लोग रामेश्वर की तरफ चल पड़े।

आचार्यश्री का रामेश्वर दर्शन

श्रीरामेश्वरम् में आज ऐसा प्रतीत होता था मानों युगान्त के ...चात स्वयं भगवान राम पधार रहे हों। प्रत्येक जन का मन उल्लास ...र्ण था। सम्पूर्ण नगर पुष्प पर्ण तथा कागज के ध्वजाओं से सजाया ...या था। वड़े–बड़े मार्गों पर अनेक सुसज्जित जगह मंगलबोधक ...स्तिक आदि चिन्ह बनाये गये। सभी की आँखें मदुरा से आने ...ले मार्ग पर टिकी थीं। रामेश्वरम् पूर्ण शान्त था। नियमित होने ...ली सागर की गड़ गड़ाहट भी बन्द थी। ऐसा ज्ञात होता था कि ...गर भी आचार्यश्री के दर्शन के लिये मौन समाविस्थ बैठा है। ...स तरह इधर सम्पूर्ण स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं और उधर ...आचार्यश्री का रथ धीरे–धीरे रामेश्वर की तरफ बढ़ रहा था। मार्ग ...में मानामपुरई, राम नाड, पाम्बन आदि अनेक स्थलों पर होता हुआ ...सभी जगहों की धार्मिक जनता का स्वागत को स्वीकार करता हुआ ...न्त में एक दिन रामेश्वर की सीमा पर आगया। रामेश्वर की जनता ...ने जब यह सुना कि आचार्यश्री आगये तब उनका स्वागत करने के ...लिये पूरी तैयारी के साथ नगर की सीमा पर आई। उस समय श्रीरामे-...श्वरम् भी पाण्डय नरेश के शासन में ही था। अतएव सारी व्यवस्था ...मलयध्वज की ओर से ही की गई थी। समुद्र तट पर एक विशाल ...पण्डाल बना। सुन्दर पट कुटीर में स्वामीजी का आसन लगा। सभी ...लोगों के लिये उचित व्यवस्था की गई। स्नान, भोजनादि की भी ...उचित व्यवस्था की गई। यथा समय आचार्यश्री ने सभी के साथ ...जाकर भगवान् श्रीरामेश्वर का दर्शन किया। भगवान् सदाशिव की

षोडशोपचार से पूजा की। उसके बाद सीतातीर्थ, रामतीर्थ, लक्ष्मण-तीर्थ, चक्र तीर्थ, शंख तीर्थ आदि ऐतिहासिक तीर्थ स्थलों का दर्शन किया उसके बाद अपने निवास स्थल पर आ गये। सभा का आयोजन किया गया। धर्मोपदेश हुआ। इस तरह प्रति दिन कथा, प्रवचन, सतसंग, धर्मोंपदेश होने लगा।

एक दिन आचार्यश्री सायम् आठ बजे अपने पट कुटीर से निकल कर वारिधि तट पर घूम रहे थे। रात्रि के कुछ धूँधले प्रकाश में उनको ऐसा आभास हुआ कि कुछ दूर पर कोई बात कर रहा है। शाब्दिक दिशा का अनुशरण करते हुए कुछ आगे बढ़े तब उन्होंने देखा कि तीन दिव्य मूर्तियाँ सैकत विभाग पर बैठी हैं। अति सन्निकट ज्ञाने पर आचार्यश्री बड़े आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने देखा कि अनुज तथा जगत जननी श्रीजानकीजी के साथ श्रीरामचन्द्र जी बैठे हैं। यह देख कर आचार्य श्रीविष्णु स्वामी ने साष्टांग प्रणिपात करने के लिये अपने शरीर को झुकाया ही था कि परात्पर प्रभु श्रीरामजी ने आचार्यश्री को उठाकर गद्-गद् कण्ठ से गले लगा लिया। श्रीविष्णुस्वामीजी ने कहा, प्रभो! आपने बड़ी कृपा की मुझे दर्शन किया। कहिये क्या आज्ञा है? आपकी मैं क्या सेवा कर सकता हूँ? प्रभु ने थोड़ा मुस्कराते हुए कहा कि मेरी भक्ति का प्रचार ही मेरी सेवा है। यहाँ पर मैं आपको दर्शन देनें नहीं आया था बल्कि यह मेरा नित्यनिवासस्थल है। श्रीरामेस्वरम् में मैं नित्य इसी स्वरूप से निवास किया करता हूँ। जो भक्त यहाँ की यात्रा करते हैं उनकी श्रद्धा के अनुसार दर्शन दिया करता हूँ। अब आप जाओ

और सात्व की भक्ति का प्रचार करो। आचार्यश्री अपने पटगृह में आये और सो गये। दूसरे दिन आपने कन्याकुमारी जाने का प्रोग्राम बनाया।

आचार्यश्री का प्रभास दर्शन

रामेस्वरम् से आचार्यश्री कन्याकुमारी गये। कावेरी में स्नान किया कुछ दिनों तक कन्याकुमारी में निवास करते रहें। फिर वहाँ से द्वारका की ओर चल पड़े। मार्गमें आये तमाम तीर्थों का दर्शन करते रहें। हरिपूरा में गये। वहाँ काफी दिनों तक निवास किया। भक्त भक्तितत्व का उपदेश दिया। जामवातीर्थ में भी कुछदिन निवास किया। इस तरह लगभग चार मास तक घूमते रहे। फिर शीतकाल आने पर द्वारका के मार्ग पर आये। मार्ग में अनेक छोटे-बड़े तीर्थों में उनका स्वागत हुआ—अनेकों स्थानों पर प्रतिदिन उपदेश देते थे। हजारों शिष्य प्रति दिन बनते थे। अत्र भक्त तथा शिष्यों की अधिक संख्या बढ़ जाने से एक बडी जमात हो गयी थी। जिस ग्राम अथवा तीर्थ में जाते थे वहीं मेला जैसा लग जाता था। जहाँ पडाव पड़ता था वहीं एक दूसरा गाम बस जाता था। साथ में उनके कीर्तन मण्डलियाँ भी थीं। जहाँ जाते थे वहीं हरिनामसंकीर्तन का खूब प्रचार होता था। इसी तरह काफी दिन चलने के बाद नासिक पञ्चवटी अनेक आदि शुभ तीर्थों का दर्शन करते हुए आप प्रभास क्षेत्र में पहुँचे।

जब प्रभास क्षेत्र के जनता को यह मालूम पड़ा कि भक्ति के

परम आचार्य श्री विष्णुस्वामी आ रहे हैं। तब वहाँ पर लोगों ने नगर आदि को सजाकर आचार्य का स्वागत किया। आपके निवास के लिये त्रिवेणीतट पर विशाल पट मण्डप बनाया गया। आचार्य श्री ने त्रिवेणी में स्नान किया। अनेक दिनों तक निवास करते रहे। जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण को वाण लगा था वहीं पर गये, उस स्थल का दर्शन किया। उस वाण तीर्थ में बैठकर मुक प्रार्थना की आपने यादव स्थली को भी देखा, जहाँ पर यादव लोग परस्पर लडे थे। उसके बाद सौराष्ट्र नरेशने आपकी शिष्यता स्वीकार की 'जब सोमनाथ भगवान का दर्शन किया तो सोमनाथ मन्दिर भग्नप्रायः हो चुका था। आप उस मन्दिर के जीर्णोद्धार की व्यवस्था की। अनेक–दिनों तक निवास कर वहाँ से तुलसीश्याम गये।

गिरनार पर्वत का दर्शन

उसके बाद अनेकों स्थानों में घूमते-घूमते आप रैवतक गिरि पर आ गये। वहाँ भी आपकी खूब स्वागत किया गया। महात्माओं ने कहा कि सुना जाता है कि यहाँ पर सिद्ध महात्मा विचरण करते हैं। आचार्य ने मन ही मन सबको प्रणाम किया। गिरि के पास में ही अपना पड़ाव डाल दिया। जहाँ पड़ाव पडा था वहाँ जल का थोडा अभाव था। इसलिये महात्माओं को बड़ी तकलीफ माळूम पडती थी। अब शिष्य तथा महात्मामण्डलकी संख्या भी दिन प्रति दिन बढ़ती जाती थी। स्वामीजी ने विचार किया कि अब क्या किया जाय। इसी विचार में आप एक दिन रात्रि को अधिक देरतक बैठे

रहे। सभी महात्मा प्रायः सो गये थे। आचार्य श्री को बाहर कुछ आहट माळूम पडा। उठकर बाहर में देखते हैं तो मुरली मनोहर अपनी प्रिय सहचरी लाड़ली प्रिया राधिकाजी के कन्धों पर हाथ रखे खडे हैं। आचार्यश्रीने प्रणाम किया—आनन्दकन्द यशोदानन्दन ने गले लगाकर बताया कि आप सबों को जल का अभाव कष्ट दाई प्रतीत होती है। इसीलिये मैं आया हूँ। कृतयुग के आदि में यहाँ पर ब्रह्मा ने तपश्या की थी। उनके लिये मैंने एक जल कुण्ड का निर्माण किया था। आजकाल के प्रभाव से वह तीर्थ लुप्त प्राय हो गया है उसी तीर्थ का पुनः आविष्कार करूँगा। इतना कहकर प्रभु अन्तर ध्यान हो गये। थोड़ी देर में वहाँ की धरा फट गई। वहाँ एक सुन्दर जलाशय बन गया। प्रातःकाल सभी ने देखा कि जल के अन्दर कुछ तैरता दिखता है। जल से बाहर निकालने के बाद देखा गया कि वह तो लाडिली और लाल की पाषाण प्रतिमा है। आचार्य श्रीविष्णुस्वामी ने एक मन्दिर बनवा कर मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की और भगवान् का नाम श्रीराधा दामोदर रखा तथा कुण्ड का नाम दामोदर कुण्ड रखा। स्मृति स्वरूप आज भी वहाँ श्री राधा दामोदर भगवान् का मन्दिर और कुण्ड है तथा वह कुण्ड श्रीविष्णु स्वामी सम्प्रदायानुयायी महात्माओं का आदरणीय तीर्थ है।

दूसरे दिन कुण्ड तथा श्रीराधा दामोदर की प्रतिष्ठा की धूम चारों ओर प्रसरित हो गई। आश्चर्य के साथ सभी समागत महात्मा तथा जनता ने इस घटना को देखा और सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। जब प्राचीन गिरनार वासी सिद्धों को यह बात माळूम पडी तब

किसी किसी के अन्तःकरण में ईर्षा की ज्वाला भभक उठी। सभी ने विचार किया कि इनकी परीक्षा लेनी चाहिए कि ये कौन है। इस विचार से प्रेरित होकर सिद्धों ने अनेक प्रकार का उत्पात मचाना प्रारम्भ किया। एक दिन एक महात्मा एक सपेरे के रूप में श्री स्वामीजी के सामने आये। श्री स्वामीजी एकान्त में समाधिष्ठ थे। महात्माजी ने जो सपेरे के रूप में थे अपने पिटारी में से दो साँप निकालकर आचार्यश्री के गले में डाल दिये और स्वयं ही बैठकर तमाशा देखने लगे। थोडी देर में वह साँप तो गले में पड़ने के पश्चात् सुन्दर, सौरभमयी माला बन गया। उस सपेरे को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह भागते-भागते पहाड की चोटी पर चढ़ गया। वहाँ अनेक सिद्धों की मण्डली बैठी थी। सबों ने इन हांफते हुए महात्मा को देखकर एक स्वर में कहा भूतनाथ! क्या हुआ? क्यो भय ग्रस्त मालूम पडते हो। इधर भूतनाथ की तो वाणी बन्द हो गई थी। काफी प्रयत्न के बाद इनके मुख से तुतली वाणी निकली कि साँप तो मैंने डाल दिया परन्तु वह तो मा.... .... ला .... हो गया। इस भयातुरावस्था को देखकर सभी को बडा आश्चर्य हुआ। सभी की वाणी बन्द हो गई। बडी देरके बाद एक दूसरे महात्मा ने कहा कि इस अवसर पर मैं जाता हूँ। देखता हूँ कि वह कौन तीसमार खाँ आया है। दूसरे महात्मा भयावह केसरी के रूप में उपस्थित हुए और स्वामीजी के समक्ष जाकर भयंकर गर्जना के साथ मुख से अग्नि की ज्वाला निकालते हुए, भय दिखाने लगे। इधर जो सन्त आचार्यश्री के साथ में थे, वे सब भयभीत हो गये।

भागने के प्रयत्न करने लगे। आचार्यश्रीने सभी को समझाया महात्माओ! क्यों भागते हो, जिसको आपलोग सिंह समझते हैं तो कपिला गाय है। सभी ने बडा आश्चर्य के साथ उधर देखा स्तव में वहाँ एक गाय खडी थी। सब को देखते-देखते वह गाय र्य श्री के चरणों को चाटने लगी। आचार्यश्री ने उसके मस्तक अपने भक्ता-भय दायी कर कमलों को रखा। वह गाय एक सुन्दर त्मा के रूप में बदल गई। महात्मा ने चरणों में नमस्कार कर की याचना की। आचार्यजी ने प्रेम से गले लगाया और क्षमा दी। अनन्य भक्ति का उपदेश देकर वापस भेज दिया।

इस तरह जब ये महात्मा अपनी मण्डली में गये तब इनका रूप ही बदल गया था। गले में आ कण्ठ तुलसी की मालिका विशाल ललाट पर उर्ध्व पुण्ड्र तिलक था। सुन्दर हरिनामाङ्कित वस्त्र चित स्थान पर शोभायमान हो रहा था। इस भव्य स्वरूप को कर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। सभीने क्रोध पूर्ण वाणी द्वारा इन अवहेलना की। इस के बाद महात्मा श्री ने, जिनका नाम आचार्यश्री मुरली मनोहर स्वामी रख दिया था, बड़े विनम्र स्वर में कहा कि त्माओ! वे तो परात्पर प्रभु के अवतार मालूम पड़ते हैं। मैंने का दर्शन शंख चक्रधारी भगवान विष्णु के रूप में किया है। सुनकर, सभी सिद्धों के अन्तःकरण में खलबली मच गयी। है, ढोंगी है, ठग हैं, जादूगर है, इस तरह के अनर्थक शब्द सभी मुख से निकलने लगे। स्वामी श्री मुरली मनोहरजी ने समझाने बहुत प्रयत्न किया किन्तु सब व्यर्थ रहा। इस तरह पुरी मण्डली

में अनेको प्रकार की वातें होने लगीं । कोई भय से कांप रहा था, कितने सिद्धसन्त ही अहंकार वश आचार्यश्री जी को निचा दिखाने का प्रयत्न सोच रहे थे । इस तरह सभी में विचार विमर्श चल ही रहा था कि सभी के सामने महामुनि श्री दत्तात्रेयजी प्रकट हो गये । सभीने उनको साष्टांग प्रणाम किया और उन्होंने आशीर्वाद दिया । जब वातावरण शान्त हो गया तब श्री दत्तात्रेयजी ने पूछा कि आज आप सभी के मुख पर उदाशी क्यों छायी है । सभीने आचार्यश्री विष्णु स्वामी के पराक्रम का वर्णन किया और कुण्ड तथा राधा दामोदर का प्रकट होना बताया । उनमें दो महात्माओं का जो पूर्व कर्तव्य तथा उसका प्रतिफल भी बताया । सभी कथा सुनकर दत्तात्रेयजीने थोड़ा हँसकर कहा कि महात्माओ ! आप सबोंने गलती की । वे तो साक्षात् प्रभु भगवान श्री विष्णु के अवतार हैं । मैं तो उनका स्वागत करने के लिये ही आ रहा हूँ । चलो अब उनका स्वागत करें और उनसे क्षमा की याचना करें ।

आचार्यश्री अपनी सन्त मण्डली में बैठकर सुन्दर प्रवचन कर रहे थें, उसी समय पहाड़ के शिखर पर कुछ बाजे बजते सुनाई पड़े। सम्पूर्ण रैवतक गिरि (गिरनार) सौरभ पूर्ण हो गया। धीरे-धीरे ऐसा प्रतीत होने लगा कि सहस्त्रों की संध्या में लोग निचे उतर रहे हैं। धीरे धीरे आकृतियाँ स्पष्ट हो गयीं । सबोंने देखा कि आनेवालों में से सब से आगे भगवत् स्वरूप श्री दत्तात्रेय जी हैं । उनके हाथों में सुमनोहर सुमन माला तथा कुछ दिव्य फल भी हैं । आचार्य श्री विष्णु स्वामी ने निज आसन से उठकर श्री दत्तात्रेय जी का स्वागत

वा तथा एक दूसरे से गले मिले । बैठ जाने के बाद श्री दत्तात्रेय ने श्री आचार्य जी के गले में माला डाली और सबों ने अपनी–नी माला पहना कर साष्टांग प्रणाम किया । प्रार्थनाएँ कीं । किये अपराधों के लिये क्षमा की याचना की । श्री स्वामीजी ने क्षमा र दिया और सबों को भक्ति का आदेशदिया इसके बाद श्री त्रेय जी तथा श्री आचार्य श्री में बातें होती रहीं । उसके बाद श्री दत्तात्रेय जी शिखर पर अन्तरध्यान हो गये तब आचार्य ने द्वारका की ओर जाने का कार्यक्रम निश्चित किया ।

द्वारका दर्शन

एक दिन आचार्य श्रीने अपनी पुरी मण्डली के साथ सुदामापुरी के लिये प्रयाण किया । वहाँ भी उनका स्वागत किया गया । बड़े नन्द के साथ अपने सुदामापुरी में निवास किया । वहाँ पर भी देश प्रवचन होते रहे । कुछ दिनों तक सुदामापुरी में निवास करने बाद आचार्य श्री द्वारका पुरी में पधारे । एक रात्रि श्री मूल रका में निवास करने के बाद आप दूसरे रोज गोमती द्वारका के ये चल पड़े । वहाँ पहुँच जाने के बाद सुव्यवस्थित स्थान में कुछ नों तक निवास करने लगे । गोमतीपति के दर्शन कर के परा भक्ति उपदेश देकर सभी जनता को संतुष्ट कर आप गोपी तलाब गये। स स्थल का दर्शन किये, जिस स्थल पर, गोपिकाओं को भीलों रातों ने लूटा था । उसके बाद आप बेट द्वारका में पहुँचे । वहाँ सुन्दर व्यवस्थित मण्डप निर्माण किया गया । श्री द्वारक

वासियोंने आचार्य श्री का स्वागत किया व्यवस्थित आवास की व्यवस्था की गयी। रोज उपदेश होता रहा। सभी द्वारका वासियोंने श्री स्वामी जी की शिष्यता स्वीकार की। खूब भजन किर्तन होता रहा। इस तरह श्री स्वामी जी द्वारका में निवास करने लगे। एक रोज आचार्य श्री मन्दिर के विशाल प्रासाद पर घूम रहे थे। सहसा उनके मस्तिष्क मे श्री द्वारकापुरी का माहात्म्य नाचने लगा। विचार मग्न होने पर एकाएक उनके मुख से निकल पड़ा कि क्या यह वही मन्दिर है जिसको कुमार श्री अनिरुद्ध जी ने बनवाया था। उनके पीछे से आवाज आयी जी हाँ यह वही मन्दिर है जो काल की गति से इस अवस्था को प्राप्त है। श्री स्वामी ने पीछे घूम कर देखा तो त्रिभंगी मूर्ति, नटवर स्वरूप द्वारकेश नहीं अपितु लीलाविहारी आनन्द कन्द, परमानन्द, नन्द–नन्दन गोपिकेश खड़े थे। आचार्य श्री ने अति शीघ्र शाष्टांग प्रणिपात किया। व्रजविहारीने आचार्य श्री को उठा कर गाढ–आलिङ्गन किया। अधिक समय तक आचार्य श्री विष्णु स्वामी जी ने परिक्रमाएँ की। मन्दिर की वर्तमान अवस्था पर चिन्ता व्यक्त की। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी ने समझाया कि यह कलिकाल है इसमें तो लगभग सभी तीर्थों की ऐसी ही अवस्था रहेगी। तथापि यदि आप को संतोष नहीं है तो आप इस का जीर्णोद्धार करवा दीजिये। परम प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर आचार्य जीने मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया और आनन्दपूर्वक कुछ दिनों तक निवास किया। मन्दिर की दुर्व्यवस्था से असन्तोष तो था ही, अतः एव अपने शिष्य श्री मुरलीमनोहराचार्य जी को श्री द्वारकाजी में गादीपति

बनाया इन्हीं को कहीं-कहीं कुमारपालाचार्य जी भी कह गया है। इस द्वारका की व्यवस्था को अपने हाथ में लेकर आपने सुव्यवस्थित बनाया। कुछ दिन के बाद नारायण सरोवर के लिये यात्रा की।

श्री नारायण सरोवर तथा अनेक तीर्थ दर्शन

द्वारावती से जलयान की व्यवस्था की गयी। नौका के द्वारा आपने नारायण सर की यात्रा की। कच्छ के राजा श्री कच्छेश्वर जीने आपका भव्य स्वागत किया। नारायण सर पर आपने एक मन्दिर की स्थापना की। प्रभु की सुमनोहर प्रतिमा पधरायी जिन का नाम था–श्री आदि नारायण भगवान् जो आज भी किसी न किसी रूप में वहाँ पर स्थित हैं। मन्दिर की स्थापना कर श्री कच्छेश्वर जी के हाथ में उसकी व्यवस्था देकर वहाँ भी आपने एक शिष्य पुजारी तरीके रक्खा। एक सभा का आयोजन किया गया। उसमें आध्यात्मक तत्व का उपदेश दिया। तदनन्तर आपने सिद्ध क्षेत्र श्री कपिल भूमि के लिये प्रयाण किया। सिद्ध क्षेत्र में आने के बाद आपने श्री कपिल भगवान्, श्रीकर्दममुनि, गदाधर भगवान् तथा माता श्रीदेवहुती जी का दर्शन किया। परम पवित्र श्री विन्दुसर में स्नान आचमन कर आपने कुमारिका, अन्तः सलिला सरस्वती की विशाल सैकत भूमि पर व्यवस्थित पट मण्डप में नियम किया। वहाँ पर ब्राह्मणों का बड़ा समुदाय था। आचार्यश्री के प्रभाव को देखकर कुछ पण्डितों के मनमें अहंभावना जागृत हो गयी और कुछ शास्त्रीय चर्चा का विचार किया गया।

आचार्यश्री जहाँ भी कहीं जाते थे एक नया ग्राम जैसा बस

जाता था। नित्य सत्संग तथा उपदेश चलता ही रहता था सिद्धक्षेत्र में भी यही प्रक्रिया चालू थी। हजारों नागरिक सत्संग में भाग लेते थे। बडे आनन्द के साथ समय व्यतीत होता रहा। इधर ब्राह्मणों ने विचार किया कि स्वामीजी से बातचीत करना चाहिए। ब्राह्मणों की एक सभा हुई। सर्वसम्मति से एक विद्वान् जिनका नाम मणिधर आचार्य था, वे चुने गये कि यही श्री विष्णुस्वामी से बात करें। उस समय मणिधर आचार्य सबसे उच्च विद्वान माने जाते थे। आपने निश्चय किया कि मैं नित्य कथा में जाऊँगा, तथा वहीं से शंका उठाकर पूछूंगा। आप प्रतिदिन आचार्यश्रो के उपदेश में आने लगे। एक दिन आचार्यश्री ने अविकृत परिणाम बाद के विषय को समझाया। पं. श्री मणिधरजी को यह वाद कुछ अरुचिकर प्रतीत हुआ, अतः उन्होंने प्रश्न किया कि स्नामिन्! आपने जो इस नये बाद का आविष्कार किया हैं, उसका विस्तृत स्वरूप बताने की कृपा करें।

प्रश्न में अहंकार की गन्ध थी। जिज्ञासा नाम मात्र की भी न थी। फिर भी आचार्यश्री ने बडी नम्रता तथा इतिहास के साथ कहा कि भ्रातृवर्य ! आपका प्रश्न अति उत्तम है। समाहित चित्त से श्रवण करें। आचार्यश्री ने आगे कहा कि– उपस्थित सन्त महात्माओ तथा गृहस्थ बन्धुओ! आज आपके सामने बहुत सुन्दर प्रश्न है। इस का उत्तर सभी के लिये अवश्य ज्ञातव्य है। अतएव सभी लोग ध्यान दें! सभी के सुनते आचार्यजी ने कहना प्रारम्भ किया—

मूल कारण जब अनेक प्रकार के कार्यों के रूप में परिणाम प्राप्त करता है उस परिस्थिति में भी मूल कारण के अन्दर किसी

प्रकार का परिवर्तन होता नहीं है, प्रत्येक अवस्था में कार्य, कारण रूप से रहे—इसी परिणाम का नाम अविकृत परिणामवाद है। इस अविकृत परिणामवाद के अनेकों उदाहरण भी हैं। जैसे कि— मकड़ी का जाल, मिट्टी तथा घटादि कार्य, स्वर्ण तथा किसी कुण्डलादि-सांप तथा उसकी कुण्डली। ये सभी उदाहरण—इसी सिद्धान्त के पोषक हैं। इसी तरह शुद्धसच्चिदानन्द, निर्गुण ब्रह्म—जगत् के रूप में परिणमता है। परिणमित होने पर भी उस सद् ब्रह्म में किसी भी प्रकार का अणुमात्र भी विकार नहीं होता है। यही अविकृत परिणामवाद का सार है। इस सिद्धान्त में ब्रह्म को ही जगत् का उपादान तथा निमित्त कारण माना गया है। इसी लिए इसको ब्रह्मवाद भी कहते हैं। ब्रह्म ही निज अनेकैश्वर्य को तिरोहितकर क्रीड़ा की अभिलाषा से जीव बनता है। अतएव जीव का धर्म है कि परात्पर प्रभु की भक्ति, अपने स्वाभाविक स्वरूप में आ जाना ही उसकी मुक्ति है। उपस्थित सज्जनो ! यही अविकृत परिणाम वाद है। इसी को ब्रह्म वाद भी कहते हैं। अब पण्डित श्री मणिधरजी को कुछ कहना हो तो कुछ कह सकते हैं इतना सुन कर सभी शान्त हो गये। पण्डित श्रीमणिधरजी ने खड़ा होकर कहा कि प्रभो ! आप वास्तव में परमाचार्य हैं। आपकी वाणी सुनने के बाद किसी तरह की शंका या सन्देह रह ही नहीं जाता। हमारे मन में आपके प्रति जो कुछ दुर्भावनाएँ थीं उनके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अपना शिष्य बना कर पराभक्ति की प्रचार की आज्ञा दें। स्वामीजी ने वैसा ही किया। श्रीमणिधरजी को श्रीगोपाल मन्त्र का

उपदेश देकर शुद्ध वैष्णव बनाया। एकदिन दधीचि आश्रम का दर्शन करने गये। वहाँ से लौट कर अपनी सफलता के लिये कपिल-देव भगवान की स्तुति की। भगवान श्रीकपिलदेवजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपने गले की माला आचार्यश्री के गले में डाल कर, पूर्ण सफलता का आशीर्वाद दिया।

आचार्यश्री का पुष्कर दर्शन

इस तरह बहुत दिनों तक सिद्ध क्षेत्र में निवास करने के बाद अपनी जमात के साथ आचार्यश्री वाराह पुरी में पधारे, जिसको आज धरणीधर तीर्थ कहते हैं। एक-दो दिन वहाँ निवास करने के बाद आपने लोहागल नामक तीर्थ की ओर प्रयाण किया। मार्ग में अनेक राजाओं तथा प्रजाओं का स्वागत स्वीकार करते हुए सबों को ब्रह्म वादानुकूल दीक्षा दी। कितने ही दिन चलने के बाद आप लोहागल नामक तीर्थ में पहुँचे। इस स्थल पर महाप्रयाण से पहले द्वारका से लौटते समय पाण्डुतनय अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्रों का विसर्जन किया था। वे अस्त्र अर्जुन के समाने ही गल कर पानी हो गये। उस पानी की धारा शिखर से वह कर एक कुण्ड में एकत्रित हो गयी और वह तीर्थ बन गया। आज भी उस शिखर से निरन्तर जल की धारा बहती है और लोहागल तीर्थ में एकत्रित होती है। आचार्यश्री ने उस तीर्थ में आचमन किया। कुण्ड की परिक्रमा की। तीन रोज निवास करने के बाद पुष्कर क्षेत्र की ओर प्रयाण किया।

कर्णाकर्णिकया, पुष्कर वासियों को यह बात पहले से ही ज्ञात

हो गयी कि आचार्य श्रीविष्णु स्वामी पुष्कर क्षेत्र में आयेंगे। जब लोहागल से प्रयाण का समाचार मिला तब सभी बड़े उमङ्ग से स्वागत की तैयारी करने लगे। वहाँ की प्रकृति देवी ने भी श्रीस्वामीजी का स्वागत किया। ब्रह्मसर कमलपूर्ण हो गया। कमलों में मकरन्द तथा मकरन्दों पर अलि—आवलि गुञ्जार कर रही थी। अशेष बनराजि भी हरित पट ओढ़े नव बधू की भाँति खेडी थी। पुष्कर क्षेत्र सन्त महात्माओं के जमघट से विशेष सौन्दर्यपूर्ण प्रतिभाषित हो रहा था। इस प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण पुष्कर क्षेत्र का निरीक्षण करते खाश स्थान पर आये। विस्तृत मैदान में पड़ावडाला गया। सुव्यवस्थित हो जाने के बाद आचार्यश्री ने पुष्कर क्षेत्र (तालाब) में स्नान किया। श्रीब्रह्माजी का दर्शन किया। इस स्थल पर श्रीपितामहजी ने यज्ञानुष्ठान किया था। एक कमल के प्रहार से बज्रनाभ नामक राक्षस को मारा था। आचार्यश्री ने उस स्थल का भी दर्शन किया जहाँ पर ब्रह्मा की नासिका से वराह भगवान् प्रकट हुए थे। क्रमशः तीनों पुस्करों का दर्शन किया। यज्ञभूमि का भी एक दिन दर्शन किया। जहाँ पर गायत्री नामक नवगोपिका से विवाह कर विरञ्चि ने ... किया था।

आचार्यश्री ने पर्याप्त काल तक पुस्कर में निवास किया। एक समय आचार्यश्री उस कमल से जायमान सरोवर में प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में स्नान कर रहे थे कि उनके चरणों को किसी ने पकड़ा। अचार्यश्री ने तुरन्त समाधि में देखा तो ज्ञात हुआ कि ये एक देव हैं। किसी शाप वश मकर बन गये हैं।

आचार्मश्री उनको लेकर जल से बाहर आये तथा उस मगर
के मस्तक पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी ही देर में आश्चर्य
के साथ सभी ने देखा कि उस जल जीव के शरीर में परिवर्तन होता
जैसा मालूम पड़ने लगा। क्षणमात्र में ही वह मगर, देव के रूप में
बदल गया। तुरन्त आकाश में स्थित होकर आचार्यश्री के ऊपर दिव्य
पुष्पों की वृष्टि की। बाद में दोनों हाथों को जोडकर प्रार्थना करता
हुआ कहा कि हे देव! सत्यतः मैं एक यक्ष हूँ। मेरा नाम मेघ
वाहन है। एक समय मैंने अहंकार वश अगस्त्यमुनि का अपमान
किया था। उन्होंने अभिशाप से हमको मगर बना दिया था। कर्ता
विनम्र बन कर जब मैंने प्रार्थना की तब उन्होंने प्रसन्न होकर कहा
कि, जब कलिकाल का प्रारम्भ होगा तब परात्पर प्रभु श्रीकृष्णस्व
जो अवतार लेकर आचार्य श्रीविष्णुस्वामी बनेंगे। उस समय अनेक
तीर्थों में घूमते—घूमते पुष्कर क्षेत्र में पधारेंगे। तब तुम्हारा उद्धार
होगा। तभी से मैं इस ब्रह्मसरोवर में पड़े हुए आपकी प्रतीक्षा कर
रहा था। आज आप का दर्शन हुआ। अतएव शाप की निवृत्ति भी
हो गयी। आपने मेरा उद्धार किया है, इस लिये हमारा भी कर्तव्य
है कि आपकी कुछ सेवा करूँ। ऐसा कह कर उसने हाथ उठाया
उसमें एक दिव्यमाला आकर झूलने लगी। यक्षने उस माला को
आचार्यश्री के गले में डाल दिया। जब आचार्यश्री ने माला को
स्वीकार किया तब उसने कहा कि यह माला कल्पवृक्ष के पुष्पों की
है। इस माला की खाश विशेषता है कि जब आप इस धराधाम पर
रहेंगे तब यह इसी रूप में रहेगी। न कभी मलिन होगी और न

की सुगन्ध ही कम होगी।

इतना कहकर यक्ष ने आचार्यश्री के चरणकमलों में साष्टाङ्गदण्ड-
नमस्कार किया तथा अपने धाम को चला गया। अब आचार्य-
श्री ने विचार किया कि—यहाँ पर यज्ञ करना चाहिए। फिर क्या
यज्ञ का समारम्भ होने लगा। कर्मठों को बुलाकर यथा विधि
मण्डप का निर्माण किया गया—शास्त्रीय प्रमाण युक्त यज्ञ वेदी
बनायी गई। विधिवत् श्रीविष्णुमहायज्ञ किया गया—साधु—सन्तों के
लिये असामान्य रूप से भोजन की व्यवस्था की गई थी। ब्राह्मणों
को सन्तोष कारक दक्षिणा दी गयी—सभी लोग प्रसन्नचित्त से यज्ञ
की प्रशंसा की। यह यज्ञ निर्विघ्नतया समाप्त हुआ। जिस दिन यज्ञ
की पूर्णाहुति हुई, उसी दिन—सायंकाल में आचार्यश्री सरोवर के
तट पर घूम रहे हैं। उस समय आचार्यश्री ने देखाकि सामने से
एक वृद्धमहात्मा आ रहे हैं। उनको देखकर श्रीस्वामीजी हँसने लगे।
दोनों परस्पर गले मिले एक दूसरे से समाचार पूछा—आचार्यश्री ने
कहा कि मैंने आपको यज्ञमण्डप में ही पहचान लिया था। आपके साथ
भगवान शंकर और इन्द्र देव भी थे। सभी को मैंने पहचान लिया
था, किन्तु मैंने भेद को खोलना उचित न समझा। अब बताइये,
क्या वे लोग निजधाम को चले गये? इतना कहना ही था कि सामने
रुद्र, इन्द्रादि सभी देव उपस्थित हुए। दण्डवत प्रणाम किया
और शान्तिमय वातावरण के साथ निज—निज धाम को चले गये।
अब आचार्यश्री का पुष्कर निवास भी पूर्ण हो चुका था, इसलिये
अन्य भूमि में जाने के लिये प्रयाण करना उचित समझा। नियत समय

पर पट मण्डप उठा लिया गया। आचार्यश्री अपनी पूरी जमात के साथ श्रीगालवाश्रम (जयपुर गलता) में पहुँचे। कमण्डलु गङ्गा में स्नान कर कुछ दिन विश्राम किया। एक रोज गालव महर्षि का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ और उनकी आज्ञा लेकर आचार्यश्री व्रजभूमि की ओर चल पड़े।

व्रजभूमि दर्शन

आचार्यश्री ने निश्चय कर लिया था कि अब व्रजभूमि का दर्शन किया जायेगा। व्रजभूमि की स्मृति आते ही आचार्यश्री भाव-समाधि में स्थिर हो गये मस्तिष्क में कल्पना चक्र चक्रित था। क्या यह वही भूमि है? जहाँ प्रकृति स्वयं शृङ्गारमयी, उल्लासमयी, एवं प्रेममयी बनकर विकसित होकर फिरती है, मनसिज शृङ्गार तथा सौन्दर्य प्रसाधन की शिक्षा प्राप्त करता है, सत्य है जहाँ पर निष्कल प्रभु भी कलाओं के अनुगामी बन जाते हैं, वहाँ की लुभावनी छटा का वर्णन करना, अपनी बुद्धि के साथ हास्य करना है। जहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि समस्त देव भी जल प्लावित काँपते हुए-मार्जारकी तरह भयभीत रहते हैं, आने पर नतमस्तक हो पराधीनता का अनुभव करते हैं, उस दिव्यभूमि का वर्णन क्या कोई वाणी द्वारा करता है। सहस्र वदन, और गजवदन गणाधिप-तथा भगवती भारती भी जिसके निर्मल तथा विशाल यश को गाने में अपनी लघुता का अनुभव करती है, जहाँ के वृक्षों की छाया मात्र के स्पर्श से ही ज्ञानि सम्राट महामना श्रीउद्धवजी के जो सुरगुरु वृहस्पति से प्राप्त

था, उस ज्ञान की उष्णता हिमखण्ड की तरह गल कर व्यर्थ हो गई है। आपने ज्ञान के प्रखर प्रकाश से गोप वधूटियों के अन्तस्तम को आलोकित करने की अविचारित भावना को लेकर गया हुआ अहंकारी भक्त उद्धव, जिसके अतुल प्रभाव से पराभूत होकर, जिनको अपने कठोर पदों से कुचल चुका है, उन्हीं तृणगुल्मलतादिकों के शरीर में अपना पुनर्जन्म मांगता है। जिसके दर्शन मात्र से लोक पितामह को भी सत्य को झूठ तथा झूठ को सत्य समझने के लिये वाध्य हो जाना पड़ता है, जहाँ की तरु अवलियों में स्थान प्राप्त करने के लिये नन्दन बन में हजारों वर्षों से खड़ा कल्प वृक्ष तपस्या करता है, जिसके स्वाभाविक सौन्दर्य की प्राप्ति के लिये चैत्ररथ हिमालय में अभी भी तपोलीन है, जिसके दर्शन के लिए भूतभावन भगवान शंकर को भी गोपी बन जाना पड़ा था, जहाँ चरने और पशु बनने के लिए कामधेनु सुरगाय भी निरन्तर लालायित रहा करती है. जहाँ की गौओं के बछड़ों में आने के लिये ऋषिमहर्षि भी मनोरथस्थित रहते हैं. जहाँ श्रुतियाँ गोपी बनकर नाचती हैं, अधिक क्या वर्णन किया जाय, वहाँ जाने के बाद परात्पर प्रभु निखिल जगत के नायक, चराचर विधाता, निर्गुण, निरोह, निष्कल, निष्कलङ्क, ब्रह्म भी छछिया भर छाछ पर नाचने लगता है। अहो धन्य है वह व्रजभूमि जहाँ के पत्ररहित करिलवृक्ष भी कमल बन जैसे प्रतीत होते हैं। जहाँ के कान्टें भी अपने स्पर्श से सुकोमल एवं सुखावह परानुभूति प्रदान करते हैं। जहाँ पवन भी सकुचा कर प्रवेश करता है। सूर्य भी अपनी कार्यका प्रचार में संकोच शील रहता है, चन्द्र भारी चोर की तरह झाँकता है, जहाँ

जाने पर कलुषित से कलुषित अन्तःकरण भी लाल लाडिली की अतुल-नीय लीला में संलग्न हो जाता है, सांसारिक मोह भी प्रभुमय प्रेम बन जाता है, ज्ञान की विडंवना भक्ति की धारा में बह जाती है, जहाँ प्रत्येक नागरिक निकुञ्जविहारी की प्रतिमां जैसा माळूम होता है। प्रत्येक नारी निकुञ्ज विहारिजी की सहचरी माळूम पड़ती है, जहाँ जगत तारिणी भगवती भक्ति भी तारुण्य को प्राप्त कर आमोदमयी बन जाती है, ज्ञान तथा वैराग्य को जहाँ जीवन मिलता है, रसराज श्रृङ्गार मूर्तिमान बनकर सबके सामने नाचता है, काम क्रोधादि विकार जहाँ नवजात शिशु बन जाते हैं, तरणिजा जहाँ पर जीवमात्र के लिए सुदृढ़ तरणि बन कर बहा करती है, जहाँ के दर्शन करने वालों के सामने रवि तनय भी तनय बन जाते हैं। अहो ! जहाँ जाकर ब्रह्म, जीव के रूप में बदल जाते हैं। वह है बृजभूमि, माँ ब्रज वसुन्धरे ! तु धन्य है तेरे दर्शन का अभिलाषी तेरा यह लाल भी धन्य है। आज तू जिसके अन्तःकरण में स्मृति बन कर आयी।

नित्य नये सौन्दर्य सागर में विहार करने वाली व्रजभूमि भी आज अत्यधिक प्रमोदमयी, उल्लासमयी एवं श्रृङ्गारमयी बन गयी है, प्रमोद, उल्लास, तथा सौन्दर्य की त्रिवेणी में विहरण करने वाली व्रजभूमि के ऊपर अमरावती तथा भोगवती भी लज्जा तथा अपमान से दुखी हो-कर अपना कटाक्ष पात करती है। सभी—व्रजभूमि के निवासी नरनारी आज देव दुर्लभसुख का अनुभव कर रहे हैं। गोपिकाओं का दीर्घका-लिक विरह आज पूर्ण होने वाला है। ग्वाल बालों का मन आज उछल कूद मचा रहा है। लताएँ नवीन फूलों के आविष्कार में लगी हैं।

वृक्ष नवीन फलों से सुशोभित हो रही है। अर्कजानुजा ... स्थिर गम्भीर गति से कल्लोल करती हुई बह रही है। घर में ... युवतियाँ श्रृंगार करके गृहकार्यबन्दकर किसी अलौकि झाँकी की ... में बैठी हैं। युवकवृन्द उछल-उछल कर, बालक वृन्द अटारियों ... महलों पर चढ़-चढ़ कर मार्ग को देखते थे। मधुपुरी आजसत्यतः ... बन गयी। प्रतिद्वार पर मङ्गल वेदी का निर्माण किया गया ... वेदियों के ऊपर, मधुर जमुना जलसे पूर्ण स्वर्णकलश स्थापित ... तोरण बाँधे गये थे। पताकाएँ लगायी गयी थीं। घर घर मंगल-... हो रहे थे। मधुपुरी के सभी सड़कों पर मानवसमाज भरा था। ... तथा बछडे भी खाना—पीना छोड़ शान्त बैठे थे। प्रत्येक जीव ... से देख रहा था। अधिक लिखना व्यर्थ है इतने से ही ... लेना चाहिए कि आज मधुपुरी तथा वृन्दावन रस, तथा आनन्दपूर्ण थे।

सम्भवतः— आप पूछना चाहें कि ये सब क्यों ? तो आप ... लीजिये आज व्रज भूमिमें आचार्य श्री विष्णुस्वामी पधार रहे हैं। आचार्यश्री ने गालवाश्रमसे सीधे व्रजधामकी ओर पधार रहे थे। मार्ग में कितने ही दिन लगगये। अनेक स्थानों पर आपका स्वागत किया ...। कहीं-कहीं पड़ाव भी पड़ा। कीर्तन, भजन तथा उपदेश भी होता ...। अनेक स्थानों में पूजा अर्चना तथा भंडारे भी होते रहे। इस ... आचार्यश्री एक दिन मधुपुरी की सीमा में आये। जब आचार्य ... ने व्रजभूमि में पदार्पण किया तब आपके निर्मल आखोंमें अश्रु कण ... लगे। सम्पूर्ण शरीरमें रोमोद्गम होगया। चलने में भी आपको

कठिनता का अनुभव होने लगा । कभी–कभी चलते-चलते थक जाते थे ऐसा ज्ञात होता था कि कुछ याद कर रहे हों ? इस उन्मतावस्थाके साथ आचार्यश्री ने व्रजभूमि का स्पर्श किया । व्रजभूमि में प्रवेश करने से पहले आपने इस शोच–विमोचिनी व्रजभूमि को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । रजको हाथों में उठाकर आखों तथा मस्तकमें लगाया । उसके पीछे घूमकर सभी महात्माओं से कहा कि महात्माओं ! यह आनन्द कन्द यशोदानन्दन श्रीगोकुलचन्द्रकी बिहारभूमि है । यह वही भूमि है, जहां के रजः स्पर्शमात्रसे उद्धवकी ज्ञानगरिमा गायब होगयी थी ! जहाँ पर भगवान् श्रीमहाशम्भु को भी गोपी भावापन्न होना पड़ा था। जहांपर ब्रह्म, इन्द्रादिक देवताओंका अभिमान तरणिजाके जलप्रवाह में बहगया था, यह भूमि समर्पण भूमि है । इसमें आने से पूर्व मानव को चाहिए कि वह सब कुछ समर्पित कर दें । पूर्ण आत्मनिवेदन के बाद ही इस भूमि में प्रवेश प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है । सर्वात्म समर्पण ही प्रभु की भक्ति है। इसीसे प्रभु प्रसन्न हो कर जीव को स्वीकार करते हैं तब जीव अपने तिरोहितभावों को प्राप्त कर आनन्दघन के साथ गोपी भाव को प्राप्त कर पूर्णानन्द का अनुभव करता है । अत एव सब को चाहिए कि इस भूमि को साष्टांग प्रणिपात करके सर्वात्मनिवेदन करें–इसके बाद हम व्रजभूमि में प्रवेश करेंगे । पश्चात् सभी लोगों ने साष्टांग प्रणाम किया । श्रद्धापूर्वक आत्मनिवेदन कर लेने के बाद आचार्यश्री ने व्रजभूमि में चरण रक्खा–और सब आगे बढ़े ।

मधुपुरी में आचार्यश्री का खूब से स्वागत हुआ तरणितनुजा

...तटपर सुन्दर विशाल पटमण्डप बनाया गया । आचार्यश्री का ...श्राम स्थल वह बना । आचार्यश्री के गले में हजारों मालाएँ ...रही थीं । सभी ने पूजा की, आरती की। सभी सहगामी ...महात्माओं के आसन तथा भोजन की व्यवस्था की गयी । पूर्णशान्ति ...जाने के बाद कंसकिला के ऊपर एक महती सभा का आयोजन ...किया गया । एक प्रखर वक्ता ने सुमधुर शब्दों में स्वागत भाषण ...किया । एक विद्वान महात्माने आचार्यश्री की यात्रा का विवरण ...सुनाया, तपस्या की बातें भी सुनाई गयीं । किस तरह से आपको ...सम्प्रदायाचार्य की पदवी प्राप्त हुयी । कहाँ कहाँ किस–किस प्रकार ...का स्वागत किया गया । सभी बातें संक्षेप में सबको सुनाई गयीं । ...इसके बाद आचार्यश्री ने अपना मङ्गलमय उपदेश प्रारम्भ किया ।

आचार्यश्री ने थोड़ा हँसकर सभी की ओर देखा तथा कहना प्रारम्भ किया उपस्थित भगवत प्रिय सज्जनो ! विरक्तमहात्माओ ! पूज्य-...माताओ तथा बहनो ! बहुत पूर्व इसी व्रजभूमि से आप सबों का आशीर्वाद लेकर मैंने यात्रा का आरम्भ किया था । प्रभु की कृपा से ...मैंने सफलता प्राप्त की है । आज मैं अपने को धन्य समझता हूँ कि इस व्रजभूमि में आने से आप सबों की सेवा का समय मुझे प्राप्त हुआ है । ब्रह्मस्वरूप भाइयो ! आप तो इस भूमि में निवास करते हैं । जहाँ भगवती भक्ति को भी तरुणता प्राप्त हुयी थी । प्रभु को प्रसन्न करने वाले तमाम साधनों में भक्ति ही सर्वोत्तम साधन है । भक्ति से प्रभु प्रसन्न होते हैं । जब खूश हो जाते हैं, तब जीव को अपना लेते हैं । जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का भान करा देते

हैं। जो ऐश्वर्य आनन्दादि महान् गुण तिरोहित हो गये होते हैं उन्हीं को प्रकट कर प्रभु स्वयं रूप में स्थित हो जाते हैं—तिरोहित हुए गुणों का आविर्भाव हो जाना ही जीव की मुक्ति है। इस मुक्ति का कारण है—अनन्यशरणागति। ऐसे तो जीव में इतना बल होता ही नहीं है जिससे अपने बल तथा शक्ति से परमात्मा को प्राप्त कर सके। उस परम प्रभु को प्राप्त करने में मूल्यहेतु उसकी कृपा ही है। उसकी कृपा ही उसको प्राप्त कराती है। इसी लिये मुण्डकोपनिषद में कहा है—

श्रुति— नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य—
स्तस्यैव आत्माविवृणुते तनु स्वाम्।

आप समझ गये होंगे कि इस आत्मा को प्रवचन पटुता से नहीं प्राप्त किया जा सकता है। न बुद्धि से ही पाप्त किया जा सकता है। बहुश्रुत होने से भी उसकी प्राप्ति नहीं होती है। अपनी इच्छा से यह जिसको स्वीकार कर लेती है उसी को वह प्राप्त भी होती है। आप जानते हैं कि हम और कोई नहीं हैं, किन्तु उसीके स्फुलिंग मात्र हैं। अतएव वह अपनी ही आत्मा को अनन्तैश्वर्य सम्पन्न कर देता है। इसी तरह कठोपनिषद् भी लिखता है कि—

श्रुति-- तमक्रतुः पश्यति बोत शोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः
कठ. १।२।२०

यह जीव उस धारण करने वाले परमात्मा की कृपा से ही बीत-शोक होकर अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान जाता है। भगवत्ता की प्राप्ति अपने आपको उस दयालु प्रभु के छोड़ देने का नाम ति है। आप तो व्रजवासी हैं आपको क्या कहूँ। आप सब जानते हैं कि दयालु प्रभु अपने भक्तों के लिए कल्प वृक्ष बन जाते हैं। सी लिए भक्तराजबलि के ऊपर की गयी कृपा को देख कर अनन्य-क्त श्रीप्रह्लादजी ने कहा है कि हे प्रभो!

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया
लीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य।
सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावः
भक्तप्रियोयदसिकल्पतरुस्वभावः॥
८।२३।८ भा.

अर्थः--हे प्रभो आपका वीक्षण भी कितना विचित्र है। आपने पनी आदि शक्ति योग माया के विलास मात्र से इस जगत की रचना कितनी सफलता पूर्वक की है। अतएव आप विशारद हैं। आप त्मा हैं। समानद्रष्टा हैं। इतने होने पर भी आप का स्वभाव षम प्रतीत होता है—कारण कि आप अपने भक्तों के सब मनोरथ र्ण कल्प वृक्ष बन जाते हैं। प्रिय वन्धुओ! उस दयामय का भाव ही ऐसा है और भी सुनिये।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितोनृणाम्
नैवार्थदो यत्पुनरर्थता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतमनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्।

अर्थः—सज्जनो ! अब आप समझ गये होंगे कि प्रभु कितने दयालु हैं । अनेक भावनाओं को लेकर उनकी प्राप्ति के लिये भजने वाले को प्रभु इतना दे देते हैं कि वह भक्त पुनः कभी किसी से याचना करने लायक रह ही नहीं जाता है । परन्तु जो भक्त निष्काम-भावना से प्रभु की उपासना करते हैं, उनके अन्तःकरण में तो दीन-बन्धु अपना चरण कमल ही रख देते हैं जिससे अपने आप कामनाएँ दब कर नष्ट हो जाती हैं । भाइयो ! ऐसा करने के लिये प्रभु को सोचना या विचारना नहीं पड़ता है । यह तो उनका स्वभाव ही है। प्रभु की यह सत्यतया स्वभाव है कि अपने भक्तों का पूरा योग क्षेम का वहन करते हैं । गीता में भी भगवान् ने कहा हैं कि --

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

अब यह निश्चित हो गया कि अनन्यभक्ति के बिना दयालु प्रभु हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं हो सकते । अतएव मानव को भक्ति की आराधना करनी चाहिए ।

इस तरह आचार्यश्री प्रवचन कर ही रहे थे कि एक महात्मा ने उठकर बड़े विनम्रस्वर में कहा कि आचार्यचरण ! यदि अपराध माफ करेंगे तो मैं कुछ पूछूं । आपने आज्ञा दी, महात्मा ने कहा कि— श्रीमद्भागवत् में तो भक्ति नव प्रकार की है तो उनमें नवों की अपनाना चाहिए अथवा एक से भी प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं । आचार्य-श्रीजी ने कहा कि महात्मन् आपका प्रश्न अत्युत्तम है; अब उसका उत्तर सुनिये ! सत्यतः भक्ति एक ही प्रकार की है । उसका नाम है

[अ]र्थात आत्मनिवेदन । आत्मनिवेदन ही शुद्ध भक्ति है और सब श्रवण-[की]र्तन आदि तो भक्ति के बहिरंग साधन हैं । इसी लिए प्रभुने गीतामें [पा]र्थ के प्रश्न का उत्तर देते समय पार्थ के श्रेय का साधन बतलाते [स]मय अन्तिम निष्कर्ष को परमगोप्य बतलाते हुए कहा कि हे पार्थ ! [त]माम बहिरंग साधनों को छोड़कर तू मेरे शरण में आजा तुझे समस्त [पा]पों से सर्वदा के लिये मुक्त बना दूँगा । यथा-–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज.
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।
गी. १८।६६

अतएव आत्मनिवेदन से ही प्रभु प्रसन्न होते । उनकी अहैतुकी [कृ]पा प्राप्त करने का एक ही साधन है–आत्मनिवेदन । आत्मनिवेदन [से] अतिशीघ्र अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है । इसी से कृष्णैकात्म्य की [सि]द्धि होती है । ११स्कन्ध में अपने जिज्ञासुभक्त श्रीउद्धवजी से स्वयं [क]हा है कि हे उद्धव !

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो-
मयात्मभूयाय कल्पते वै
भा० ११।२ ३।३४

इसलिये लीलाविहारी के अनन्यसखाओ ! जब तक अनाथ-[ना]थ जगन्नाथ के शरणो में सभी कुछ निवेदित न किया गया तब [त]क वेद वर्णित त्रिवर्ग व्यर्थ ही है । इस लिये आत्मनिवेदनकर

सर्वात्मभाव से प्रभु के शरण में जाना चाहिए। जब तक जीव प्रभु की शरणागति का स्वीकार नहीं करता है तब तक किसी भी तरह स्वकल्याण नहीं कर सकता है। इस लीलाविहारी दयानिधान श्रीनन्दनन्दनने गीता में अनेकों स्थानों में **तमेव शरणं गच्छ,मामेव शरणं व्रज**–इत्यादि वाक्यों से निज अनन्यभक्त श्रीअर्जुन को निज शरणागति का उपदेश दिया है। जो जीव उस करुणामूर्ति भगवान श्रीयशोदानन्दन को छोड़ कर अन्य के शरण से अपनी कामनाओं की पूर्ति चाहता है या मोक्ष चाहता है, उसकी दशा का वर्णन देताओं के मुख से सुन लीजिये।

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं
स्वेनैव लाभेन शमं प्रशान्तम्।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः
श्वलांगूलेनातितितर्ति सिन्धुम्।
भा० ६।९।२२

इसलिए हे सन्त महात्माओ! इस संसार में त्रिविधताप से सन्तप्त जीवों के प्रभु की शरणागति ही एक उपाय है। इसी लिये श्रीउद्धवजी कहते हैं कि हे प्रभो!

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे
सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रि—
द्वन्दातपत्रादमृताभिवर्षात्॥
भा० ११।१९।९

भाइयो! इस संसार में त्रितापतप्त जीवो के उस अनादि प्रभु

के चरण शरण के बिना दूसरा कुछ भी उचित शान्तिदाता नहीं है। जो जीव आपके मधुर मनोहर मङ्गलमय चरणों का सहारा लेकर अपने जीवन को आपके चरणों में रख देता है–आप उसको सदा के लिए यमराज तथा सभी प्राणियों से भी अभय कर देते हैं। अपनी शरणागति के प्रमाण के लिए हमें भी उनके समाने जाकर कहना पड़ेगा कि—

शरणद! समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म—
अभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश!
भा० १०।५१।५८

परात्पर प्रभु भगवान् श्रीकोशलेशजी ने विभीषण शरणागति के उपलक्ष में स्वयं कहा है कि—

सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतत् व्रतं मम॥

अब आप सब समझ गये होंगे कि भक्ति का स्वरूप क्या है? इसी भक्ति को ध्यान में रखकर भक्तराज श्रीप्रह्लादजी दैत्यपुत्रों से कहते हैं कि हे दैत्यपुत्रो!

न दानं नतपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ७।७।५२

अर्थात् प्रभु को प्राप्त करनेके अनेक साधनों में सर्वोत्तम साधन भक्ति ही है। इसको हमारे अन्तः में प्रभु कृपया प्रदान करें। इतना कह कर हम अपना प्रवचन समाप्त करते हैं।

सभा समाप्त हो गयी। सभी ने आचार्यश्री के चरणों में नमष्कार

किया। तदनन्तर निज-निज गृह को चले गये। जब से आचार्यश्री का पदार्पण हुआ तब से मधुपुरी में अनन्त ऐश्वर्य; अनन्तोसाह चारों तरफ उमड़ रहा था। नित्य हजारों की संख्या में जनता एकत्रित होती थी। नित्य नये नये विषयों पर उपदेश होता रहा। इन्द्रप्रस्थ आदि अनेकों ऐतिहासिक—स्थानों से लाखों जनता आती थी। सभी को पूर्ण सन्तोष प्राप्त होता था। सब जगह आचार्य के आने का समाचार प्रसरित हो गया। इस तरह आनन्द पूर्वक आचार्यश्री मधुपुरी में निवास करने लगे। नित्य सुन्दर मनोहर शब्दों में प्रवचन होता था। मधुपुरी निवासी पूर्ण आनन्द का अनुभव करते थे। एक दिन आचार्यजी ने सभी उपस्थित भक्तों से कहा कि भाइयो ! अब एक दिन वृन्दावन में श्रीवंशीवट का दर्शन करना है। वहाँ से व्रज चौरासी की प्रदक्षिणा भी प्रारम्भ की जायेगी। सभी ने एक स्वर से आचार्यश्री का अनुमोदन किया। वृन्दावन की यात्रा के लिए तिथि निश्चित कर दी गयी। सभा विसर्जित हो जाने के बाद सभी अपने अपने घर को गये।

जब वृन्दावन वासियों को ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री पधार रहे हैं तब सभी का मन प्रसन्नता से नाच उठा। मधुपुरी से वृन्दावन रासभूमि वंशीवट तक वन्दनवार बाधें गये। सम्पूर्ण मार्ग जल से सींचा गया। सुकोमल पुष्प मार्ग पर बिछाये गये। सुन्दर बाजे की व्यवस्था की गयी। वृन्दावन के तमाम लोग में अति प्रेम की भावना थी।

आचार्य का प्रवचन सुनने जाया करते थे। सभी लोग आप

लेने के लिये मथुरा गये। वहाँ भी आचार्यश्री की यात्रा
प्रोग्राम बन ही चुका था। आप हजारों जनता के साथ वृन्दावन
लिए चल पड़े। वृन्दावन से मथुरा तक सम्पूर्ण सड़क,बाजार जैसी
ने लगी। आचार्यश्री गाजेवाजे के साथ वृन्दावन आये। नगर के
य दरवाजे पर आपकी आरती उतारी गयी। हजारों मानवों ने
में फूलों की मालाएँ पहनायीं। चरण धूलि को मस्तक पर चढ़ा
लोगों ने जय-जयकार मनाया। उसके बाद आचार्य श्रीविष्णुस्वामी ने
कुण्ड में आचमन किया। ज्ञान-गुदड़ी में जाकर आप पुनः आनन्द
ोर होने लगे। एक जगह खड़े होकर आप कुछ विचार मग्न हो
। सभी लोग खड़े खड़े तमासा देखते थे। आप थोड़ी
खड़े रहे फिर बडे जोर से हँसने लगे। उसी तरह थोड़ी देर
आपने वंशीवट के पास सुविस्तृत मैदान में नवनिर्मित पटकुटीर
आपने प्रवेश किया।

वंशीवट के पास—

सुन्दर मञ्च बनाया गया था। सामने लाखों मनुष्यों के
ने की व्यवस्था की गयी थी। आचार्यश्री जाकर मञ्च पर बैठ गये।
स्थित जनता ने उच्चस्वर से आचार्यश्री का जयकार उच्चारण
या। उसके बाद सभी लोग शान्ति के साथ बैठ गये। कारण
आचार्यश्री का भाषण होने वाला था। जब सभी लोग बैठ गये
चार्यश्री ने कहना प्रारम्भ किया।

उपस्थित भगवद्भक्त भाइयो ! माताओ एवं बहनो ! आज मैं

सत्यतया धन्य हूँ। जो इस अक्षयफलदायिनी व्रजवसुन्धरा में उपस्थित होकर आप सबों का दर्शन कर रहा हूँ। सत्यतया मुझे आप सब रसिक शिरोमणि श्रीनिकुञ्जेश्वर तथा निकुञ्जेश्वरी के सहचर एवं सहचरी जैसे ही प्रतीत होते हैं। आप सब नित्य ही रास रस का पान करने वाले हैं। आप सबों के ही सहवास में आकर भगवती त्रिलोक तारिणी भक्ति माता को तारुण्य प्राप्त हुआ था। आप उन्हीं की सन्तान हैं लीलाविहारी ने जिनके प्रसाद पाये थे। भाइयो! यद्यपि आप सबों के दर्शन से ही मैं तृप्त हो गया हूँ, कुछ भी बोलने या कहने की अभिलाषा नहीं है तथापि आपके मनोरथों की अवहेलना करने की शक्ति मेरे में नहीं है। यह तो आप सब जानते ही हैं कि भक्ति ही एक ऐसी सुदृढ़ नौका है जिस पर बैठ कर मानव संसार सागर पार हो सकता है। भक्ति द्वारा ही मानव सच्चिदानन्द को प्राप्त करता है। आनन्द यह परमात्मा का स्वरूप है। शास्त्रों में ब्रह्म के तीन स्वरूप माने गये हैं। आधिदैविक, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक यही ब्रह्म के तीन रूप, इसी तरह पूर्णानन्द ब्रह्म की अनुभूति एवं प्राप्ति के तीन मार्ग हैं। कर्म, यह आधिभौतिक मार्ग है। ज्ञान आध्यात्मिक मार्ग है और भक्ति यह आधिदैविक मार्ग है। इस मार्ग में पहले अक्षरब्रह्म में लय को प्राप्त, जीव को भी पुनः पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए आना पड़ता है और इसी को प्रपत्ति कहते हैं। प्रपन्न जीव, पूर्ण पुरुषोत्तम के साथ आनन्द रस में स्नान करता है। प्रभु की अहैतुकी कृपा का अनुभव करता है। ज्ञानियों को तो अक्षर ब्रह्म ही परम साध्य मालूम पड़ता है। ज्ञानी लोग उसी को, स्वयं

...श, गुणातित, सच्चिदानन्द आदि नामों से पुकारते हैं और उसी ...प्राप्ति को परम लक्ष्य मानते हैं, परन्तु प्रपन्न जीव के लिये, वह ...न मात्र है साध्य तो परमानन्दैकधाम, शौशिल्यादि दिव्यगुण ...त रास-रस-रसिक वृन्दावन विपिन विहारी गोप वधूटि दूकूलअप-...री, आनन्दघन, नन्द-नन्दन, यशोदा मोददायी पूर्णचन्द्र विनिन्दक ...दर्यशाली, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्
यं प्राप्य न निबर्तन्ते तद् धाम परमं मम ॥
गी० १८।२१

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपनी जगत् क्षेम कारी वाणी के द्वारा ...क्षर ब्रह्म को अपना धाम बतलाते हैं, और उसी अक्षर ब्रह्म को ...य में रखकर ज्ञानी लोग "अहम् ब्रह्मास्मि अहम् ब्रह्मास्मि" ...तरह अपनी भावनानुकूल एकतानता स्थापित करते हैं। किन्तु, ...न्न भक्त——

तन्मनस्कास्तदालायास्तद्वि वेष्टास्तदास्मिकाः तथा ...क्षिप्तचिता प्रमदा रमापतेस्तदा विचेष्टा जगृहुस्तदात्मका, ...यादि वाक्य के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम में ही अपनी रति करते हैं।

उपस्थित अन्य भगवत् भक्त! आप सब जानते हैं कि स्वयं ...भु जब जगदाकार में परिणमते हैं, और भिन्न-भिन्न स्वरूपों में ...स्व स्वीकार करते हैं, अर्थात् अपने दिव्य आनन्दादिगुणों को ...रोहित करते हैं, उस समय उनके तीन अङ्गों से जीवों का विकास

होता है। कर्म मार्गी जीव प्रभु की इच्छा से उत्पन्न होते हैं, ज्ञान मार्गी जीव प्रभु की वाणी से उत्पन्न होते हैं और भक्त मार्गी जीव साक्षात् आधिदैविक स्वरूप पूर्ण आनन्द रसमय श्रीअङ्ग से प्रगट होते हैं।

परात्पर प्रभु कुछ करेंगे ही, ऐसी भावना से अपने आपको प्रभु के कर–कञ्ज में समर्पित कर निर्मुक्त निभर्य जीवन बिताते हैं। एहिक तथा पारलौकिक सभी तरह की क्रियाओं में कर्म वाणी तथा मन से भगवान श्रीपुरुषोत्तम के शरण में रहना प्रपन्न जीवों का कर्तव्य है। अनन्य आश्रय स्वीकार करके भगवान श्रीकृष्ण की कृपा मात्र का अनुभव करना, अनन्य भक्तों का जीवन है। इस तरह—

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी। गी. १३।१०

इस वाक्य के अनुसार अनन्य योग द्वारा नैरन्तरिक तैल धारा की तरह अविच्छिन्न प्रवाहमयी भक्ति को प्राप्त कर प्रपन्न जीव निरन्तर आनन्द रस का पान करता। जब भक्त अनन्याश्रयावस्था में पहुँचता है तब उसको स्वदेह, निर्वाह की चिन्ता भी, मिट जाती है, फिर तो वह प्रभु की कृपा से ही अपनी जीवन मात्रा के समस्त साधनों को भगवत् कृपा से ही प्राप्त कर लेता है। दयालु प्रभु ने स्वयं कहा है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमवहाम्यहम्॥

अब आप सब समझ गये होंगे कि अनन्य भक्त का स्थान

क्या है ? जब स्वयं ही भगवान पुरुषोत्तम ही, उसके योग क्षेम का वहन करते, उसको चिंता किस बात की होगी। आप जानते हैं अनन्य प्राप्ति सिद्ध भक्तो की क्या इच्छा होती है ? इसको आप वृत्रासुर के मुख से सुन लीजिये —

अहं हरे ! तव पादैकमूल—
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ?
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं-
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य कांक्षे ॥ २ ॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ ३ ॥
भा० ६।११।२४।२५।२६

अर्थात् हे प्रभो ! मैं तो, आपके चरण कमल ही है आश्रय जिनके ऐसे अनन्य भक्तों के दासों का भी दास होना चाहता हूँ कि मेरा मन निरन्तर आपके जनमनहारी सकल कलिमस नाशक दिव्य गुणों का स्मरण करता रहे। वाणी सर्वदा उन्हीं की गान करती रहे। सम्पूर्ण शरीर आपकी ही सेवा में लगा रहे।

मुझे आपको छोड़ कर कुछ भी नहीं चाहिए। मैं स्वर्ग का

राज्य नहीं चाहता, ब्रह्मपद भी मुझे नहीं चाहिए, सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य की कामना भी नहीं है और न मैं वरुण पद को चाहता हूँ। मेरी तो केवल एक वस्तु की इच्छा है और वह वस्तु हैं आप। भाइयो ! यह भक्त की कामना है। वह अपने भगवान को छोड़ कर किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता है।

वृत्रासुर कह रहा है कि हे प्रभो ! मैं चाहता हूँ कि जिस तरह जिनके पक्ष नहीं जमें हैं, अतएव जिनके जीवन के समस्त आधार माता-पिता ही हैं, ऐसे पक्षी के बच्चे अपने माता-पिता का निरन्तर स्मरण करते हैं, उसी तरह मेरा मन निरन्तर आपका स्मरण करता रहे। अथवा भुख और पिपासा से व्याकुल गाय के अबोध बछडे सायं काल में जंगल से आती हुई गाय को जैसे याद करते हैं, पतिव्रता नारी विदेश में गये पति को जिस तरह नैरन्तरिक रूप से याद करती है, हे कमल नयन ! मेरा मन निरन्तर आप का स्मरण करे। उपस्थित सज्जनो ! यही भक्त की स्थिति है। इसी अनन्य भक्ति का उपदेश देते हुए गीता नायक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी अनन्य सखा अर्जुन को कहते हैं कि——

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

गी० १८।६५

हे अर्जुन ! तू मन से मेरा चिन्तन कर। बुद्धि, चित्त अहंकार आदि आन्तरिक विकारों से मेरा भक्त (सेवक) बन जा। इन्द्रियों से

नैमित्तक कर्म कर और सिर से मुझको नमस्कार कर। अगर यह सब न हो सके तो——

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अर्थात् सभी धर्मा-धर्म, कर्तव्या-कर्तव्य अनुकूल-प्रतिकूल, आदि सांसारिक भावनाओं को छोड़ कर तू मेरी अनन्य प्राप्ति को स्वीकार कर ले, फिर तो मैं ही तुम्हारा समस्त कर्मज बन्धनों को काट कर तुम्हें भय से मुक्त कर दूँगा। भाइयो ! इस लिये जो जीव प्रपन्न हो जाता है, वह भगवदीय बन कर निर्भय, निर्लेप हो कर स्वतंत्र जगत् में विचरता है। हे भगवदीय जनो ! आप लोगों से अधिक क्या कहूँ आप सब तो व्रजविहारी के सखा हैं, अनन्य पूर्ण भगवदीय हैं। अतएव अधिक न कह कर अपना प्रवचन समाप्त करता हूँ। एक वार खूब प्रेम से बोलिये श्रीआनन्द-कन्द श्री गोकुलचन्द्र की जय। इस तरह प्रवचन समाप्त हुआ। सभी समागत जन आचार्यश्री का जय-जयकार मनाते हुए अपने अपने घर को गये। आचार्यश्री ने विश्राम करने के लिये निजपट कुटीर में प्रवेश किया।

व्रज परिक्रमा दर्शन

व्रजभूमि में यह स्वाभावविक गुण है कि दर्शन करने के पश्चात् छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती। स्वयं साक्षात्, सर्वेश्वर, भगवान श्रीकृष्ण भी, बड़ी कठिनता के साथ अपनी भौतिक लीला में व्रज को छोड़ सकें हैं। वैसे तो वह उनकी नित्य विहार भूमि है, और आज

भी अपने अनन्य सर्व समर्पित भक्तों के सामने प्रत्यक्ष लीला किया करते हैं। जब निर्गुण, निरीह, सर्वगुण सम्पन्न, लीला विहारी एवं माखन चोर बन कर वहाँ निवास करते हैं तो और अवतारों का कहना ही क्या ? हमारे चरित-नायक आचार्यश्री विष्णु स्वामीजी भी व्रज भूमि की अनिन्दनीय तथा अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर व्रजभूमि को न छोड़ सके और उसी को आपने अपनी लीला क्षेत्र का आधार केन्द्र बनाया। इस तरह आप कुछ दिनों तक वृन्दावन तथा मथुरा में निवास करते रहें।

पर्याप्त समय तक निवास करने के बाद एक दिन आचार्यश्री ने व्रज चौरासी की परिक्रमा करने का विचार किया।

कारण कि भगवान श्रीकृष्ण चन्द्रजी के गोलोक चले जाने के बाद वहाँ के लोगों में परिक्रमिक बुद्धि कुछ शिथिल सी हो गयी थी। कलि-काल-कवलित जीवों के उद्धार के लिये आचार्याश्री ने विचार किया कि व्रजचौरासी की परिक्रमा ही एक ऐसा साधन है कि जिससे हरेक मानव अनायास प्रभु पद को प्राप्त कर सकता है। इसी विचार से आपने निज अशेष शिष्य समुदाय के साथ परिक्रमा के लिये प्रयाण किया। वृन्दावन से चल कर आप मथुरा आये। वहाँ के लोगों ने अति आनन्द मनाया और हजारों की संख्या में परिक्रमा निमित्त आचार्यश्री के साथ जाने को तैयार हुए। रात्रि भर मथुरा में निवास करने के बाद दूसरे रोज प्रातः गोवर्धन को चले। साथ में कितनी ही अलग अलग कीर्तन मण्डलियाँ थीं, अनेकों विद्वान थे।

कितनी हीं बैल-गाड़ियाँ भी चलती थीं। जिन पर तम्बू, कनात् आदि सामान लदा रहता था। मार्ग में सुमनोहर, कर्ण सुख कर, तंत्रिलय समन्वित सुस्वरों में भगवन्नाम कीर्तन करते हुए चल रहे थे। सभी यात्रालु ऐसा अनुभव करते थे कि हमारे साथ साक्षात् आनन्द कन्द यशोदानन्दन श्रीकृष्ण ही चल रहे हों। सभी का अन्तःकरण आनन्द एवं उल्लासमय था। सभी लोग अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रहे थे। सायंकाल में यह यात्रा श्रीगिरिराज के निकट में जाकर समाप्त हुई। मार्ग में तालवन आया। जहाँ पर श्रीजी ने धेनुकासुर को मारा था, गिरधरपुर, सन्तनु कुण्ड, गन्धर्वकुण्ड, पूतना का जन्म स्थान, बहुला वन, भगवान के अनन्य सखा श्रीतोष की जन्म भूमि तोष ग्राम आदि तीर्थों के दर्शन करते हुए आचार्यश्री आज श्रीराधाकुण्ड पर अपना पड़ाव डाला। सभी को रहने, सोने और भोजन की व्यवस्था हुई।

सब लोग स्नान भोजन आदि से निवृत्त होकर पवित्र भगवन्नाम-में संलग्न हो गये।

प्रातः काल आचार्यश्री ने शुभ मूहूर्त में ही श्रीराधा कुण्ड पर स्नान करने के लिये पदार्पण किया। आचमन स्नान के बाद संध्या वन्दन आदि क्रियाओं का अनुष्ठान किया। प्रभु स्मरण करने के लिये बैठे ही थे कि श्रीराधा तालाब के मध्यान्तर भाग में जलविहार संलग्न श्रीराधा-माधव का दर्शन कर आनन्द विभोर हो गये। दूर से ही उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। जब सिर को उठाया तो युगल-जोड़ी अन्तर धान हो चूकी थी।

इतने में ही पूरी मण्डली स्नान करने आ गयी। सभी के साथ आचार्यश्री ने श्रीकृष्ण कुण्ड का दर्शन किया। इसके बाद श्रीगोविन्द देव (श्रीगिरिराज का मुखारविन्दजी) के दर्शन किये। गोक्षिर आदि समस्त अर्चन सामग्री से पूजा की और सम्पूर्ण मण्डली के साथ उस स्थान का दर्शन किया जिस स्थान पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अरिष्टासूर को मारा था। तदनन्तर वज्र कुण्ड, विशाखा, ललिता, उद्धव-नारद आदि पवित्र तीर्थों का दर्शन करते हुए आपने गोवर्धन के लिये प्रयाण किया। कुसुम–सरोवर, मानसी–गंगा आदि तीर्थों में स्नान-आचमन वगैरह करते हुए मानसी देवी के मन्दिर में विश्राम किया। थोड़ी देर बैठने के बाद आचार्यश्री ने श्रीगिरिराज की प्रदक्षिणा को योजना बनायी।

श्रीगिरिराज के मुखारविन्द का दर्शन, पूजन कर पूरी मण्डली परिक्रमा के लिये चल पड़ी। मार्ग में अनेक प्राचीन स्मृति-चिह्नों का दर्शन करते हुए आप आचार्यश्री आगे बढ़े। आज आचार्यश्री का तन-मन सहित सम्पूर्ण मनोयोग श्रीकृष्णमय बन गया था। अनेकों मण्डलियों में विभक्त होकर ढोल-झाल-मृदंग आदि के साथ कीर्तन करते थे। परमस्थली पैठो ग्राम आदि स्थलों में उपदेश देते हुये केलिकदम आदि का दर्शन कर आप ध्यान मग्न हो जाते थे। वत्स ग्राम में आपने श्रीवत्सविहारी के मन्दिर की स्थापना की। आन्यौर में आपने दही, कटोरा आदि, गोचारक भगवान के समस्त पोशाकों का दर्शन किया उसके बाद श्याम ढीक, गोपी तलायी तथा इन्द्रगज

एवं उच्चैश्रवाके चरण चिन्हों का दर्शन किया। प्रभु प्रेम में निमग्न होते हुए आदि शुभ स्थलों का दर्शन करते हुए रुद्रपुर में आये। इस तरह आपने पुनः गोवर्धन में आकर पुनः परिक्रमा समाप्त की। अनेक दिनों तक गोवर्धन मानसी–गंगा पर निवास कर व्रज चौरासी परिक्रमा के निमित्त आगे चल पड़े।

आज डीग ग्राम अहोभाग्यमय बन गया। श्रीस्वामीजी पधारने वाले थे। ग्राम वालों ने नगर निवासियों ने श्रद्धा और प्रेम से आचार्यश्री का स्वागत किया। श्रीआचार्यजी ने अपने मंगलमयी वाणी से भगवत् भक्ति का सद् उपदेश दिया। रूप सागर के ऊपर पड़ाव डाला, श्रीबलदेवजी का दर्शन किया और कितने ही दिनों तक निवास करते रहे। उसके बाद प्रमोद-वनादि तीर्थों का दर्शन करते हुए उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गोप-गोपियों को श्रीवद्रीनारायण भगवान् का दर्शन कराया था। वहाँ के नैनसरोवर, मानसरोवर आदि तीर्थों का सेवन कर काम्य बन में पदार्पण किया।

काम बन में आचार्यश्री ने निवास किया, श्रीगोविन्द भगवान का दर्शन किये, मधुसूदन कुण्ड, यशोदाकुण्डादि चौरासी तीर्थों के दर्शन करते रहे। उसके बाद कर्नवार नामक ग्राम में गये जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की कर्णवेद क्रिया सम्पन्न हुई थी। श्रीबलदेवजी की विहार भूमि, राधा माधव का विहार स्थल, संयोग तीर्थ, श्री-ल्लीताजी आदि स्थानों का दर्शन करते हुए आप बर्साना पहुँचे।

वहाँ पर आपने गहवर आदि बारह वनों का दर्शन किया। प्रेमसरोवर में स्नान किया। साकड़ी खोर देखे। प्रेमसरोवर में डूब गये। उस स्थान पर भी गये जहाँ पर श्रीलाल और श्रीलाड़ली लीला करते थे। जिसको आज संकेत स्थान कहते हैं। संकेत विहारीजी का दर्शन करने के बाद, आपने उस स्थान पर प्रयाण किया जो श्रीचन्द्रावली सखी का स्थान माना जाता है जिसको आज रिठौरा कहते हैं। वहाँ पर चन्द्रावली बैठक आदि स्थानों का दर्शन किया। श्रीललीता विशाखा आदि कुञ्जों का दर्शन करके आप नन्द ग्राम आये। नन्द ग्रामों में आपने बहुत दिनों तक निवास किया। तमाम स्मृति चिह्नों का दर्शन किया। उन कदम्ब के वृक्षों को देखा, जिनके पत्तो में आज भी स्वतः दोना बन जाते हैं। कुछ दिन नन्द ग्राम में निवास करने के बाद श्रीनन्दजी के गोशाला आदि स्थानों का दर्शन करते हुए अञ्जन शिला होकर आप वहाँ आये, जहाँ पर मथुरा जाते समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गोपियों को आश्वासन दिया था कि मैं शीघ्र परसों ही मथुरा से लौट आऊँगा। गोपिकाएँ शीघ्र परसों-शीघ्र परसों रटती रही। इसीलिये आज भी उस ग्राम का नाम "सिपर्सों" है। उसके बाद श्रीआचार्य चरण श्रीविशाखाजी के जन्म स्थान का दर्शन करते हुए श्रीललीताजी के जन्म स्थान पर आये। वहाँ पर आपने कँकन कुण्ड हिन्डोल स्थान आदि स्थानों का दर्शन कर, उस स्थान का भी दर्शन किया, जहाँ पर शङ्खचूड़ का बध हुआ था। बन्दोखड़ में आपने चरण श्री चिन्हों को देखा। इस तरह अनेक तीर्थों का दर्शन करते हुए काशी नामक स्थान पर आये। वहाँ पर

[श्री] आपने पड़ाव डाला और निवास किया, सूर्य कुण्ड, कालीहद, [आ]दि स्थानों का दर्शन करते हुए, उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर [श्री]बलदेवजी ने अपने हल की ताकत से श्रीजमुनाजी को खींच लिया [थ]ा। वहाँ पर भी आचार्यश्री ने कुछ दिनों तक निवास किया। [इ]सके बाद चीरघाट पर आये जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी गोपि[का]ओं का चीर हरण किया था। वहाँ से चल कर आपने नन्दघाट [क]ा दर्शन किया, जहाँ से वरुण के दूतों ने श्रीनन्दजी को वरुण [लो]क में उठा ले गये थे। आगे चल कर वसुदेवजी के निवास स्थल [क]ा दर्शन करके आपने वत्स वन का निरीक्षण किया। जहाँ पर [ब्र]ह्माजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के बच्चों को चुराया था। आचार्यश्री [पु]नः जमुना पार कर उस स्थान पर गये जहाँ पर श्रीबलदेवजी ने [रा]सक्रीड़ा की थी जिसको आज दाउजी कहते हैं। ब्रह्माजी ने जिस [स्थ]ल पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की स्तुती की है, उस स्थल का [द]र्शन करते हुए अक्रूरघाट का दर्शन किया। अक्रूर घाट पर आते [ही] आचार्यजी की भी वही अवस्था हुई जो कि श्री अक्ररजी की हुई [थी]। इसके बाद आचार्यश्री ने उस स्थान का दर्शन किया, जहाँ पर [ग्व]ाल वालों के साथ मिल कर प्रभुने प्रातराश किया था। इस तरह [आ]चार्यश्री की ब्रज चौरासी की परिक्रमा समाप्त हुई। सभी मण्डली [के] साथ आचार्यश्री ज्ञान गुदडी में आये। यहीं पर वंशी-वट के पास [आ]पका सुन्दर पट कुटीर था जहाँ से कि परिक्रमा आरम्भ हुई थी। [स]भी मण्डली के साथ यहाँ पर आकर निवास किया।

अन्तिम प्रकरण-दर्शन

प्रिय पाठक बन्धुओ ! आप लोगों को मालूम होना चाहिये कि आचार्यश्री ने बहुत दिनों तक ज्ञान गुदडी में निवास किया। काफी दिन निवास करने के बाद एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण भी किया होगा। अतएव ज्ञान गुदडी को मैं आचार्य भूमि मानता हूँ। पूर्ण अन्वेषण के बाद भी अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका है कि आचार्यश्री का अन्तिम निवास किस स्थल पर था। अथवा कहाँ से आप इस धरातल को छोड़ कर अपने नित्य धाम में गये। अन्वेषण चालू है। ज्ञात होने पर दूसरी आवृत्ति में इस प्रकरण का दर्शन कराया जायगा। सम्प्रदाय निष्ठ बन्धुओं से मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग आचार्य चरणों में श्रद्धा और प्रेम रख कर पठन और मनन करें। शास्त्रों में आचार्य भक्ति को ही ईश्वर भक्ति मानी गयी है। साम्प्रदायिक बन्धुओं के अन्तः करण में आचार्य चरणों के प्रति शुद्ध प्रेम हो आन्तरिक निष्ठा हो, आचार्य चरित्र का ज्ञान हो इसी आशा की कामना करता हुआ मैं अपनी लेखनी को अवकाश देता हूँ।

बोलिये आचार्यचरण की जय। —इति

समाप्त

अशेषभूमण्डलाचार्यशेखर यतिपति जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी चरणानुरागी, मण्डलेश्वर महान्त स्वामी श्रीराधिकादासजी महाराज। विहाली (महेन्द्रगढ़ "पंजाब")

आप संपत्तिशाली, उदारचेता गो-सन्त भगवत्-भागवत सेवी, प्रतिभाशाली संप्रदाय के विशिष्ठ महनीय विभूतियों में से एक हैं।

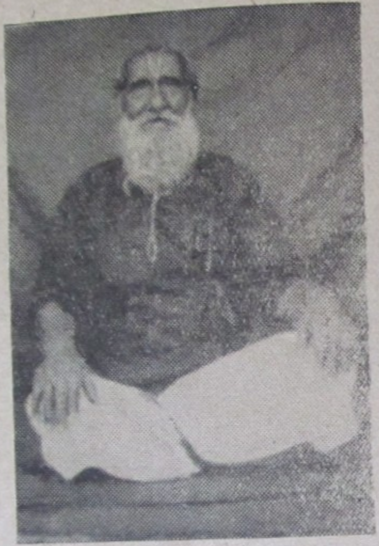

निखल भूमण्डलाचार्य जगद्गुरु श्रीविष्णुस्वामी सिद्धान्त सेवी, वयोवृद्ध महान्त श्रीश्यामलदासजी महाराज। सोनद (गुड़गामा)

आप संप्रदाय में भीष्मपितामहके समान वयोवृद्ध महान तपस्वी, लब्धप्रतिष्ठित भगवत् –भागवत सेवापरायण समाज के महनीय वन्दनीय कर्णधारों में प्रथम हैं।

अशेष जगदाचार्य मुकुटमणि १००८ श्रीविष्णुस्वामी भगवत्-चरण सिद्धान्तानुरागी, मण्डलेश्वर वैष्णव राज–राजेश्वर श्रीमहान्त स्वामी गोवर्धनदासजी महाराज। बून्दी, राजस्थान

आप समाज एवं राज्य कर्मचारियों में लब्ध प्रतिष्ठित, प्रतिभाशाली, भगवत्–भागवत सेवानिष्ठ, सन्तों में से एक हैं।

निखिलभूमण्डलाचार्य शिरोमणि जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामीजी महाराज सिद्धान्तानुगामी, पुरुषार्थ-रत्न, महान्त स्वामी श्रीगोपीदासजी महाराज। चमन आश्रम (पुस्करराज)

आप शान्त–दान्त कुशाग्र-बुद्धि, प्रतिभासंपन्न, भगवत् सेवा-परायण, तपस्वी फलहारी संत हैं। आप से समाज को गौरव है।

अशेष–भूमण्डलाचार्यचक्रचूडा-मणि, जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी सिद्धान्तानुगामी, महान्त श्रीबलराम-दासजी महाराज, भतरोड, मथुरा।

आप परम सन्त भगवत् सेवी शान्त प्रतिभाशाली, भजनानन्दी संप्रदायानुरागी उदारात्मा कर्णधारों में से एक हैं।

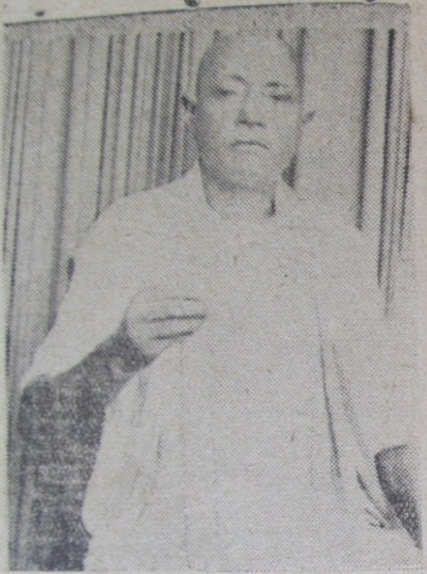

निखिलभूमण्डलाचार्य चक्रचूडा-मणि जगद्गुरु १००८, श्रीविष्णु-स्वामी संप्रदायानुगामी, माननीय श्रीफालगुनदासजी महाराज, कामवन ।

आप परम पुरुषार्थी, भगवत्-भागवत सेवाभावी, संप्रदाय प्रचारनिष्ठ प्रतिभाशाली, व्यवहार कार्य—कुशल कर्णधारों में से एक हैं।

निखिल—भूमण्डलाचार्य—चक्रचूडामणि जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी संप्रदायानुगामी महान्त श्रीरामनाथदासजी महाराज बून्दी । राजस्थान

आप कर्मनिष्ठ भगवत्—भागवत सेवाभावी, भजनानन्दी यशस्वी समाज के कर्णधारों में से एक हैं।

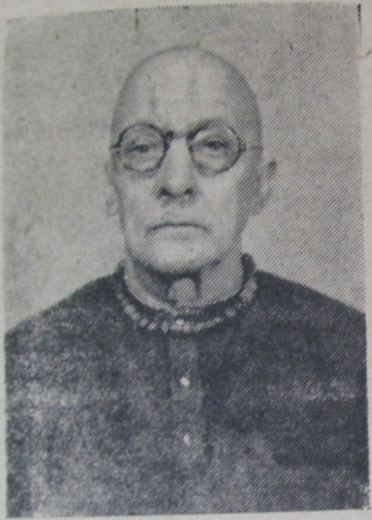

अशेष जगदाचार्य जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी भगवत् चरण सेवी, महान्त श्रीविष्णुदासजी महाराज। लाखोड़ (महेसाना)

आप यशस्वी, प्रतिभाशाली, भगवत्-भागवत सेवानिष्ठ, संप्रदायानुरागी, सुयोग्य वैद्यराज हैं। आप अनेकों दिव्य गुणसंपन्न हैं।

अशेष जगदाचार्य—शिरोमणि १००८ भगवान् श्रीविष्णुस्वामी चरण सेवी, परम वैष्णव महान्त स्वामी श्रीभगवानदासजी महाराज विरमवास " माडल (अलवर राजस्थान)

आप सन्त—प्रभु सेवा परायण भजनानन्दी, शान्त स्वरूप, पवित्र आत्मा, समाज के कार्य में सहयोग देने वाले परम सन्त हैं।

निखिलमहिमण्डलाचार्य
१००८ श्रीविष्णुस्वामी भगवत् चरण-कमलानुरागी, माननीय श्रीकानरदासजी महाराज।
वीहाली पंजाब।

आप परम ज्ञानी भगवत् भक्ति-परायण संप्रदाय सिद्धान्तानुगामी समाज के पूज्य महात्माओं में से एक हैं।

निखिल जगदाचार्य जगद्गुरु
१००८ श्रीविष्णुस्वामी महाराज के सिद्धान्त-परमानुरागी, सर्व-गुण-सम्पन्न शस्त्रविद्याविशारद महान्त श्रीकन्हैयादासजी महाराज।
बदनगढ़ (मथुरा)

आप परम यशस्वी भगवत्-भागवत-सेवा-निष्ठ, वैष्णवभूषण नवयुवक कर्णधारों में से एक हैं।

अशेष जगदाचार्य जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी भगवत् चरणसेवी श्रीमान महान्त श्रीसियारामदासजी महाराज। खेड़ी महेन्द्रगढ़ (पंजाब)

आप परम वैष्णव यशस्वी, प्रभावशाली, नवयुवक समाज के कार्यकर सन्त हैं। आप होनहार सेवा परायण कर्णधारों में से एक हैं

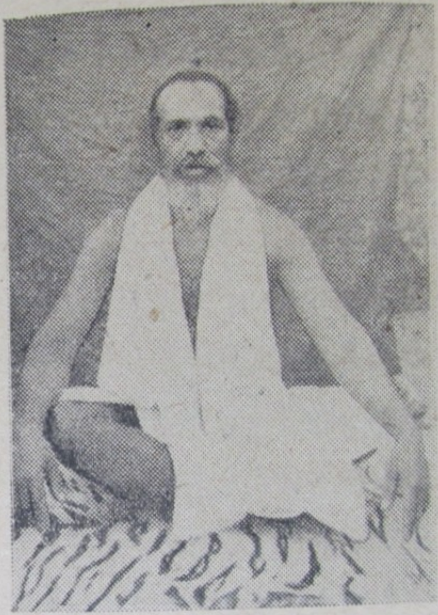

निखिल महिमण्डलाचार्यशेखर जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी भगवत्चरण चंचरीक महान्त स्वामी श्रीरामदासजी महाराज, खोडबेड़ी महेन्द्रगढ़ (पंजाब)

आप भगवत्-भागवत सेवा-निष्ठ, परम-त्यागी प्रतिभासंपन्न संप्रदाय के महान कर्णधारों में से एक हैं।

अशेष भूमण्डलाचार्य-
चक्रचूडामणि १००८ श्रीविष्णु-
स्वामी भगवत्पादानुगामी, श्रीमान
महान्त स्वामी श्रीमानदासजी महा-
राज, खरोठ पो० कोसी (मथुरा)

आप तपोनिष्ठ, वयोवृद्ध सेवा-
भावी वैष्णवभूषण, प्रभावशाली,
उदारचित्त, परम माननीय समाज
के कर्णधारों में से एक हैं।

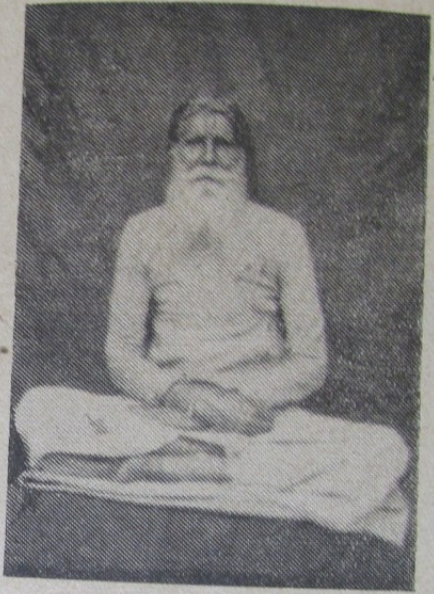

अशेष जगदाचार्य मुकुटमणि
जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी
भगवत् सिद्धान्तानुगामी श्रीमान
महान्त श्रीहरिदासजी महाराज
वरचावलीग्राम, कोसी (मथुरा)

आप परम भागवत तपोनिष्ठ,
वैष्णवभूषण हैं तथा उदार प्रकृति
के समाज के कर्णधारों में से एक हैं।

श्रीमहान्त श्रीसीतारामदासजी महाराज । विष्णुस्वामी–निर्मोही । श्रीविष्णुस्वामी, निर्मोही अखाड़ा ज्ञानगुदड़ी वृन्दावन ।

आप सिंहस्थ के कार्यकर्ता श्रीमहान्तों में से एक हैं।

अशेष महिमण्डलाचार्य–चक्रचूडामणि जगद्गुरु १००८, श्रीविष्णुस्वामी भगवत् चरण कमल चंचरीक योगिराज महान्त स्वामी मौनी श्रीचेतनदासजी महाराज । चौमूँ (राजस्थान)

आप भगवत् भागवत सेवा परायण तपोनिष्ठ प्रतिभाशाली संप्रदाय सिद्धान्त के परम प्रचारक समाज के वन्दनीय विभूतियों में से एक हैं ।

अशेषजगदाचार्य १००८ जगद्गुरु भगवान् श्रीविष्णुस्वामी सिद्धान्तानुगामी महान्त श्रीहरिदास-जी महाराज। सिकन्दरा (राजस्थान)

आप भगवत् भागवत सेवानिष्ठ यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतिभाशाली नव युवक महान्त हैं। आप शान्त प्रकृति के वैद्यराज भी हैं।

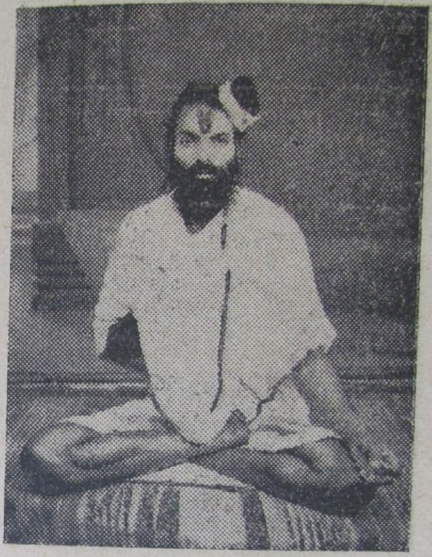

निखिलमहिमण्डलाचार्य चक्र-चूडामणि जगद्गुरु १००८, श्रीविष्णुस्वामी भगवत्पादानुरागी श्रीमहान्त श्रीदामोदरदासजी महाराज। दामोदरकुण्ड, जूनागढ।

आप भगवत् भागवत सेवा-निष्ठ, भजनानन्दी, शान्तचित्त, व्यवहार कार्य कुशल वर्तमान महान्त हैं।

निखिलमहिमण्डलाचार्य---
चक्रचूडामणि जगद्गुरु १००८, श्रीविष्णुस्वामी भगवत्पादानुरागी वैष्णवरत्न श्रीमहान्त स्वामी श्रीअनन्तदासजी महाराज। नागफनी अजमेर। राजस्थान

आप प्रसिद्ध सन्त सेवी योगिराज प्रतिभाशाली, प्रसन्नवदन, मिलन-सार, भगवत्परायण, सम्प्रदाय के कर्णधारों में से एक हैं।

अशेषभूमण्डलाचार्य-
चक्रचूडामणि जगद्गुरु १००८, श्रीविष्णुस्वामी चरण-चंचरीक श्रीमहान्त स्वामी श्रीनरोत्तमदासजी महाराज। काशी।

आप मणिकर्णिकाघाट सतुआ बाबा के स्थान के वर्तमान भगवत् भागवत सेवा परायण तपोनिष्ठ, प्रतिभाशाली महान्त हैं।

निखिलभूमण्डलाचार्य--

चक्रचूडामणि जगतगुरु १००८, श्रीविष्णुस्वामी भगवत्पाद सिद्धान्तानुयायी महान्त स्वामी श्रीमदनमोहनदासजी महाराज। तूमौरा (मथुरा)

आप सुयोग्य कार्य कर संप्रदायनिष्ठ व्यवहारकुशल प्रतिभासंपन्न, आदर्श सेवाभावी समाज के महनीय कर्णधारों में से एक हैं।

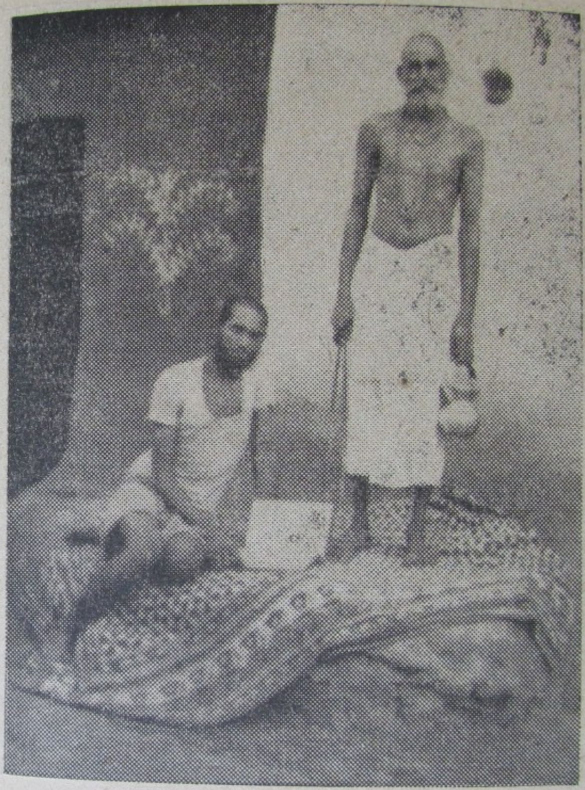

निखिलभूमण्डलाचार्य — चक्रचूडामणि जगद्गुरु १००८ श्रीविष्णुस्वामी भगवत् चरणानुरागी वैष्णव भूषण महान्त स्वामी श्रीउद्धवदासजी महाराज और उनके प्रियशिष्य। नैनुवाँ (राजस्थान)

आप परम पुरुषार्थी, ऐश्वर्य संपन्न परमभागवत, ज्ञान-वयोवृद्ध तपस्वी पुरुष हैं। स्वपरिश्रम से प्राप्त धन को आप समाज के सेवा-कार्य में भगवत् भागवत सेवा में सामाजिक प्रचार प्रसार में व्यय करते हैं।

वैष्णवाचार्य, आचार्यवर्य, शुद्धाद्वैत–प्रवर्तक–सम्प्रदायाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी सिद्धान्त प्रचारक श्री महान्त स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज, श्रीरणछोडजी का मन्दिर, रायपुर, बडकी पोल, अहमदाबाद ।

आप सिद्धान्तवादी आदर्श सन्त हैं। भजन, पूजन आपका प्रधानकार्य है ।

प्रार्थना–संग्रह

मालवरागेण रूपकतालेन गीयते ।

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे ॥ ध्रुवम् ॥१॥
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥२॥
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव धृतशूकररूप जय जगदीश हरे ॥३॥
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥४॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे ॥५॥
क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम्
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥६॥
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव धृतरामशरीर जय जगदीश हरे ॥७॥
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥८॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्
सदयहृदय दर्शितपशुघातम् ।
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥९॥
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे ॥१०॥
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्
शृणु शुभदं सुखदं भवसारम् ।
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ॥११॥
वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यान्दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥१२॥

॥ श्रीगोपीजनवल्लभाष्टकम् ॥

सरोज-नेत्राय कृपायुताय मन्दार-माला-परिभूषिताय ।
उदार-हासाय लसन्मुखाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥१॥
आनन्द-नन्दादिक-दायकाय बकीबक-प्राण-विनाशकाय ।
मृगेन्द्र-हस्ताग्रजभूषणाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥२॥
गोपाललीलाकृतकौतुकाय गोपालकाजीवनजीवनाय ।
भक्तैकगम्याय नवप्रियाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥३॥
मन्थानभाण्डाखिल-भंजनाय हैयंगवीनाशन-रञ्जनाय ।
गोस्वाददग्धामृतपेषिताय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥४॥
कलिन्दजाकूल-कुतूहलाय किशोररूपाय मनोहराय ।
पिशंगवस्त्राय नरोत्तमाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥५॥
धराधराभाय धराधराय शृंगार-हारा-वलिशोभिताय ।
समस्तगर्गोक्तिसुलक्षणाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥६॥

इभेन्द्रकुम्भस्थलखण्डनाय विदेशवृन्दावनमण्डनाय ।
हंसाय कंसासुरमर्दनाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥७॥
श्रीदेवकीसूनु विमोक्षणाय क्षत्तोद्धवाक्रूरवरप्रदाय ।
गदासि शंखाब्जचतुर्भुजाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ॥८॥

॥ श्रीकृष्णशरणाष्टकम् ॥

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः ।
पापपीनस्य दीनस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ १ ॥
संसारसुखसंप्राप्तिसन्मुखस्य विशेषतः ।
बहिर्मुखस्य सततं श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ २ ॥
सदा विषयकामस्य देहारामस्य सर्वथा ।
दुष्टस्वभाववामस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ ३ ॥
संसारसर्पदुष्टस्य धर्मभ्रष्टस्य दुर्मतेः ।
लौकिकप्राप्तिकामस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ ४ ॥
विस्मृतस्वीयधर्मस्य कर्ममोहितचेतसः ।
स्वरूपज्ञानशून्यस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ ५ ॥
संसारसिन्धुमग्नस्य भग्नभावस्य दुष्कृतेः ।
दुर्भावलग्नमनसः श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ ६ ॥
विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य निरंतरम् ।
विरुद्धकरणासक्तेः श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ ७ ॥
विषयाक्रान्तदेहस्य वैमुख्यहतः सन्मतेः ।
इन्द्रियाश्वगृहीतस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ ८ ॥

॥ श्रीगोविंददामोदरस्तोत्र ॥

श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे ! हे नाथ नारायण वासुदेव ।
जिह्वे ! पिवस्वामृतमेतदेव गोविंद दामोदर माधवेति ॥१॥
विक्रेतुकामा किल गोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः ।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविंद दामोदर माधवेति ॥२॥

गृहे गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वेमिलित्वासमवाप्य योगम् ।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविंद दामोदर माधवेति ॥३॥
सुखंशयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः ।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविंद दामोदर माधवेति ॥४॥
जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि ।
समस्तभक्तार्ति विनाशनानि गोविंद दामोदर माधवेति ॥५॥
सुखावसाने इदमेव सारं दुःखावसाने इदमेव ज्ञेयम् ।
देहावसाने इदमेव जाप्यं गोविंद दामोदर माधवेति ॥६॥
श्रीकृष्णराधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धननाथ विष्णो ।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविंद दामोदर माधवेति ॥७॥
उत्थाय गोप्योऽपररात्रभागे, स्मृत्वा यशोदा सुतबालकेलिम् ।
गायन्ति प्रोच्चैर्दधिमन्थयन्त्यो गोविंद दामोदर माधवेति ॥८॥
प्रभातसंचारगता नु गावस्तद्रक्षणार्थं तनयं यशोदा ।
प्राबोधयत् पाणितलेन मन्दं गोविंद दामोदर माधवेति ॥९॥
प्रभातकाले वरवल्लवास्तं गोरक्षणार्थं धृतवेत्रदंडाः ।
आकारयामासुरनन्तमाद्यं, गोविंद दामोदर माधवेति ॥१०॥
मातृपितृभ्यामपि वार्यमाणा गुहां प्रविष्टा विललाप गोपी ।
आगत्य मां पालय विश्वनाथ गोविंद दामोदर माधवेति ॥११॥

॥ श्रीमधुराष्टकम् ॥

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥
गुंजामधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम् ।
इष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

श्रीविष्णुस्वामी संप्रदाय की परंपरा

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र

१ श्रीमहादेवजी
२ श्रीत्रिपुरारजी
३ श्रीविष्णुस्वामीजी
४ श्रीसीनानन्दजी

५ श्रीहरियानन्दजी
६ श्रीज्ञानानन्दजी
७ श्रीध्यानानन्दजी
८ श्रीआत्मानन्दजी
९ सदानन्दजी
१० श्रीवरुणाचार्यजी
११ श्रीवामनाचार्यजी
१२ श्रीरोहणाचार्यजी
१३ श्रीसेवाचार्यजी
१४ देवाचार्यजी
१५ श्रीहरनागराचार्यजी
१६ श्रीबालगोविन्दाचार्यजी
१७ श्रीरंगलाचार्यजी
१८ श्रीगंगाचार्यजी
१९ श्रीलोकाचार्यजी
२० श्रीविश्वलोकाचार्यजी
२१ श्रीबालकाचार्यजी
२२ श्रीबालाचार्यजी
२३ श्रीप्रभुविष्णुस्वामीजी
२४ श्रीअनन्ताचार्यजी
२५ श्रीप्रेमाकरजी
२६ श्रीलक्ष्मणभट्टजी

२७ श्रीवल्लभाचार्यजी
(इनके सात पुत्रों के नाम)
श्रीविट्ठलनाथजी
श्रीगोपीनाथजी
श्रीगिरधरजी (कामवन)
श्रीगोविन्दजी
श्रीबालकृष्णजी
श्रीगोकुलनाथजी
श्रीरघुनाथजी
२८ श्रीयदुनाथजी
(सरस्वतीकुण्ड पर बैठे)
२९ ब्रह्मराजजी
३० श्रीपद्मराजजी
३१ श्रीपद्ममुनिजी
३२ श्रीऋषिकेशजी
३३ श्रीवामदेवजी
३४ श्रीपरमानन्दजी
३५ श्रीअनन्तदासजी
३६ श्रीकल्याणदासजी
३७ श्रीप्रेमदासजी
(रार में बैठे)
३८ श्रीचरणदासजी

श्रीगोवरधनदासजी (सरोट में बैठे)
श्रीगंगादासजी भरतपुर (मुरला में बैठे)
श्रीकृपारामजी (सल्लर में बैठे)
श्रीसहजरामजी (जखन गाम बैठे)
श्रीगरीबदासजी (कोसी में बैठे)
श्रीशीतलदासजी (चंदपुरा में बैठे)
श्रीदुवेदासजी (पीपर खेडा में बैठे)
श्रीज्ञानदासजी (रोह डीह में बैठे)

१ श्रीहरिदासजी (ग्वालियर) श्रीकल्याणदासजी के शिष्य
२ श्रीविद्यादासजी हीरादासजी के शिष्य
३ श्रीलक्ष्मणदाजी
४ श्रीललितादासजी
५ श्रीरामदासजी
६ श्रीजगन्नाथदासजी २ बलरामदासजी
७ श्रीमथुरादासजी २ (मानदासजी)
८ श्रीमदनमोहनदासजी २ (रामकृष्णदासजी)

श्रीकल्याणदासजी का परिवार

श्रीगोवरधनदासजी, श्रीभवभंजनदासजी, श्रीभावादासजी, श्रीबालकदासजी, श्रीईश्वरदासजी, श्रीप्रियादासजी (प्रियादासजी वरचावली में बैठे), श्रीसरयुगदासजी (श्रीगंगादाजी), श्रीगोकुलदासजी (बालमुकुन्ददासजी), श्रीमानदासजी (श्रीप्रेमदासजी), श्रीतुलसीदासजी, श्रीखुशालदासजी, श्रीहरिदासजी

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय में तीन द्वारे हैं।

(१) श्रीविट्ठलदेवजी महाराजका द्वारा। (२) श्रीगोकुलदेवजी महाराज का द्वारा। (३) श्रीनामदेवजी महाराज का द्वारा।

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय में पाँच थोक गिने जाते हैं

(१) ब्रजवासी थोक, (२) भरतपुरिया थोक (३) हरियानीया थोक, (४) गारिया सुपारिया थोक। (५) लोहागढ़िया थोक। उपर्युक्त थोकों में से पहले के चार थोक श्रीविट्ठलदेवजी महाराज के द्वारे के अन्तर्गत हैं। पाँचवां लोहा गढिया थोक, श्रीगोकुलदेवजी महाराज के द्वारे के अन्तर्गत है। श्रीनामदेवजी महाराज के द्वारा वाले सन्त-महात्मा किस थोक के हैं, अभी तक जानने में नहीं आया।

टिप्पणी

द्वारा और थोक सम्बन्धी लेख, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के महान् विभुति स्वामी श्रीश्यामलदासजी महाराज सोनदवालों से प्राप्त हुआ है।

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदाय की जो परम्परा, इस पुस्तक में दी गई है, वह परम्परा, महान्त श्रीमदनमोहनदासजी महाराज, तूमौरा वालों से मुझे प्राप्त हुई थी। ह० लि० इस परम्परा को तूमौरा वाले ही प्रकाशनार्थ भेजे थे। किन्तु इस परम्परा का निर्णय विष्णुस्वामी सम्प्रदाय कें विशिष्ट व्यक्तियों के विचार आधीन है, एवं कई प्रकार की परम्पराएँ मेरे पास हैं। इस सम्प्रदाय के विशिष्ट व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श होने के बाद प्रकाशित होंगी।

संग्रह कर्ता

उद्गार

"कृते च प्रतिकर्तव्यं एष धर्मः सनातनः" के अनुसार, जिस सम्प्रदाय का जो अनुयायी हो, उस सम्प्रदाय की सेवा करना उसके लिये सनातन धर्म है। परमवैष्णवधर्म के आचार्य श्रीविष्णुस्वामी महाराज का जीवनवृत्त, अवतक अन्धकार में था और आचार्यश्री के चित्रपट का प्रचार भी सर्वथा अभाव था। जिस महापुरुषने श्रीविष्णुस्वामी जीवन-दर्पण ग्रन्थ को मुद्रण करवाकर प्रकाशित करके उक्त अन्धकार को दूर करते हुए स्वसम्प्रदाय के इतिहास का प्रचार तथा प्रसार किया है, वे महात्मा अवश्य ही उस सम्प्रदाय के सूर्य हैं।

"आचार्यदेवो भव"—इसके अनुसार आचार्यनिष्ठा ही भगवन्निष्ठा है। इससे सम्प्रदाय की निष्ठा की भी पूर्ति है। जो लोग भोजन, शयन और पर्यटन को ही सम्प्रदाय की सेवा समझते हैं, वे लोग अवश्य ही अज्ञानता का प्रचार कर रहे हैं। समय की पुकार है कि आलस्य को छोड़कर कर्तव्य परायण बनें। तदनुसार हमारे तपोवृद्ध, तपोनिष्ठ श्रीमहान्त बाबा श्रीनारायणदासजी महाराजने उक्त ग्रन्थ को प्रकाशित करके स्वसम्प्रदाय की जो सेवा की है, उस अमूल्य सेवा के लिये तटस्थ रूप से यह कथन मेरे हृदय का उद्गार है।

आपका

वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री